ओ३म्

भारतवर्ष
का
संक्षिप्त इतिहास

प्रथम भाग

श्रीमान बालकृष्णजी एम० ए०
प्रोफ़ेसर गुरुकुल काङ्गड़ी रचित

जिसको
लक्ष्मण मैनेजर
भारत लिटरेचर कंपनी
लिमिटिड लाहौर ने
अरोड़वंश यंत्रालय, लाहौर में छपवाया।

प्रथमवार] २००० [मूल्य १।) रु०

❀ प्रस्तावना ❀

यह निर्विवाद बात है कि सर्व साधारण जनता और पाठशालाओं के लिये भारतवर्ष के एक सच्चे, मनोरञ्जक और संक्षिप्त इतिहास की आवश्यक्ता है। इस ज़रूरत को पूरा करने का यत्न मैं ने किया है, यथाशक्ति तटस्थ रह कर भारत के इतिहास का निचोड़ पाठकों के सामने रख दिया है॥

इस संक्षेप को अधिक उपयोगी बनाने के लिये कहीं २ किनारे पर लकीरें खींच दी हैं ताकि आवश्यक और अपेक्षया अनावश्यक विषयों का भेद हो जावे। विद्यालयों के साधारण विद्यार्थियों को लकीरों के अन्दर वाले अंश ही पढ़ाये जावें॥

मुझे शोक है कि इस पुस्तक की छपवाई उत्तम नहीं हो सकी। प्रूफों का ठीक संशोधन नहीं हुआ और साथ ही छापते समय कहीं २ से मात्राएं और अक्षर उड़ गये हैं, इस कारण सावधानी से पाठ करना पड़ेगा। आशा है कि इस पुस्तक के दूसरे भाग में छपवाई के दोष दूर कर दिये जावेंगे॥

गुरुकुल
४ मार्च, १९१४.

बालकृष्णः

विषय सूची

बुद्ध भगवान.

अध्याय १

भारत वर्ष की प्राकृतिक दशा ॥

१-प्रकृति और मनुष्य—प्रत्येक देश की प्राकृतिक दशा का उस के आदिम निवासियों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जब देश निवासी जाति रूप में संगठित हो जाते हैं तो यही प्राकृतिक शक्तियां उन के भाग्यों को बहुत कुछ निश्चय करती हैं। जब मानवीय शक्तियों का बहुत विकास हो जाता है तब प्रकृति मनुष्य की दासी होने लगती है और प्राकृतिक शक्तियों का प्रभाव घटने लगता है। प्रत्येक देश के जल वायु से निश्चय होता है कि किस प्रकार का भोजन और वस्त्र उस देश के निवासी प्रयुक्त करें? उन के प्राप्त करने के लिये अल्प श्रम, उद्योग और साहस की आवश्यका है वा अधिक की? किस २ प्रकार के व्यवसायों में वह लोग लगें? और अन्य देश वासियों के साथ उन के सम्बन्ध की मात्रा कितनी रहे? इन स्थूल घटनाओं के अतिरिक्त परमावश्यक यह बात है कि उन प्राकृतिक दृश्यों से उन के विचार, विश्वास, सिद्धान्त और आचार भी बनते हैं॥

२-भारत की प्राकृतिक दशा—भारतवर्ष की प्राकृतिक शक्तियों ने इस के इतिहास पर जो प्रभाव डाले हैं वह सम्भवतः अन्य देशों में इतने बलिष्ठ न थे। यहां की भूमि अति उपजाऊ और सहस्र प्रकारों के उत्तम पदार्थों को थोड़े उद्योग से प्रदान

करने वाली है, भिन्न २ प्रकार के जल वायु होने से सर्व प्रकृति के मनुष्य यहां निवास कर सकते हैं; साथ ही भारत वर्ष भौगोलिक स्थिति के अनुसार एक प्रायद्वीप बना हुआ है, पश्चिम और पुर्वोत्तर दिशाओं में इस देश में आने के लिये कुछ मार्ग हैं जिन से समय २ पर मानव समूह इस देश में आकर बसे। वे आक्रान्ता और विजेता रूपों में आये परन्तु इस महा समुद्र में छोटी नदियों की न्याई मिल गये। उपरोक्त कारणों से भारत की भौगोलिक स्थिति अति संक्षेप से देखनी आवश्यक है॥

३-भारतवर्ष के अर्थ तथा सीमा—भारत वर्ष जिसे आजकल हिन्दुस्तान वा इन्डिया भी कहते हैं श्री राम के एक पूर्वज महा पराक्रमी राजा भरत के नाम से आज तक प्रसिद्ध है इस के पूर्व, उत्तर और पश्चिम में संसार का सब से ऊंचा पर्वत हिमालय (बर्फ का घर) २००० मील तक लम्बा और कहीं २ ५०० मील तक चौड़ा चला गया है। पूर्व में ब्रह्म देश और बंगाल खाड़ी, दक्षिण में हिन्द सागर, पश्चिम में अरब सागर, बलोचिस्तान और अफ़गानिस्तान तथा उत्तर में तुर्किस्तान और तिब्बत देश हैं॥

४—परिमाण—भारत वर्ष की लम्बाई १६०० मील चौड़ाई १८०० मील और क्षेत्रफल १५ लाख वर्ग मील है, इस वृहद् देश का जिस में ३१ करोड़ मनुष्यों का वास है, तीन चौथाई भाग सीधा ही राजराजेश्वर जार्ज पञ्चम इंगलैंड

के महाराज के शासन में है, शेष भाग में देशी रजवाड़े हैं जिन के अधिपति भी वही आङ्गल राजा हैं ॥

५–भारत के तीन भाग–भारत वर्ष साधारणतया तीन भागों में विभक्त है (१) पूर्व से पश्चिम तक पर्वतीय देश, (२) उत्तरीय भारत, (३) दाक्षिणी भारत ॥

१–पर्वतीय भाग—२००० मील लम्बा है और २०० से ५०० मील तक चौड़ा है, कहीं २ उस की चोटियां बादलों से बातें करने को २६००० फ़ीट ऊंची उठी हैं बहुत बड़ा भाग बर्फ से ढका रहता है, परन्तु १००० मील तक समान ऊंचाई नहीं और न हीं लगातार पर्वत माला चली जाती है। कहीं कहीं दो पहाड़ों के बीचों बीच तंग मार्ग हैं जिन्हें दर्रे कहते हैं, इन में से गुज़र कर प्रायः अन्य देश वासियों ने भारत वर्ष पर आक्रमण किये, जैसे मंगोल, आर्य्य, यूनानी, ईरानी, शक, मुसलमान, पठान, तुर्क, मुग़लों के दल के दल इन्हीं दर्रों में से आते रहे और इन्हीं मार्गों में से देश देशान्तरों के लोग भारत वर्ष के साथ परम्परा से व्यापार भी करते रहे हैं ॥

बड़े २ दर्रों के नाम यह हैं :—

पूर्व, उत्तर के दर्रे	से	तक	पश्चिम के दर्रे	से	तक
कन्द्रीचल	काश्मीर	लद्द	खैबर	पेशावर	जलालाबाद
कराकोरम	लेह	तिब्बत	कुरम	सिन्धु	काबुल
गंग तंग घाट	श्रीनगर	चवरंग	खुरद काबुल	,,	,,
मस्तंग	नेपाल	तिब्बत	गोमल	गोमल	कन्धार
लचन और लचुंग	दार्जिलिंग	लासा	बोलान	शिकारपुर	कोयटा

(२) उत्तरीय भारत—भारतवर्ष का यह द्वितीय भाग सिन्धु नदी से गंगा और ब्रह्मपुत्र तक फैला हुआ है इस में आजकल कश्मीर, पंजाब, सिंध, युक्तप्रान्त, राजपुताना, और बङ्गाल तथा आसाम हैं। ५ लाख वर्ग मील में १६ करोड़ जन संख्या है। भारत वर्ष का यही भाग अधिक उपजाऊ, अधिक आबाद, अतिसमृद्ध तथा इतिहास में प्रसिद्ध है सिंधु, गंगा, ब्रह्मपुत्र, और महा नदी अपनी शाखाओं समेत इस भाग को सींचती हैं, समय २ पर मनुष्यों ने नहरें निकाल कर इन नदियों की सींचने की शक्ति को बढ़ा दिया हैः केवल गंगा की नहरों से इस समय १४६२०२३ एकड़ भूमि सींची जाती है॥

(३) दक्षणीय भारत—इस भाग को साधारणतया लोग दक्खन कहते हैं उत्तर से इस का विभाग सतपुड़ा और विन्ध्यापर्वतों से होता है। इसका विस्तार कन्याकुमारी तक त्रिकोणाकार प्रायःद्वीप रूप में है; इसकी पूर्वीय भुजा बंगाल की खाड़ी पर है जो कोरोमण्डल का तट कहलाती है, और पश्चमीय भुजा हिंदसागर पर है जो मालाबार का तट कहलाती है। इसका क्षेत्रफल ७ लाख वर्ग मील है और इसमें १३ करोड़ से अधिक मनुष्य रहते हैं यद्यपि यह पर्वतीय देश है तथापि वे पहाड़ियां थोड़ी ऊंची हैं नर्मदा, टाप्ती, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, आदि नदियां इस देश को खूब सींचती हैं। धातु और वनस्पति भी इसमें बहुत होती हैं॥

६–समुद्रतट का महत्व—भारत वर्ष का तट प्रायः सीधा है उस में खाड़ियां बहुत नहीं, इस कारण जहाज़ सुरक्षित नहीं रह सकते। सैंकड़ों नदियों का रेता पड़ने से तट वर्त्ती जल थोड़ा है अतः जहाज़ ठीक तट के पास नहीं आ सकते अर्थात् स्वाभाविक उत्तम बन्दरगाह इस देश में बहुत थोड़े हैं॥

स्मरण रहे कि ४००० मीलों से अधिक तट की लम्बाई है। इतने विस्तृत तट की रक्षा करना सुगम कार्य्य न था मुसलमान बादशाहों ने देश के भीतर अपने प्रधान नगर बसाए और वहीं राजा प्रजा के युद्ध होते थे, परन्तु तट पर अफ़रीका के मुसलमान लोग देश को लूटते रहते थे। १६वीं शताब्दी से अद्भुत परिवर्तन इस देश के इतिहास में आने लगे, पुर्तगाल जैसे छोटे देश के मुट्ठी भर लोग सहस्रों मीलों से समुद्र के मार्ग से यहां आकर लूटने लगे और देश की विजय आरम्भ कर दी, उन को देखा देखी हालैण्ड फ्रांस और इंगलैण्ड वाले यहां आये और भारतीय राजाओं से लड़ने की उधेड़बुन करते रहे। भारत के तट पर उन के व्यापार और राज्य विस्तार का बाज़ार गर्म रहा। समुद्र से सेना लाते और इस देश को विजय करने जाते थे। अब साम्र देश आङ्गलों के आधीन है जो भौमिक और सामुद्रिक सेना में प्रबल हैं॥

७–भारत वर्ष की स्थिति (१) अपनी उपजाऊ भूमि, धातु रूप सम्पत्ति, दुर्गम ऊंची २ पर्व्वताकार दीवारों तथा

दुस्तर महा सागरों और असंख्य जन संख्या के कारण एशिया में भारत वर्ष एक अनुपम देश है॥

(२) वह इतना विस्तृत है कि उस का राष्ट्रीय सम्बन्ध ईरान, रूम, रूस, चीन, फ्रांस, के साथ है और वह अफ़रीका तथा आस्ट्रेलिया की आंगल बस्तियों के मध्य में स्थित हिन्द सागर का अधिपति है॥

(३) इस का कच्चा माल और शिल्प पदार्थ द्वीप द्वीपान्तर में बिकने के लिये जाता रहा है और अब भी इस देश के उत्पन्न पदार्थों के बिना सभ्य संसार को बड़ा धक्का लग सकता है॥

(४) उपरोक्त कारणों से देश देशान्तरों के निवासी इस सुवर्ण भूमि से सदा ईर्षा करते आये हैं और इसे काबू करने के यत्न में निरन्तर लगे रहे हैं। आज कल यह देश आङ्गल सम्राट के आधीन आङ्गल राज्य का बड़ा दृढ़ स्तम्भ है॥

८—प्राकृतिक शक्तियों का भारत वासियों पर प्रभाव—

(१) भूमि की अधिक उपजाऊ शक्ति से भोजन सामग्री के लिये उद्योग कम करना पड़ता है, आराम और भोग की ओर प्रवृत्ति होती है। इसी के कारण अन्य देशों के लोग इस ओर आकर्षित होते रहे और अन्य देशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध अधिक रहा॥

(२) देश के अधिक विस्तृत होने से भिन्न २ आक्रमणकारी जातियों को अपने २ पृथक व्यक्ति रूप में रहने का अवसर मिलता रहा, भिन्न जातियों को एक राष्ट्रीय जाति बनाने की कभी न सूझी॥

(३) देश में बहुत से दुर्गम पर्वत और रेगिस्तान होने से भिन्न २ जातियों का परस्पर मिलाप दुस्तर हो गया और चिर काल तक पर्वतों और राजपूताना के निवासी आक्रान्ताओं से वीरता पूर्वक लड़ कर स्वतन्त्र रह सके॥

(४) वीर हृष्ट पुष्ट जातियां यहां अधिक रहने से भोगों में पड़ कर क्षीण हो गईं। आर्य्यों, पठानों और मुगलों-सबकी यही अवस्था हुई और आज कल आङ्ग्लों की भी यही दशा होती और होगी यदि वे मौसमी पक्षियों की न्यांई कुछ वर्ष इस देश में काट कर फिर अपने देश इंगलैण्ड में न जाते रहते और रहें॥

अध्याय २

प्राचीन भारत वर्षीय इतिहास बनाने के साधन॥

१-अति प्राचीन पुस्तकों का लोप—भारतवर्षीय पुरातन इतिहास के अन्धकारावृत होने के कारण ईसाब्द से छै सौ वर्ष पूर्व का इतिहास जानने के लिये विश्वास जनक दृढ़ प्रमाणों की

उपलब्धि नहीं होती, परन्तु उन का जानना परमावश्यक है, अतः अति प्राचीन इतिहास के अन्वेषणार्थ उन धर्म ग्रन्थों की शरण लेना आवश्यक है, जिन को धर्म-व्रती भारत वासियों ने तन मन धन से अद्यावधि सुरक्षित रक्खा है। ईसाब्द से ६०० वर्ष पूर्व बौद्ध काल आरम्भ होता है इस समय से भी पूर्व पुरातन आर्य्यों ने सहस्रों ग्रन्थ रचे थे, जिन में से बहुतों का अब लोप हो गया है (कारण अङ्क ७ में देखो) परन्तु अनेक विघ्न तथा बाधाओं से बचे जो पुस्तक अब भी उपलब्ध होते हैं उन में से मुख्य २ निम्नलिखित हैं, इन्हीं की सहायता से इतिहास बन सकता है:—

२—इतिहास निर्माण में जो पुस्तकें सहायता देती हैं—१. चार वेद—ऐतिहासिक सम्प्रदायानुसार न कि वेदों को अनादि मानने वालों के अनुसार—ऋक्, यजुः, साम, अथर्व ॥

२—ब्राह्मण—ऐतरेय, तैत्तरेय (ताण्डय) शतपथ, गोपथ

३—आरण्यक—ऐतरेय, तैत्तरेय, आदि ।

४—उपनिषद्—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर आदि ॥

५—श्रौत सूत्र—कात्यायन, लाटयायन, आश्वलायन, साङ्खयायन ।

६—गृह्य सूत्र—पराशर, गोभिल, आश्वलायन, आपस्तम्भ आदि।

७—षड्दर्शन—साङ्ख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त।

८—वाल्मीकिरामायण

९—महाभारत—१८पर्व

१०—व्याकरण—पाणिनीयाष्टकम, यास्कीय निरुक्त ॥

३ उक्त साहित्य का ऐतिहासिक गौरव-वाल्मीकि रामायण और महाभारत कुछ ऐतिहासिक पुस्तकें हैं परन्तु समय २ पर उन में वृद्धि होते रहने के कारण एक नियमित समय का निश्चित इतिहास नहीं मिलता, सहस्रों वर्षों की ऐतिहासिक वार्तों और दन्त कथाओं ने उन का मूल्य और गौरव कम कर दिया है ॥

सच्चा इतिहास—व्याकरण को छोड़ कर बाकी सब धार्मिक ग्रन्थ हैं। उन में प्रजा के रहन सहन की विधि पूजा पाट यज्ञ आदि करने के तरीके, उन की आर्थिक सामाजिक मानसिक अध्यात्मिक दशायें अवश्य प्रगट होती हैं। आज कल राजवंशों की उन्नति और अवनति तथा राजाओं के दर्बारों का वृत्तान्त देना ही ऐतिहासिकों का कर्तव्य समझा जाता है, यह इतिहास का केवल एक छोटा सा अंग है, प्रधान अंग तो प्रजा की सर्व प्रकार की दशा का अवलोकन

ही है, यही अंग हमें भारतीय धर्म ग्रन्थों के अवलोकन से मिल सकता है परन्तु उस में दो बड़ी त्रुटियें हैं:—

(क) प्रथम तो हम उन ग्रन्थों का निर्माण समय वास्तविक तौर से नहीं जानते इस लिये नहीं कह सकते कि किस समय की सभ्य समाज का यह वर्णन है॥

(ख) दूसरा प्रत्येक पुस्तक में भी समय २ पर मन घड़न्त नवीन योजना की गई है अतः वह कितने सौ वर्षों का वृत्तान्त बताता है यह नहीं कहा जा सकता ॥

सहज विधि यही हो सकती है कि उपरोक्त दश समूहों को पृथक २ लेकर उन में से जो ऐतिहासिक बातें हों वह संक्षेपतः दिखाई जावें। स्थान के अभाव से इस पुस्तक में अति संक्षेप किया गया है, बुद्धिमान् पाठकों को वह पुस्तक स्वयं पढ़नीं चाहियें, विद्यार्थियों के लिये यह संक्षेप अमूल्य है॥

४—बौद्ध और पौराणिक काल के इतिहास बनाने के साधन—इन समयों के इतिहास बनाने में पूर्ववत् कठिनाइयां नहीं हैं क्योंकि बहुत से साधन मिलते हैं। यद्यपि वह अद्यावधि अपूर्ण हैं तथापि साधारण इतिहास की रचना के लिये पर्याप्त हैं॥

(१) वंशावली—वंश परम्परा बनाने की अभिलाषा राजाओं से लेकर साधारण आर्य तक को अब भी है। पुरातन समय में यह वंशावलियां बनती थीं और उन को शताब्दियों तक लिखा हुवा तथा अभ्यास में रक्खा जाता था। भोज पत्र पर एक लेख जो न्यून

से न्यून १४०० वर्ष पूर्व लिखा गया होगा भारत में मिला है इस प्रकार के अनेक पत्र भूमि के गर्भ में दबे हुवे होंगे उन्हें खोज कर निकालना आवश्यक है। पुराणों की राजवंशावलियां तथा नैपाल और उड़ीसा की राजवंशावलियां अब तक प्रसिद्ध हैं, परन्तु उन में प्राचीन राजाओं के विषय में अधिक अशुद्धियां हैं। विचार पूर्वक उन को उपयोग में लाना चाहिये॥

(२) नील पत्रिका—नील पत्रिका लिखने की रीति पुरातन काल से भारतीय राज्यों में थी, आज कल भी नील पत्रिकाओं Blue books में आंगल सरकार राज्य वृतान्त छपवाती है। राज्यों की सभ्यता तथा नीति शास्त्र की आज्ञायें हमें दर्शाती हैं कि पुरातन भारतवर्ष में नील पत्रिकाएं अवश्य बनती थीं। जैसे आजकल का इतिहास निश्चय पूर्वक नील पत्रिकाओं से बनता है वैसे प्राचीन काल का इतिहास बनाते समय उस समय की नील पत्रिकाओं का अन्वेषण करना चाहिये॥

(३) वंश इतिहास—वंश इतिहास लिखे जाते थे उनमें नील पत्रिकाओं में से मसाला लेकर राजकीय शासन वृतान्त लिखते थे। ऐसे इतिहासों का एक पर्व हाथी गुम्फा (१५५ ई० पू०) की दीवारों पर लिखा है॥

(४) पुराणों की ऐतिहासिक त्रुटियां—पुराण और

उपपुराणों से थोड़ा बहुत इतिहास अवश्य है उनमें राज वंशावलियां तथा राजाओं का शासन काल भी दिया है। यदि यह पूर्ण तथा सत्य होते तो भारत इतिहास नवीन रीति से लिखने में कोई कठिनाई न होती परन्तु (१) कलि सम्वत के अतिरिक्त वह आज कल के प्रचलित सम्वत् ही नहीं बताते (२) बल्कि एक २ पुस्तक में ही परस्पर विरोध है। पुराणों में दिये राजाओं के नामों और कालों में परस्पर भेद है और (३) सम कालीन वंशो को एक दूसरे के पीछे रक्खा है। (४) बहुत पुराने राजाओं को सहस्रों वर्षों का राज्य करते कहा है। इन त्रुटियों से पुराणों की राज सम्बन्धी बातें बताने में वह मूल्यवान नहीं है। परन्तु उक्त राज वंशावलियां तथा राजाओं के वृत्तान्त को अवश्य ऐतिहासिक पुस्तकों के आधार पर लिखा होगा अतः उन्हें सावधानी से प्रयुक्त करने से बहुत लाभ होसकता है॥

(५) राज तरङ्गिणी—राज तरङ्गिणी नामी पुस्तक में जिसे कल्हन पण्डित ने लिखा है काश्मीर का बहुत अच्छा इतिहास है। उसकी प्रशंसा पाश्चात्य विद्वान् भी करते हैं परन्तु पुरातन राजाओं के समय देने में इस ऐतिहासिक बुद्धि वाले पण्डित ने भी भारी भूल और अशुद्धि की है। अर्वाचीन काश्मीर का वृत्तान्त बड़ा ही मनोरञ्जक है परन्तु काल की भूल होने से शुद्ध पुरातन इतिहास नहीं मिलता॥

(६) धातु लेख और सिक्के—(क) लोहा, ताम्बा, जस्त, पीतल, सोना, चान्दी आदि धातुओं के सिक्कों (ख) भिन्न २ प्रकार के पत्थरों और मिट्टी के पक्के बर्तनों (ग) लकड़ी और बाम की पट्टियों पर राजाओं की आज्ञायें लिखी हुई या खुदी हुई मिली हैं, जिन्होंने इतिहास के बनाने में बहुत कुछ सहायता दी है॥

(७) शिला लेख—लाटों, टोपों, कन्दराओं, गुहाओं, वृत्तों और मन्दिरों की दीवारों पर राजाओं के लेख खुदवाये हुये मिले हैं। यह सब बहुमूल्य हैं॥

(८) विदेशी यात्री—विदेशीय यात्रियों के लेखों से बड़ी सहायता मिली है जैसे मेगास्थिनीज़, फाहीन, ह्यूनसांग अब तक यात्रियों में प्रसिद्ध हैं। उपरोक्त तीन साधनों के बिना बौद्धकाल तथा पौराणिक काल का विश्वास जनक इतिहास बनना असम्भव था॥

(९) विदेशी साहित्य—भारतवर्ष का व्यापारिक सम्बन्ध ईरान, रूम, शाम, अरब, मिश्र, यूनान, रोम आदि देशों से रहा है, इन देशों के प्राचीन इतिहासों और साहित्यों के आन्दोलन करने से बहुत प्रकाश पड़ने की आशा है॥

(१०) भारतीय साहित्य—बौद्ध जैन और पौराणिक धर्म के साहित्य और ज्योतिष आदि ग्रन्थों से भी असीम सहायता मिलती है। हिन्दु लोग संस्कृत भाषा का विशेष आदर नहीं करते यही कारण है कि उन ग्रन्थों में भरे हुवे रत्नों से उन्हें वञ्चित रहना पड़ता है॥

५—क्या पुरातन आर्य्यगण इतिहास लिखते थे?—

इस प्रश्न का उत्तर अब सुगम होगया है। इतिहास बनाने के उक्त पहले पांच साधनों से स्पष्ट पता लगता है कि आर्य लोग अवश्य इतिहास लिखते थे॥

इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति और महिमा—

(१) इति+ह+आस शब्द स्वयं बल पूर्वक कहता है कि भूतकाल की घटनाओं को यथार्थ लेख बद्ध करने वाली वह विद्या है। (२) वेद ब्राह्मण उपनिषद गृह्यसूत्र महाभाष्य महाभारत और लौकिक साहित्य में इतिहास की बड़ी महिमा गाई गई है उसको पञ्चम वेद कहा है, उसे ब्रह्मचारियों को पढ़ाते थे, राजाओं को सुनाते थे, उसे धर्म अर्थ काम मोक्ष का साधन समझते थे। ऐसे असन्दिग्ध प्रमाणों के होते हुवे भी यदि कोई कहे कि इतिहास ही नहीं था तो उसका हृदय अवश्य पक्षपाती होगा॥

आर्यों की सभ्यता तथा वीरता—उक्त पुस्तकों के पढ़ने तथा बौद्ध काल के प्रमाणिक इतिहास से पता लगता है कि आर्यों की सभ्यता अद्वितीय थी और वह अति शूर-वीर थे। फिर क्या वह इतिहास लिखना ही नहीं सीखे थे जिस में अपने वीरों और राजाओं का वृत्तान्त लिखते ? यदि आर्य असभ्य होते तब हम मान लेते कि उन में इतिहास लिखने की शक्ति न थी परन्तु पूर्वोक्त प्रमाणों की उपस्थिति में आर्य अवश्य इतिहास लिखना जानते थे-यह मानना ही पड़ेगा।

६—भारतीय ऐतिहासिक पुस्तकों के दोष :—पुरातन आर्यों का लिखा इतिहास कैसा था इस प्रश्न का उत्तर ठीक नहीं दिया जा सकता परन्तु रामायण, महाभारत, पुराणों का ऐतिहासिक भाग, राजतरङ्गिणी और राजतरङ्गणी में उक्त पूर्वीय ग्यारह ऐतिहासिक ग्रन्थों को तथा चन्द्र कवि रचित पृथ्वीराज रासो के देखने से ज्ञात होता है कि इतिहास लिखने की विधि ठीक न थी और यतः इतिहास लिखने की शैली प्रायः छन्द में थी अतः असत्यता, कौतुक, वैचित्र्य, और मनोरञ्जक कल्पनायें उन ग्रन्थों में अधिक अवश्य आती थीं जिनके कारण सत्य से यत्किञ्चित् ध्यान स्खलित होता होगा।

७—आर्यों की लिखी ऐतिहासिक पुस्तकें क्यों नहीं मिलतीं

(१) पौराणिक अत्याचार—पौराणिकों ने बौद्धों तथा जैनियों को देश से निकालने, उनको अनेक कष्ट पहुंचाने, उनके पवित्र स्थान तथा मूर्तियों के तोड़ने के साथ २ उनकी सहस्रों पुस्तकों का नाश अवश्य किया होगा जिन में इतिहास की पुस्तकें भी अवश्य होंगी।

(२) सहस्रों परिवर्तन—आर्य जाति के अत्यन्त प्राचीन होने से उन में शतशः परिवर्तन आने के कारण सहस्रों पुस्तकों का लोप होना सम्भव है। धर्म कर्म की पुस्तकों की रक्षा अत्यावश्यक थी अतः वह किसी न किसी प्रकार जान और माल को त्याग कर भी बचा ली गई।

(३) मुसलमानों का अत्याचार—मुसलमानों ने सहस्रों आर्य मन्दिरों और पाठशालाओं को गिराया तथा जलाया, नगरों में आग लगाई पुस्तकों के ढेर के ढेर लगवाकर भस्मसात् करवा दिये, पुस्तकों से हिमाम गरम करवाये। ऐसी दशा में राजाज्ञा के विरुद्ध आर्य सन्तानों ने प्राणप्रिय कुछ धर्म ग्रन्थों की रक्षा की जो आज हमें मिलते हैं।

धनुर्वेद, आयुर्वेद, अर्थवेद, ११०० वैदिक शाखाएं, वाकोवाक्य, इतिहास और चौसठ कलाओं पर सहस्रों पुस्तकें, तथा राजनीति, एवं ज्योतिःशास्त्र लुप्त होगये हैं। शङ्कराचार्य

माधवाचार्य, अब्बुल फज़ल और १६ वीं शताब्दी के आङ्गल लेखकों की बनाई हुई पुस्तकों में जिन संस्कृत पुस्तकों का वर्णन आता है उनमें से कई पुस्तकों का नामो निशान भी अब नहीं मिलता।

(४) पादरियों का अत्याचार–पादरियों ने भी पहले पहिल संस्कृत पुस्तकों को नदी, समुद्र, और अग्नि के भेंट कर सत्यानाश किया है। ताकि अपने धर्म से अपरिचित हिन्दू उनके धर्म को ग्रहण करें।

उपरोक्त चार कारणों से केवल कुछ धार्मिक ग्रन्थ कठिनाई से बचाये गये हैं, इतिहास, शिल्प तथा अन्य अत्युपयोगी विद्याओं की पुस्तकों का सर्वथा नाश ही होगया है।

अध्याय ३

आर्य्यों के प्रवेश से पूर्वकाल का इतिहास

(१) यदि वर्तमान समय के भारतवर्ष पर दृष्टि पात किया जावे तो भिन्न २ जातियों, भाषाओं, रीतिरिवाजों और धर्मों का निवास स्थान बना हुआ प्रतीत होता है। अब इस में सात अति प्रधान जातियां निम्न प्रकार से निवास करती हैं।

जाति	आज कल कहां मिलती हैं?	उपजातियां
१. असभ्य असली देश निवासी	पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रांत, बरार दक्खन, अण्डेमान द्वीप।	गोण्ड, खाण्ड, सन्ताल, भील, मुण्ड, वल्लाल, नगर, ग्रनन, भुमीज।
२. मंगोल	नेपाल, भूटान, आसाम, बर्मा।	खासी, लिम्बु, दुशाई, बर्मी।
३. आर्य्य	काश्मीर, पंजाब, राजपुताना।	जाट, राजपूत, सिक्ख, काश्मीरी।
४. द्राविड़-मंगोल	बंगाल, उड़ीसा।	बंगाल-ब्राह्मण, वैद्य, कागदी
५. आर्य्य-द्राविड़	युक्त प्रांत, उत्तरी बंगाल, उड़ीसा।	बभन, चमार
६. सिथद (शक) द्राविड़	बम्बई प्रान्त, कुर्ग।	देशष्ठ, महरट्टा-ब्राह्मण, प्रभु
७. तुर्क-ईरानी	बलोचिस्तान, पंजाब, उत्तरी सीमा प्रान्त।	बलोच, ब्रहुई, मरिस

आर्य्य जाति का वास स्थान—सारे भारत वर्ष में केवल काश्मीर, पंजाब, राजपूताना के इलाकों में आर्य्य जाति का वास है बाकी सारे देश में आर्य्यों के आने के पहिले जो जातियां रहती थीं वही अब तक रहती हैं तथा अन्य देशों से जो लोग समय २ पर आक्रमण कर्त्ता के रूप में आकर बसे वह पाए जाते हैं। ऊपर लिखित चित्र से भारत वर्ष की जातीय अवस्था का साधारणतया पता लग जावेगा। वस्तुतः इस देश में ४३ जातियों और २३७८ उपजातियों का वास है॥

२. भिन्न धर्म और भाषाः—भारत में जब भिन्न २ जातियों का वास हो जो कि भिन्न २ देशों से आई हुई हैं और जिन का भारत में आने का समय भी एक दूसरे से बहुत दूरी पर है। तो वे समान धर्म वाली कैसे हो सक्ती हैं? असली देश निवासी भूतों तथा प्रेतों के पुजारी थे और आर्य्य वैदिक धर्म के अनुयायी थे, फिर उन्हीं में बौद्ध तथा जैन मत का प्रचार हुआ। ११ वीं शताब्दी से मुसलमानी धर्म का और १६ वीं शताब्दी से किरानी मत का विस्तार होना भारत में आरम्भ हुआ। भिन्न धर्मों के होते हुवे भाषायें भी भिन्न हैं, उन की संख्या १५० के लग भग है और वह ३० प्रकार के अक्षरों में लिखी जाती हैं॥

३. भारती इतिहासः—प्रश्न यह है कि (१) कहां से किस २ समय आकर उक्त जातियां भारत में आबाद हुईं? (२) उन्होंने एक

शीघ्र क्रोध करने वाले, खेल कूद में समय व्यतीत करने वाले, अदूरदर्शी और आलसी थे उनकी बहुत सी उपजातियां थीं। प्रत्येक उप जाति का अपना २ नेता और पुरोहित होता था। यह भूत प्रेतों को पूजते और पितरों तथा भूतों को पिण्ड देते थे, इनकी देखा देखी हिन्दुओं में आज तक ये रस्में पाई जाती हैं, अब ३० लाख कोल भारत में रहते हैं॥

६. द्राविड़:—द्राविड़ शांति, धैर्य्य और उद्योग के प्रेमी थे, युद्धों में उन की रुचि न थी। कोलों से उन की संख्या तथा सभ्यता बहुत दर्जे बढ़ी हुई थी: वे पशुपालन तथा कृषि में अधिक चतुर थे, वे ग्रामों तथा नगरों में कम से कम ५००० वर्ष पूर्व रहा करते, अपने राजाओं और मण्डलाधीशों के आधीन एक प्रकार की सभ्य राजनीति चलाते थे। सूरत, भरोच, पाटाल के बन्दरगाहों में से दक्षिण की वस्तुयें अन्य देशों में जाकर बिकती थीं। वे भूतों और प्रेतों को नहीं पूजते थे परन्तु पृथिवी को माता जानकर पूजते थे और साथ ही पत्थरों, वृक्षों, सर्प, सूर्य की आराधना करते थे। यह विविध प्रकार की पूजायें आधुनिक पौराणिक धर्म में घुसी हुई हैं॥

उत्तर भारत के अधिकांश से मंगोलों और आर्य्यों ने द्राविड़ों को घोर संग्रामों के पश्चात् निकाल दिया तब वे दक्षिण में जाकर आबाद हुए और सहस्रों वर्षों के पश्चात् आर्य्यों के वास से प्रभावित होकर आर्य्यों की रीति रिवाज और सभ्यता का ग्रहण

करने लगे। परन्तु संपूर्ण परिवर्तन नहीं आया इस कारण अब तक उन में स्वतन्त्र विचार, आचार, रीति रिवाज और भाषा पाई जाती है। ६० लाख द्राविड़ इस समय दक्षिण में पाये जाते हैं जो कम से कम १४ भाषाएं बोलते हैं, तामिल, तलेगु, कनाड़ी और मलायम उन में से प्रसिद्ध हैं। मद्रास प्रान्त में द्राविड़ों की अधिक संख्या का वास है॥

७-मंगोलः-चीन और मंगोलीया के असभ्य निवासी ब्रह्म पुत्र की घाटी के मार्ग से भारत के पूर्वोत्तर में आये, उन के कुछ समूह तिब्बत और ब्रह्मा देश में आबाद हुए और आज कल के तिब्बतियों और बर्मियों के पूर्वज बने। आसाम, उड़ीसा, बंगाल में मंगोलों और द्राविड़ों की सन्तान इस समय तक दिखाई देती है। मंगोल लोगों के छोटे कद, चौड़े सिर, चपटी नाक, छोटी और तिरछी आंखें और भूरा रंग था। यद्यपि द्राविड़ों को उन्हों ने जीत कर उत्तर पूर्व से निकाल दिया, या दास बनाया तथापि वे आर्य्यों से हार गये और शनैः २ उनकी सभ्यता ग्रहण करली।

(८) आर्यों के आगमन से अब तक भारत वर्ष के इतिहास के तीन बड़े भाग हो सकते हैं:

१-आर्यकालः—अज्ञात काल से १२०० ईस्वी तक। इस काल के उपभाग यह हैं:—

(क)	वैदिक काल	१०००–३०००	ई० पूर्व
(ख)	याज्ञिक	३०००–१२००	,,
(ग)	दार्शनिक	१२००—६००	,,
(घ)	बौद्ध	६००ई०पू०—५०० ई०	पश्चात्
(ङ)	पौराणिक	५००–१२००	,,

(२) मुसलमानी काल—१२०० से १७७० ई० तक–१००० ईस्वी से इन लोगों के विशेष आक्रमण होने लगे। किन्तु वे लगभग १२०० ई० में सुफल हुए।

इस काल के तीन भाग हैं :—

(क) पठान काल (१२०६-१५२६)– १२०० में भारत का वास्तविक विजय आरम्भ हुआ और एक सौ वर्षों के अनन्तर दक्षिण भी यवनों ने जीत लिया।

(ख) मुग़ल काल (१५२६-१७७०)–१६वीं शताब्दी में मुग़ल वंश का उद्भव हुआ जिस ने सारे भारत को कुछ काल के लिये एक छत्र के आधीन किया।

(ग) हिन्दू जागृती (१७४०-१८०४)– इस में महरट्टों और सिक्खों ने भारत का बहुत सा राज्य प्राप्त कर लिया परन्तु यह राज्य स्थिर न रह सका।

(३) आङ्गल काल (१८०० से अब तक)–१६वीं शताब्दी से योरुपी जातियों ने भारत में राज्य स्थापित करना चाहा, आङ्गल कृत कृत्य हुए और उन्हीं के शासनाधीन अब भारत वर्ष है॥

कि वह भारत वर्ष में किसी अन्य स्थान से आये हैं । ऐतिहासिकों, यात्रियों और आर्यों की ओर से इस घटना को छिपाने का क्या उद्देश्य था ?

११—भारतवर्ष को आर्य क्या समझते थे ? (ख) आर्य लोग भारत वर्ष को आर्यवर्त, ब्रह्मावर्त्त, पुण्य भूमि और अपने आपको अग्रजन्मा नाम से कहते रहे । कभी उनके वास्तविक स्थान के प्रेम ने उन्हें उस ओर न खींचा ! मोक्ष मूलर साहिब का मत है कि ऋग्वेद के कुछ मंत्र आदिम आर्यों ने बनाए और वहां मनोविनोद के लिये गाते थे । अस्तु ! क्या अश्चर्य दायक घटना है कि भारतवर्ष में आने वाले आर्यों ने सहस्रों मन्त्र अधिक बना लिये और वेदों के अधार पर एक विचित्र सभ्यता भी उत्पन्न करली परन्तु योरुप में जाने वाले आर्य उन जातीय गीतों को भूल गए ! वहां नग्न अवस्था में पशुओं से सहस्रों वर्षों तक लड़ते रहे और अन्ततः थोड़ी सी शताब्दियों से ही सभ्यता की ओर उन्होंने पग रक्खा । क्या कभी संभव हो सकता है कि एक फिरन्दर असभ्य जाति संस्कृत जैसी दिव्य, शुद्ध, पवित्र, रसीली, पूर्ण, व्याकरण के नियमों से बद्ध वाणी को बोल सकती थी या वेदों के गूढ़ मन्त्र बनाकर कृषि करते हुए गा सकती थी ?

"गर फ़िरदौस बर रूए ज़मीन अस्त ।
हमीन अस्त हमीन अस्त हमीन अस्त ॥

कह कर स्वर्ग स्वर्ग पुकारते हैं, और जिसमें सात्विक मनुष्यों के लिये सर्व प्रकार के कन्द, मूल, फल फूल पाये जाते हैं ॥

१.४. नारवे और जर्मनी में आर्य्यों का वास न था—योरुप के उत्तर से आर्य्य भारत में नहीं आये क्योंकि जिन युक्तियों से योरुप में निवास सिद्ध किया जाता है वह सारी युक्तियां काश्मीर पर घटती हैं। आर्य्य जातियों में जो शब्द समान हैं उनसे जो सभ्यता टपकती है वह नारवे के पुरातन इतिहास में कभी नहीं हुई। यदि भारतीय प्राचीन समय में योरुप निवासी थे तो संस्कृत भाषा किसी योरुपीय भाषा से निकली हुई होनी चाहिये। परंतु कोई विद्वान् इस बात को मानने के लिये तय्यार नहीं होगा। मोक्षमूलर के कथनानुसार यदि संस्कृत सब भाषाओं की माता नहीं है तो ज्येष्ठ भगिनी अवश्य है और सब से पुरानी पुस्तक मानवीय पुस्तकालय में इस समय ऋग्वेद माना जाता है *

१.५. अन्य देशों में निवास स्थान रखने का स्वाभाविक कारण—सत्य यह है कि एक सहस्र वर्षों से भारतीय आर्य्य विदेशियों के

---

* हमने अपने शब्द—व्युत्पत्ति कोष (Etymological Dictionary) में आङ्गल भाषा के सर्व शब्द संस्कृत से बने हुए दिखाए हैं, उनसे संस्कृत मातृ भाषा की पदवी प्राप्त करती है ॥

'प्रमाण ईरानियों के आर्य्य होने में दिया जासकता है। शायद यही कारण था कि दारा और ज़र्कसीज़ ने भारत को सिंध तक 'फतह किया परंतु वास्तविक भारत में विजय न की क्योंकि उन्हें अपने पूर्वजों के पुरातन देश से प्रेम था॥

१.७. आर्य्यों का नाम हिंदु क्यों पड़ा?— जो आर्य्य सिन्ध तथा उसकी सात शाखाओं के इलाके में रहते थे उन्हें सप्त 'सिन्धव का नाम दिया गया। ईरानी लोग "स" को "ह" बोलते थे। इस कारण आर्य्यों का नाम हप्तहिंदव होगया। ज़िंदावस्था में लिखा है कि परमात्मा ने हप्तहिंदव को १५वीं भूमि उत्पन्न किया। यूनानी बाईबल में भी हिंद शब्द दिया है। सिंधु के अर्थ नदी के थे ही परंतु जैसे वह नदी बहुत वेगवती और शक्ति शालिनी थी वैसे आर्य भी उस समय के समझे जाते थे। थैमिस्टोक्लीज़ महाशय लिखते हैं "हिंद की शक्ति तथा यश को देखकर यहूदियों ने उसे हिन्द कहा और हिब्रु में भी हिन्द के अर्थ शक्ति शाली के हैं"। अतः हिन्दु के अर्थ शक्तिशाली आर्य्य के हैं न कि काले आदमी या चोर डाकू के। जैन ग्रन्थों में हिन्द के अर्थ हिंसा से दूर रहने वाले पुरुष के किये हैं। मुसलमानों ने शत्रुता के कारण ही हिन्दु के अर्थ बिगाड़ दिये।

यूनानियों ने "ह" भी उड़ाकर "इन्द" कर दिया था जिस से आजकल का प्रचलित शब्द India इन्डिया निकला है। चीनि लोग इस देश का नाम "इन्दु" (चान्द) कहते थे क्योंकि बाकी सब देश तारों के समान इस चांद के सामने तुच्छ थे॥

अध्याय ४

वैदिक काल

(१) वेदों का निर्माण काल:—अति प्राचीन काल से अब तक सर्व भारतीय आर्य्य वेदों को नित्य अनादि और अपौरुषेय मानते आए हैं बल्कि वेदों में से डाक्टर सूर साहिब ने भी सैंकड़ों ऐसे मंत्र निकाले हैं जो वेदों को ईश्वरीय ज्ञान बताते हैं। किसी एक व्यक्ति या मानव समूह ने उन्हें नहीं बनाया बल्कि इस सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु सूर्य, अङ्गिरस नामी ऋषियों को परमात्मा ने ज्ञान दिया और उन्होंने इन चार वेदों के मंत्र प्राप्त किये। संसार के सब विद्वान् इस बात को मानते हैं कि ऋग्वेद मानव पुस्तकालय में अत्यन्त प्राचीन पुस्तक है परन्तु हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य कोई जाति इस समय इन वेदों को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानती क्योंकि उन सब ने अपनी २

ईश्वर दत्त पुस्तकें कल्पित की हुई हैं और इतिहास, पदार्थ विद्या
तथा पक्षपातता के आधार पर यह वेद उन जातियों की
अपौरुषेय नहीं मालूम होते। अतःएव जब एक बार वेद पुरुषकृत
मान लिये गये तो भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की ओर से
उन के निर्माण काल की खोज होने लगी परंतु भिन्न २ विद्वानों
ने भिन्न २ काल बताये हैं जैसेः—

मैक्समूलर, विलसन, ग्रिफथ	२०००—१५०० ई० पूर्व०
जैकोवी	४००० ई० पूर्व०
बाल गंगाधर तिलक	५०००—३००० ई० पूर्व०

(२) वेदों के बनाने वाले ऋषिः—पूर्व कहा गया है कि
आर्य सन्तान का दृढ़ विश्वास है कि सर्वज्ञ परमात्मा ने अपने पुत्रों
के ज्ञान और सुख के लिये अग्नि, वायु, सूर्य, अङ्गिरस् ऋषियों के
द्वारा एक अनादि ज्ञान दिया, परन्तु पश्चात्य विद्वान् तथा भारत
के पुरातन तथा नवीन ऐतिहासिक उन्हें मनुष्य कृत मानते हैं
अतः उन कतिपय ऋषियों के नाम ज्ञात होने चाहियें जिन्होंने
सब से प्राचीन पुस्तक के मन्त्र समझने वा बनाने में भाग लिया ॥

पराशर	अगस्त	कृष्ण	ध्रुव
गोतम	मनु	गर्ग	धर्म
कश्यप	मन्यु	अत्रि	विष्णु
विश्वामित्र	ययाति	यम	नारायण
वसिष्ठ	नहुष	विश्वकर्मा	जमदग्नि
नारद	भृगु	द्रोण	शुनःशेप

३—वेद मंत्रों की संख्या—वेद के स्थान पर अन्य कई नाम भी प्रचलित हैं जैसे श्रुति, मंत्र, ऋचा, छन्द, ईश्वरीय-ज्ञान, त्रयी विद्या ॥

ऋग्वेद में	१०५१८	मंत्र हैं ॥
यजुर्वेद में	१९७५	मंत्र हैं ॥
सामवेद में	१०६४	मंत्र हैं ॥
अथर्ववेद में	५८४७	मंत्र हैं ॥
	१९४०४	

४—वैदिक सभ्यता—ऐतिहासिक मतानुसार चूंकि वेद अत्यन्त प्राचीन पुस्तकें हैं इस कारण आशा थी कि अति प्राचीन सभ्यता के नमूने इन में मिलेंगे अर्थात् मनुष्य आदिम अवस्था में कैसे रहते सहते थे? क्या भोजन करते थे? कौन से देवता पूजते थे? क्या विचार करते थे? यह मनोरञ्जक बातें ज्ञात होंगी परन्तु उन्हें पढ़ कर यह सब आशायें मिट गईं. मैक्समूलर ने कहा कि वेदों में १९वीं सदी के उच्च विचार भी पाये जाते हैं. मैक्साहब तथा अन्य वेदज्ञ विद्वानों ने भी इस से सहमति दिखाई। वस्तुतः वेदों की सभ्यता बड़ी उच्च है और जो सभ्यता वर्तमान समय में पाश्चात्य देशों में दीख पड़ती है इस से भी कई अंशों में अधिक। आज से १०००० वर्ष पूर्व विकास सिद्धांतानुसार लोग असभ्य होने चाहियें थे परंतु यह कैसी अद्भुत घटना है कि वेदों में कई

विचार १९ वीं सदी से भी उच्च पाये जावें ! आगे चलकर पता लगेगा कि वेद बहुत विद्याओं के भण्डार, उच्च सभ्यता के समुद्र हैं। इस कारण उन्हें ईश्वरीय ज्ञान मानना पड़ता है परन्तु यदि वेदों में इतिहास मानना हो तो पं० तिलक का मत शिरोमणि होगा। उनके मतानुसार ८००० ई० पूर्व संसार में जब वर्फानी लहर आई तब बहुत से आर्य मर गये, जो बचे उन्हें अन्य देशों में भागना पड़ा, उन भागे हुए आर्यों की स्मृति में जो कुछ रह गया था उसे उन्हों ने वेद नामी पुस्तकों में लिख दिया अर्थात् आर्यों की वास्तविक सभ्यता की छाया वेदों में पाई जाती है। वस्तुतः मनुष्य इस संसार में १०००० वर्षों से ही नहीं है परंतु इस से भी कई गुण अधिक समय पूर्व से विद्यमान थे, उन्होंने धीरे २ सभ्यता अवश्य उन्नत की होगी। अतः वेद कितने सहस्र वर्षों की सभ्यता के दर्शक हैं उसका अनुमान करना बुद्धि से बाहिर है।

५–वेदों में भूगोल सम्बन्धि ज्ञान–कहा जाता है कि वेदों में २५ नदियों के नाम आये हैं जिन में से बहुत सी उत्तरीय भारत वर्ष की हैं और बाकी नदियें पश्चिमीय तथा ईरान तक के देशों की हैं। दक्षिणीय भारत वर्ष की किसी नदी, पर्वत वा देश का नाम नहीं, यहां तक कि विन्ध्याचल पर्वत और नर्मदा नदी का नाम भी नहीं। इस विचित्र घटना से ऐतिहासिक यह परिणाम

निकालते हैं कि आर्य उत्तरीय भारत वर्ष तक रहे, और ईरान तक के निवासियों के साथ उनका गहरा सम्बन्ध था, या वह स्वयं ही पश्चिम से आये थे, और दाक्षिण में असभ्य तथा भयंकर द्राविड़ों और कोलों आदिकों का वास होने से वैदिक समय में वहां आर्य न जासके थे। प्रसिद्ध नदियां यह हैं:—

सिन्धु, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शतद्रु, पुरुष्णी, मरुद्वृधा, आर्जिकीया, असिक्नी, वितस्ता, सुषोमा, सरयू, गोमती, विपाशा॥ अन्यान्य देशों की कतिपय नदियां यह हैं:—

तृष्टामा, सुसर्तु, रसा, श्वेती, क्रुमा, मेहत्नी, कुभा, गहा तनु इत्यादि॥

६—ऋग्वेद में जातियों के नाम—ऐतिहासिक यह भी मानते हैं कि ऋग्वेद में बहुत सी आर्य जातियों के नाम आये हैं यथा:—

(१) गन्धारी या गान्धार जाति—भारत के पश्चिमोत्तर में रहती थी, उन्हीं के देशका नाम आज कंधार कहा जाता है॥

(२) ऋग्वेद में बार २ पांच जातियों का वर्णन आया है जो प्रायः परस्पर लड़ती रहती थीं, उन के नाम यह हैं:—

पुरु, तुर्वशस्, यदु, अनु, द्रुह्यु॥

(३) सिन्ध तथा रावी नदी के मध्यवर्ती प्रदेश के अधिपति राजा सुदास के साथ दश राजाओं के युद्ध होते हैं, उन

दशों में उपरोक्त ४ जातियें थीं, परन्तु संयुक्त सेनायों का सुदास राजा से पराजित होने का वर्णन आया है ॥

(४) सरस्वती के तट पर पुरु रहते थे उन के राजा पुरुकुत्स तथा त्रिक्षी प्रायः वर्णित हैं ॥

(५) अनु रावी के तट पर रहते थे और द्रुह्यों के साथ इनका अधिक मिलाप था। तुर्वशुः जाति का यदु जाति से अधिक प्रेम था ॥

(६) भरत जाति—भी सुदास के साथ उक्त युद्ध में लड़ती रही, यह सरस्वती तथा दृषद्वती के तटों पर रहती थी अथर्ववेद में इस भरत जाति का वास गंगा के तटों पर वर्णित है अर्थात् समय बीत जाने पर आर्यजाति गंगा तक बढ़ गई थी और आर्य इसे ब्रह्मदेश कहते थे, इसी भरतजाति के सुपुत्र राम हुए हैं जो हिन्दुओं में अवतार माने जाते हैं ॥

(७) अथर्ववेद में मागधों और अंगों का भी वर्णन आता है ॥

(८) ब्राह्मण ग्रन्थों में पुरु, तुर्वशुस्, यदु और त्रित्सुस् जातियों का कोई वर्णन नहीं मिलता और भरतों का नाम भी बलवती जाति के तौर पर नहीं आता–ज्ञात होता है कि समयान्तर में पुरानी जातियों ने नवीन नाम रख लिये और कुरु तथा पञ्चाल के नाम प्रसिद्ध हुए। कुरु जाति में भरत, पुरु, ~~म् नामी पुरानी जातियें शामिल थीं; पांचाल जाति में उपजातियें होंगीः क्रिवी, यदु, तुर्वशुस् आदि ॥

(६) ऋग्वेद में अयोध्या के प्रथम राजा इक्ष्वाकु का वर्णन महावली और धनाढ्य के तौर पर आया है ॥ ऐतिहासिकों ने इस प्रकार की कई बातों से वेदों को पुरुषकृत सिद्ध करने में यत्न किया है परन्तु इसी तर्क से अन्य परिणाम भी निकल सक्ता है—वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, जिस समय आर्यों में वेदों का बड़ा प्रचार था तब वेदों का प्रत्येक शब्द आर्यों के लिये माननीय बन गया था. जैसे सांसारिक बात चीत में जयदेव, राम गोपाल, देवदत्त, विष्णुदत्त आदि नाम उदाहरणार्थ लिये जाते हैं वैसे वेद में समझाने के लिये कई राजाओं के कल्पित नाम आसक्ते हैं; उनके युद्धों और मिलापों से कई परिणाम निकाल कर मनुष्यों को दिखाने होते हैं ताकि युद्धों से मानवसमूह बच जावे, उनकी त्रुटियों का त्याग करें और गुणों का ग्रहण करें। जिन २१ नदियों के नाम आये हैं वह शरीर की नाड़ियें हैं, नदियों के आकार और स्वभाव को देख कर यौगिक अर्थों में आर्यों ने ज्यूं ज्यूं वह भारत में आये उन्हें वैदिक नाम दिये, जातियों राजाओं तथा ऋषियों ने भी अपने नाम वेदों में से निकाले सहस्र वर्षों तक आर्य उत्तर में रहे, वैदिक काल की समाप्ति हो चुकी थी जब कि आर्यों ने अपनी बस्तियां दक्षिण में बसाई अतः वैदिक नाम उन्होंने दक्षिण में न रक्खे. अभिप्राय यह है

के कल्पित नदियों पर्वतों राजाओं के नाम होने से वेदों के अपौरुषेय होने में बाधा नहीं आती ॥

७-वेदों में एक परमात्मा की पूजा—बहुत से पाश्चात्य विद्वान् विकाश सिद्धान्त के प्रेमी होने के कारण वेदों में एक परमात्मा की पूजा का मिलना असम्भव समझते थे, वेद सब से पुरातन पुस्तक बालकों की बिलें बिलाहट होनी चाहिये, उनमें पर्वतों, नदियों, वृक्षों, भूतों, प्रेतों, शाकनी, डाकनी, चुड़ेलों तथा अन्य घोर प्राकृतिक वस्तुओं को देव मान कर पूजना चाहिये, इस कारण यदि उन में एक परमात्मा की पूजा पाई जाती है तो बहुत पीछे चतुर ब्राह्मणों ने वेदों में वह मंत्र मिला दिये होंगे और कतिपय पाश्चात्य विद्वान् यह कहने को भी तय्यार हैं कि ऋग्वेद में एक परमात्मा की पूजा के मंत्र नहीं, और अन्य विद्वान् "केवल एक परमात्मा ही इस संसार का कर्ता धर्ता हर्ता है और कोई देव नहीं" इस वचन को सुन कर पुकार उठे हैं कि हमारी समझ में यह मुहिम्मा नहीं आता ॥

सत्य यह है कि विकाश सिद्धान्त से नास्तिकता उत्पन्न हुई है, इस सिद्धान्त के पोषक परमात्मा तथा ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं समझते, इस कारण वह कई प्रकार की भूलों में पड़ते हैं साथ ही विकाश वादी अपने प्रिय सिद्धान्त को भी भूल जाते हैं कि भारतवर्ष में विकास होते २ यहां के ऋषिगण वेदों की उच्च शिक्षा तक पहुंचे, फिर सहस्रों वर्षों के पश्चात

भूमि के अन्य भागों में जैसे मिश्र, रोम, यूनान, ईरान में-विकास होते हुए वहां के निवासी उच्चता के भागी हुए। पाठकों को यह बात हृदयपट पर अङ्कित कर लेनी चाहिए कि वेदों में मूर्तिपूजा तथा मन्दिरों का वर्णन कहीं नहीं आया। आजकल जो कोटिशः हिन्दु और युरोपी लोग इन साधनों से परमेश्वर की पूजा करते हैं वह भी इस अत्यावश्यक बात को भूल जाते हैं या उपरोक्त घटना को देख कर आश्चर्य के समुद्र में गोते खाते हैं। एक परमेश्वर की पूजा सब वेदों में पाई जाती है इस कथन के निम्न लिखित प्रमाण हैं:—

(१) विद्वान् लोग परमात्मा को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि कहते हैं, वह प्रभु सुन्दर पक्षों वाला, प्रकाशमान और अत्यन्त महान् है, वह एक है, विद्वान् उसे अनेक नामों से जैसे, अग्नि यम, तथा मातरिश्वा पुकारते हैं॥

(२) हे अग्नि! अमृत! देव! जातवेदः! तेरे अनेक नाम हैं॥

(३) प्रत्येक पदार्थ में निवास करने से परमेश्वर ने अनेक रूप धारण किये हैं हमारी दृष्टि के लिये उसका वही रूप (प्रकृति में) है॥

(४) परमात्मा ने हमें प्राण दिये हैं वह निर्माता तथा सर्वज्ञ एक ईश्वर है यद्यपि उसके बहुत नाम देवतों के हैं॥

(५) उस समय न पृथिवी थी, न आकाश न दिन, न रात्रि,

न प्राण, न मृत्यु थी, वही एक एकाकी परमेश्वर प्राण रहित संसार में प्राण ले रहा था ॥

(६) जो हमारा पिता, उत्पादक तथा सर्वजीवों और पदार्थों का ज्ञाता है केवल वही एक–जिसके बहुत से देवों के नाम हैं–प्राप्त करने योग्य आदर्श है ॥

(७) वही अग्नि है, वह आदित्य है, वह वायु है, वह चन्द्रमा है, वह शुक्र है, वह ब्रह्म है, वह आप है, वह प्रजा पति है ॥

(८) जो मनुष्य ऐसे एक अद्वितीय परमेश्वर को जानते हैं वह कीर्ति, यश, शक्ति, सुख, ब्रह्मवर्चस्, अन्न और अन्य खाद्य पदार्थों को प्राप्त करते हैं। वह न दो, न तीन, न चार कहा जाता है, न पांच, न छै, न सात, न आठ, न नौ, न दश कहा जा सक्ता है, वह सर्व चराचर जगत् को देखने हारा है, यह सारी शक्ति तथा महत्ता उसी एक की है, वह एक है और एकवृत् ही एक है, इसी एक में सर्व देवता एकवृत् होते हैं, अथ० १३। ४। १४–२४ ॥

(६) वही ईश सर्वव्यापक, पवित्र, काय रहित, व्रण या रंग रहित, स्नायुरहित, शुद्ध, पाप रहित, सर्वज्ञ, मनन शील, सर्वान्तर्यामी और अनादि है वही अनादि काल से इन सर्व पदार्थों को ऐसा ही बनाता है ॥

केवल उक्त प्रकार के शुद्ध बुद्ध स्वरूप ईश का ही कथन नहीं प्रत्युत अन्य भी उच्च सभ्यता को बताने वाली बातें हैं, आश्चर्य की बात यह है कि वेदों जैसे आदिम पुस्तकों में मूर्ति पूजा, मन्दिरों, तीर्थ यात्राओं, सती की प्रथा, भयङ्कर देवों की पूजा, समुद्र यात्रा निषेध, अवतार पूजा, नदी वृक्षों पर्वतों महारुद्रों आदि का अर्चन, तथा इसी प्रकार की अन्य जांगालिक बातें नहीं पाई जातीं तो फिर वेद कैसे असभ्यों और अज्ञानियों की पुस्तकें हो सकती हैं? आज कल २०वीं सदी में सभ्य संसार का अधिकांश भाग उपरोक्त कुरीतियों में फंसा हुआ है परन्तु वैदिक काल में इन कुरीतियों का चिन्ह भी नहीं पाया जाता अतः वेदों का समय अत्यन्त ही उन्नत होना चाहिए।

(८) वेदों में देवता—उपरोक्त मंत्रों से पता लगता है कि वेदों में अग्नि, वायु, सूर्य, पृथिवी, विष्णु, शिव, सरस्वती, यम, सोम, अदिति, उषा, अश्विनी, दुर्गा, पार्वती, महेश आदि सहस्र देवताओं की पूजा नहीं, यह सब नाम एक परमात्मा के गुणों के वाचक हैं।

वेदों में जो ३३ देवताओं का वर्णन है जिस से अब ३३ करोड़ देवता भारतवर्ष में बन गये है अर्थात् एक २ भारत निवासी के लिये एक २ देवता—इनके नाम यह हैं।

८ वसु + ११ रुद्र + १२ आदित्य + १ इन्द्र + १ प्रजापति = ३३

उन में से वसु यह हैं:—अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, और नक्षत्र। इनका वसु नाम इस कारण से है कि सब पदार्थ इन्ही में वसते हैं और ये ही सब के निवास करने के स्थान हैं।

रुद्र यह कहाते हैं:—जो शरीर में १० प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और ग्यारहवां जीवात्मा है, जब यह शरीर से निकलते हैं तो मरण होने से सम्बन्धि लोग रोते हैं इससे उनका नाम रुद्र है।

इसी प्रकार आदित्य १२ महीनों को कहते हैं यतः वह सब पदार्थों का आदान अर्थात् सब की आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं इसी से इन का नाम आदित्य है। इसी प्रकार इन्द्र नाम विद्युत का है क्योंकि वह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख्य हेतु है और यज्ञ को प्रजापति इस लिये कहते हैं कि उससे वायु और वृष्टि और जल की शुद्धि द्वारा प्रजा का पालन होता है।

६—ऐतिहासिक मार्शमैन के वाक्य स्मरणीय हैं, वह कहता है: वेदों का विशेष सिद्धान्त परमात्मा की एकता है, भूतों और छोटे देवतायों को परमात्मा की महाशक्ति दिखाने के लिये वेदों में बताया गया है। सत्य यह है कि देवताओं के

नाम वेदों में हैं परन्तु किसी देवता को अन्य पर प्रधानता नहीं दी गई और कभी यह नहीं कहा गया कि तुम उन की पूजा करो। कृष्ण और शिव की कथाओं का उन में नाम नहीं आता और इस आरम्भिक काल की वस्तुतः नाही कोई मूर्ति मिलती है और नहीं कोई ऐसी वस्तु या मंत्र मिलता है जिस से यह सिद्ध हो कि पूजा करते थे या करनी चाहिए। यद्यपि यह कहा जाता है कि हिन्दु अपनी रीति रिवाजों को कम बदलते हैं परन्तु यह बड़ा विचित्र बात है कि वेदों को बड़े मान्य के भाव से धर्म का ईश्वर मानते हुए भी वह वैदिक रीतियों से इस कदर दूर हो गये हैं कि यदि कोई वेदोक्त विधि से भक्ति करना चाहे तो वह आज कल के लोगों के अनुसार एक काफ़िर समझाजाता है। वस्तुतः ३३ करोड़ देवता मानने वाले हिन्दुओं को इन शब्दों पर पूरा विचार करना चाहिये और पूर्वज विद्वान जिस उच्च दृष्टि से वेदों को देखते थे भारतीयों को भी उसी आदर दृष्टि से वेदों का निरीक्षण करना चाहिए।

१०—वेदों में पाप का सूक्ष्म विचार—यजुर्वेद के मंत्रों का नीचे साधारण भाषा में लिखा जाता है उस से पता लगेगा कि पाप का ऐसा सूक्ष्म विचार किसी अन्य जाति में अब तक बिरला ही पाया जाता है। तो क्या वेदों के मानने वाले और उन पर कर्म करने वाले लोग असभ्य हो सकते हैं?

i यदि दिन में वा रात में हम ने कोई पाप किया हो तो हे वायु के समान व्यापक परमात्मन् ! आप उस अपराध और दुर्व्यसन से हम को बचावें ॥

ii यदि जागते हुए वा सोते हुए, यदि ग्राम में जंगल में या सभा में पाप किया हो, जो अपनी इन्द्रियों से पाप किया हो, जो किसी शूद्र या आर्य्य के विरुद्ध कोई अपराध किया हो, उन से ज्योतिष्मान् परमात्मन् ! आप हमें बचावें।

iii मेरे चक्षु मन, हृदय में जिस पाप का निवास हो उस को दयालु परमेश्वर दूर करें।

११—वेदों में आर्थिक सभ्यता—यजुर्वेद के ३० वें अध्याय में अनेक पेशे वालों का वर्णन है जिन में से कतिपय नाम इस बात को सिद्ध करने के लिये दिये जाते हैं कि यदि वेद मनुष्य कृत हो तो जब यह यजुर्वेद लिखा गया था उस समय पर्याप्त उन्नति धन कमाने के साधनों में हो चुकी थी और जैसे अब पता लग गया होगा कि वह सभ्यता आज कल की आधुनिक सभ्यता से कम प्रतीत नहीं होती।

(१) रथकार (सर्वप्रकार के रथों को बनाने हारा) (२) तक्षा (महीन कार्य करने वाला बढ़ई या जुलाहा) (३) विदलकार (बढ़ई) (४) दार्वाहार (दारु उठाने वाला श्रमी) (५) कर्मार (उत्तम कामों के करने हारा) (६) माला कार (७) हिरण्यकार

उपसेक्ता (माली) (४१) कुम्भकार (४२) लोह कार (४३) कृप कार (४४) त्रिष्ठी (जल, स्थल, वायु के यानों को चलाने हारा) (४५) गणक (हिसाब के ज्ञाता) (४६) नक्षत्र दर्शक (ज्योतिषी) (४७) मानस्कृत (४८) वप (४९) मागध आदि विद्वानों के नाम हैं (५०) परिवेष्टा (भोजन परोसने वाला) (५१) वासः-पल्पूली (धोबी) (५२) अनुचर (पीछे चलने वाला नौकर) (५३) अभिमती (आगे२ जाने वाला नौकर) (५४) नापित (नाई) (५५) धीवर (५६) पौल्कस (भंगी) भिन्न प्रकार के सेवकों के नाम हैं।

१२—वैदिक सभ्यता के नमूने—पूर्व जिन २ पेशों के नाम लिये गये हैं उन को देखने से एक विचारशील पाठक कह सकता है कि आधुनिक सभ्यता से पूर्व भी यह पेशे सब देशों में विद्यमान थे, जबतक उनकी उच्चता न दिखाई जावे-हम वैदिक सभ्यता की अपूर्वता नहीं मान सक्ते. कतिपय व्यापारिक नमूनों से स्वयं ही निर्णय करिये कि वैदिक सभ्यता क्या थी।

(क) शिल्पी पाठशाला (Technical school) ऋग्वेद ६। ९। २-३ में लिखा है "मैं सूत नहीं जानता हूं और बुनने में जो ठेठ सूत दिये जाते हैं उन्हें भी नहीं जानता। इस प्रकार यहां किसी का चतुर पुत्र अपने पिता से कहता है, पिता उसे उत्तर देते हैं कि "वह आचार्य तन्तु

सौ भुजायों वाले लोहे के बने नगरों की न्याई हाजिये," यह यजुर्वेद में लिखा है।

(ङ) कई धातुयों के नाम. यजु० १८-१३ में कतिपय धातुयों के नाम दिये हैं जिन से आर्य लोगों को प्रयोग लेना चाहिये। यह प्रार्थना इस मंत्र में है कि मैं निम्नलिखित वस्तुयों का खूब प्रयोग करूं।

मेरे पत्थर-हीरे लालादि रत्न, मेरी मिट्टी, मेरे मेघ मेरे पर्वत तथा उन में पाई जाने वाली वस्तुयें, मेरी बालू, मेरी वनस्पति, मेरा सोना चांदी, मेरा फ़ौलाद, मेरा नील, मेरी चन्द्रकान्तमणि, मेरा लोहा, मेरा सीस, मेरा जस्त और पीत्तल आदि योग्य हों।

(च) धान्यों के नाम—एक मंत्र में इन धान्यों के नाम आते हैं: चावल, साठी के धान, जौ, अरहर, उर्द, मटर, तिल, नारियल, मूंग, चने, कंगनी, मोटे चावल, मंडुआ, स्वयं उत्पन्न होने वाले चावल, गेहूं और मसूर।

(छ) वेद में पशुओं का वर्णन—यजुर्वेद के २४ वें अध्याय में बहुत से पशुयों के नाम आये हैं जो कि नमूने के तौर पर दिये जाते हैं, उन से पता लगता है कि कृषि के लिये, माल ढोने के लिये, घर में सुन्दरता के लिये पशुओं का प्रयोग किया जाता

था, मनुष्य ग्रामीण तथा अरण्य के पशुवों से परिचित थे, तोते तथा मैना को मनुष्य की बोली सिखाते थे. मधुर स्वर वाले पक्षियों से मन प्रसन्न करते थे और भिन्न २ पशुवों का उत्तम रीति से प्रयोग करना जानते थे। यह तो हुआ ऐतिहासिक मतानुसार परन्तु—वेद ईश्वरी ज्ञान है—इस मत के अनुसार संसार में जो पक्षी पाये जाते हैं उन में से बहुतों के नाम तथा प्रयोग मनुष्यों को ईश्वर बताता है।

घरेलू जानवर—गौ, बैल, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़ा, ऊंट, गधा, भेढा, हाथी, कुत्ता, बहुत रंगों वाले हरिण और बारासिंगे, शहद की मक्खी, बिल्ली, कबूतर, लट्टू, मुर्ग।

आरण्यकपशु—सिंह, चीते, भेड़िये, सूअर, लूमड़ी, गीदड़, लाल, भाल, अजगर, सांप, खरगोश, नेउला, बन्दर गीदड़।

पक्षि—मयूर, सारस, हंस, बुलङ्क, बतख, फाकता, नील-कण्ठ, मुर्गा, काक, बटेर, तीत्तर, चमगादड़, कठफोड़ा, उल्लू, शुतरमुर्ग, चक्रवाक, कोकिल, बुलबुल, कपिञ्जल।

कीटः—मच्छर, मक्खी, बिच्छू, अन्यकीट।

जलनिवासी—बहुत प्रकार की मछलियां, दरयाई गौ, मगर-मच्छ, कछुआ, मेंढक आदि। यह कहना आवश्यक होगा कि ऐतिहासिक लोग वेद के एक पद पर विशेष बल देते हैं जो यह है:

सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका, ऋ०१।१२६।७ अर्थात् गन्धार वालों की भेड़ों के ऊन बहुत होती है। अब तक भी, काबुल, कन्धार, कश्मीर की ऊन प्रसिद्ध चली आती है। वैदिक समय में इन्हीं प्रदेशों की ऊन अच्छी समझी जाती थी। "उष्ट्रान चातुर्युजः" शब्दों से ज्ञात होता है कि चार ऊंट या बड़ी उठी हुई पीटवाले ४ बैल रथ में जोड़े जाते थे। बैलों की रथें बहुत प्रसिद्ध हैं, रामायण में भी श्रीरामचन्द्र ऐसी रथ पर सवार हुए कहे जाते हैं और पुरातन रोम में भी यह रीति थी कि विदेश से जो विजेता रोम में आता था उसे सफेद बैलों वाली रथ पर बिठा कर ले आते थे और धर्मराज युधिष्ठर भी १६ बैलों वाली रथ पर राजसूय यज्ञ के पीछे चढ़े थे।

१३.—भिन्न २ नौकाओं का वर्णन—यजुर्वेद २१। ६-७ में कहा गया है कि मैं सुन्दर नौका पर चढ़ूं—वह नौका छिद्र रहित हो ताकि उस में जल न आ सके, वह दोष रहित हो और उस के एक सौ चप्पे हों ताकि सुख की प्राप्ति होवे, हम लोग कल्याणार्थ, धन संचयार्थ दैवी नाव पर चढ़ें जो सुरक्षा करने वाली हो, बहुत विशाल हो, जिस में प्रकाश तथा अवकाश बहुत हो, जिसमें किसी प्रकार का भय न हो, जिस में अच्छी कोठरियां बनी हुई हों, जो अटूट हो, जो शीघ्रगामी हो, जो

अच्छे चप्पों वाली हो, जो दोष रहित हो, जो छिद्र रहित हो। आज कल के उत्तम से उत्तम जहाज़ों की तुलना उक्त वर्णन से करो॥

१४ वेदों में विमान—विमानों का वर्णन करने वाले कई मन्त्र हैं परन्तु नमूने के तौर पर थोड़े से दिये जाते हैं।

‡ विमान एष दिवोमध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्, स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरञ्च केतुम्॥ "यजु० १७।५९ आकाश के मध्य में यह विमान के समान विद्यमान है द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों में इस की गति निर्विघ्न है और वह सम्पूर्ण विश्व में गमन करने हारा, मेघ के ऊपर भी चलने हारा—वह विमानाधिपति इस लोक तथा परलोक के मध्य में प्रकाश सब तरफ से देखता है"। ऋषि ऐसे विश्वास से बोल रहा है कि जैसे उस ने तथा उस के पाठकों ने स्वयं ऐसे विमानों को देखा हो॥

‡‡ ऐसे सुखकारी यान सब विद्वान् लोग बनाना चाहें जिन के आरम्भ में अग्नि जलादि मुख्य हों, जिन में तीन पहिये और तीन खंभे हों और यह खंभे अन्य खंभों के सहारे पर हों इन का वेग अत्यन्त मधुर हो और इन से तीन दिन तथा तीन रात्रि में द्वीप द्वीपान्तरों में जा सकें। क्या कोई ऐसा जहाज़

गामी यान इस समय भी है? परन्तु परमात्मा पुत्रों के सुख के लिये ऐसे यान बनाने की आज्ञा देता है या ऐतिहासिक सम्प्रदाय को मानना पड़ेगा कि ऐसे यान वैदिक काल में विद्यमान थे।

iii जो अरित्र युक्त अर्थात् चप्पू के बिना, बृहत, समुद्रों तथा आकाश को छूने वाले यान हैं उन्हें बुद्धि से बनाना चाहिए।

iv मनोवेग के समान वायु में यानों को चलावो।

v प्रत्येक विमान में १२ स्तम्भ होने चाहियें। एक चक्र बना कर तीन चक्र और बनाने चाहियें और फिर ३०० बड़ी २ कीलें हों, साथ ही ६० कलायन्त्र रचने चाहियें। जब इन में किसी प्रकार की भूल न होगी तो लोग उनको देख कर चकित होंगे।

vi वस्तुतः ही उपरोक्त मन्त्रों के अर्थों को देख कर आज कल के पाठक अवश्य चकित होंगे। परन्तु यह कोई काल्पनिक बात नहीं, भारतीय संस्कृत साहित्य में विमान का वर्णन बहुत है:-रावण ने कुबेर का अति सुन्दर विमान छीन लिया था। श्रीराम चन्द्रजी ने रावण की मृत्यु के पश्चात पुष्पक पर सपरिवार सवारी की थी।

कालिदास के ग्रन्थों तथा भागवत और मनुस्मृति में विमानों का वर्णन है, विमानों का होना आर्यों के लिये कोई नवीन बात नहीं।

१.५ गान विद्या—वैदिक समय के ऋषियों ने गान को कला तथा विद्या की पदवी दे कर अत्यन्त उन्नत किया, प्रत्येक देश निवासी ने इन ऋषियों से रचित गान से लाभ उठाया है, निस्सन्देह भारत वर्ष भूमण्डल के सर्व देशों का इस विद्या के सिखाने में गुरु है।

(१) मानुषी पुस्तकालय में ऋग्वेद प्राचीनतम पुस्तक है। उस के प्रत्येक मन्त्र की कोई न कोई स्वर है, वह सम्पूर्ण ७ स्वरें हैं उन के तथा अन्य देशों की स्वरों के नाम भी यह हैं।

भारतीय स्वरों के नाम			यूरपी, अरबी, इरानी स्वरों के नाम		
षड्ज	...	... ष०	...	...	दल
ऋषभ	...	... ऋ०	...	...	ऋ०
गान्धार	...	... गा०	...	...	लि०
मध्यम	...	... म०	...	...	नि०
पञ्चम	...	... प०	...	...	फ०
धैवत	...	... ध०	...	...	ध०
निषाद	...	... नि०	...	...	ति०

(२) वीवर तथा हन्टर साहबों का कथन है कि ब्राह्मणों से इरानियों ने, फिर इन से अरबीयों ने यह स्वरें सीखीं। समय पाकर युरप वालों ने अरबीयों से यह विद्या ग्रहण की। परन्तु यूनान

देश में गान विद्या भारत से ईसा से पूर्व गई—स्ट्रेबो नामी यूनानी ऐतिहासिक ने यह साक्षी दी है।

(३) इसी गान द्वारा ही ईश की स्तुति करना हमारे ऋषिगण आवश्यक समझते थे इस कारण उन्हों ने गन्धर्व वेद बनाया और अति प्रसिद्ध ६४ कलाओं में गीत को प्रथम स्थान दे कर उस के अन्वेषण को वृद्धि दी।

यदि वेद मनुष्यकृत हों तो साम वेद में अन्य वेदों के मन्त्र केवल गान के लिये रक्खे गये होंगे और ऋषिगणों ने उन मंत्रों के गान को खूब सिखाया होगा।

(५) भरत, ईश्वर, नारद, तुम्बुरु आदि ऋषि गान के प्रचार करने में प्रसिद्ध हुए हैं॥

१६—वेदों में गणित— यजु० १७ अ० २ मन्त्र लिख कर उस का अर्थ किया जाता है ताकि किसी प्रकार का संशय न रहे॥

इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेकाच दशच्च दशच्च शतंच शतंच सहस्रंच सहस्रं चायुतं चायुतंच नियुतंच प्रयुत चार्बुदंच न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्ध श्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः॥

उपरोक्त मंत्र के अनुसार संख्याचित्र यूं हैः।

१	एक
१०	दश
१००	शत
१०००	सहस्र
१००००	अयुत
१०००००	नियुत
१००००००	प्रयुत
१०००००००००	अर्बुद
१००००००००००	न्यर्बुद
१००००००००००००००	समुद्र=१० शंख
१०००००००००००००००	मध्यम
१००००००००००००००००	अन्त
१०००००००००००००००००	परार्द्ध

(२) उक्त अतिवृहत् संख्या से अत्यन्त उच्च सभ्यता टपकती है, अमरीका तथा आस्ट्रेलिया के रहने वाले हबशी तीन तक की संख्या जानते हैं और वह भी उंगलियों पर—आज कल की प्रचलित संख्याओं से उपरोक्त गणना किसी प्रकार कम नहीं और दशगुणा बढ़ते हुए संख्या बढ़ा लो उस की विधि मंत्र में बता दी गई है।

(३) गुणा और भाग के अतिरिक्त यजु० १८। २४—२५ में विषम तथा सम संख्याओं के योग तथा ऋण करने की विधि भी दी है:—

योग करने से	१ मेरी और		२ मेरी	३ संख्या हो		
”	३	”	२ ”	५	”	
”	५	”	२ ”	७	”	
”	७	”	२ ”	९	”	
”	३१	”	२ ”	३३	”	
योग करने से	४ मेरी और		४ मेरी	८ संख्या हो		
”	८ ”	”	४ ”	१२	”	
”	१२ ”	”	४ ”	१६	”	
”	१६ ”	”	४ ”	२०	”	
”	४४ ”	”	४ ”	४८	”	इत्यादि

(४) इस प्रकार योग, ऋण, गुणा, भाग के ४ मौलिक सिद्धान्त वेद ने बता दिये और परार्द्ध तक संख्या की विधि सिखा दी ताकि पुरुष अपनी २ बुद्धि के बल से गणित विद्या की उन्नति कर सकें और साथ ही पहले उदाहरण में decimal notation दाशमिक सङ्केत की विधि बताई है, यह अमूल्य आविष्कार जो भारतियों ने किया था उस पर संसार की उन्नति का सहारा है।

१.७ वेदों में ज्योतिष की उन्नति—युरुप में ज्योतिष संबन्धि उन्नति बहुत पीछे हुई। १६वीं शताब्दि तक वहां के निवासी भूमि को गोल तथा भ्रमण करने वाली कहने वालों को मृत्यु दण्ड देते थे और आकर्षण शक्ति के नियम को न्यूटन

साहब ने सब से पहले वहां आविष्कृत किया परन्तु भारत वर्ष में वैदिक काल में ही जो उन्नति हुई उस ने भारतीय ज्योतिष विज्ञान को बहुत बढ़ाया। कतिपय नमूनों से वह उच्चता देखिये।

(१) आज तक भारतीय ज्योतिष में २८ नक्षत्रों के नाम हैं वही २८ नक्षत्र वेदों में माने जाते हैं और पृथक् २ उन के नाम भी मंत्रों में आये हैं जिन्हें स्थानाभाव से नहीं दिया जा सका:
अष्टाविंशति शिवानि शग्मानि सहयोगं भजन्तुमे। अथर्व १९।८।२

२८ नक्षत्रों के नाम यह हैं—अश्विनी, भरणी कृत्तिका रोहिणी मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फल्गुनी, उत्तरा फल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अभिजित्॥

(२) वायु मण्डल की ऊंचाई—वेदमन्त्र के कथन से ४०, या ६० मील हो सकती है इस से अधिक नहीं। अथर्ववेद में लिखा है कि "भूमिका वायु मण्डल इस भूमि से बाहर १२ योजन (४८ या ६० मील) फैलता है मेघ विद्युत घटनायें भी इस से संबन्धित हैं"

"भूमेर्द्वादश योजनानि भूवायुरब्दाम्बुद विद्युदाद्यम्"

(३) क—"दिवि सोमो अधिश्रितः" चन्द्र के प्रकाश का आधार सूर्य पर है॥

ख—गमनशील चन्द्रमा के गृह में सूर्य्य की सुप्रसिद्ध ज्योति छिपी रहती है[1]?

ग—चन्द्रमा वधू की इच्छा वाला हुआ-इस बरात में दिन रात बराती हुए, मन के अनुराग से पति की चाह करती हुई अपनी प्रभा को सूर्य्य ने देखा, तब पिता सूर्य्य ने चन्द्रमा के आधीन स्वकन्या प्रभा को कर दिया। इस प्रकार सिद्ध है कि चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य्य से होता है। शतशः ज्योतिष के ग्रन्थ तथा काव्यों में भी स्थान२ पर यही बात निरूपण की है, पुरातन आर्य्यों ने चन्द्रमा को स्वप्रकाशक कभी नहीं कहा॥

(४) पृथिवी की छाया से चन्द्रग्रहण और चन्द्र की छाया से सूर्यग्रहण होता है यह भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों में सिद्ध किया गया है॥

इस का प्रचार यहां तक था कि कालिदास भी अपने रघुवंश में वही कारण देता है परन्तु पौराणिकों ने सूर्य तथा चन्द्रग्रहण का कारण राहु असुर का इन दोनों को पकड़ लेना लिखा है। यह विचार वेदों में संदिग्ध पाया जाता है परन्तु वेद मंत्रों के अर्थ स्पष्ट हो सकते हैं कि असुर (सूर्य से प्रकाश लेने वाला) स्वर्भानु

---

1. ऋ० १।८४।१५।

(स्वर्गीय प्रकाश देने द्वारा) चन्द्रमा सूर्य को अन्धकार से ढांक लेता है[१]॥

५—पृथिवी का भ्रमण—यह[२] पृथिवी यद्यपि हस्त रहिता और पैर से भी शून्या है तथापि जानने योग्य क्रिया करने वाले परमाणुओं सहित चल रही है। सूर्य के चारों ओर दक्षिण से वाईं ओर जा रही है॥

एक मंत्र में अगस्त्य ऋषि प्रश्न करके स्वयं उत्तर देते हैं[३] इस पृथिवी और द्युलोक में से कौन सा आगे और कौन सा पीछे है, यह दोनों कैसे उत्पन्न हुए-इस तत्व को कौन जानता है? जितने पदार्थ हैं उन सब को साथ ले कर यह दोनों घूम रहे हैं, जैसे दिन रात चक्र के समान ऊपर नीचे होते रहते हैं, एवं तारादि पृथिवी लोकों में ऊपर नीचे का कोई विचार नहीं हो सकता-सब चक्र की न्याई घूम रहे हैं।" अहो! कैसा उत्तम तथा सत्य विचार है।

"सूर्य[४] रस्सी के समान अपने आकर्षण से पृथिवी को बान्धता है और निराधार आकाश में अन्यान्य ग्रहों को भी दृढ़

किये हुए हैं"। "[1]अटूट रस्सी से बान्धे हुए, नाद करते हुए, बड़े वेग से जाने वाले इन सब लोकों को निराधार आकाश में घोड़े के समान घुमा रहा है"। स्पष्ट है कि पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है और उस के साथ बंधी हुई है, अन्य लोक भी इस सौर्य्य मण्डल में सूर्य से बन्धे हुए उस की परिक्रमा करते हैं।

(६) हमारे पाठकों ने हेली का पुच्छल तारा कई दिनों तक देखा होगा और उस के वास्तविक वृत्तान्त से भी परिचित हो गये होंगे, यहां पर एक वेद मंत्र दिया जाता है जिस में पुच्छल तारे के गुण बताये हैं!

हरयोधूमकेतवो[३] वात जूता उपद्यवि यतन्ते पृथगग्नयः।

१.८ वेदों में स्त्रियों की स्थिति। संसार में विकाश सिद्धान्त के पोषक कहते हैं कि असभ्य जातियों में स्त्रियों पुत्रों और पुत्रियों की स्थिति शोचनीय होती है. यह सब गृह पति की सम्पत्ति समझी जाती है, उन तीनों को दासों की न्याईं बेचा और मारा भी जा सक्ता है और उन की सर्व प्रकार की जायदाद तो उस बूढे पिता की समझी ही जाती है। इस प्रकार पढ़ने पढ़ाने की तो कथा ही क्या है? स्त्रियों, पुत्रों और भृत्यों

---

१. यजु० ३३। २॥ (२ पियोगोरस की हार्मनी स्मरण करो।)

३. यह तारे ठोस नहीं बल्कि वायु के समान किसी अति हलके मादे के बने होते हैं। वह प्रकाशक होते हैं। सूर्य्य के कभी समीप और कभी अति दूर होकर इस पृथिवी के दुष्ट जीवों को हर ले जाते हैं॥

को अपने माल तथा प्राण की स्वतन्त्रता होनी ही सभ्यता है और स्त्रियों को मनुष्यों जैसे अधिकार होने तो उच्च सभ्यता के चिन्ह हैं। युरुप के मध्यकालीन समय में बड़े पादरियों की एक सभा हुई, जिस में विचार किया गया कि क्या शठ, वञ्चिका, कामिनी स्त्री के होते हुए उस की आत्मा भी है या नहीं? यह निश्चय किया गया कि स्त्रियों में आत्मा नहीं होता। इसी घटना से पता लग सकता है कि स्त्रियों की स्थिति किस प्रकार एक सभ्यता का मापक हो सकती है।

(क) वैदिक काल में स्त्रियें वेदों को पढ़ती थीं मंत्रों को याद करती और उन्हें संस्कारों में बोलती थीं।

(ख) गुरुकुलों में जाकर १६ या २४ वर्षों की आयु तक ब्रह्मचारिणी रहती और पुनः गुर्वानी की आज्ञा से विवाहित होती थीं जब कि उन्हों ने गृह संबन्धि सर्वविद्यायें भली प्रकार सीख ली होती थीं।

(ग) पुरुषों के तुल्य वैदिक शिक्षाओं का प्रचार भी सर्वत्र स्त्रियां करती थीं और मंत्र द्रष्टा ऋषियों की गणना में कुछ एक ब्रह्मवादिनी मंत्र द्रष्ट्री ऋषिकाओं के भी नाम आये हैं। २४ के लग भग वह। २ उच्च श्रेणी की ऋषिकायें हुई हैं जिनके नाम यह हैं जो अवश्य याद रखने चाहियें:-

रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, शश्वती अपाला, यमी घोषा, सूर्या, इन्द्राणी, उर्वशी, दक्षिणा, सरमा, जुहू, वाग्, रात्रि, गोधा, इन्द्र मातरः, श्रद्धा, पृथ्वी, सर्पराज्ञी आदि।

(घ) बहुत से मंत्र पढ़ने से पता लगता है कि स्त्रियें पुरुषसभा में भी व्याख्यान देती थीं, न्याय करती थीं, न्याय सभा में न्याय कराने के लिये भी जाती थीं; अपनी सम्मति से देश का राजा चुनती थीं, गृहकी राणी होती थीं; पति के साथ रथ पर भ्रमण, करती थीं, सामाजिक सभ्यता की मूल कारण स्त्रियें ही समझी जाती थीं, एवं उन का आदर सत्कार बहुत था और यही बातें वैदिक काल को उच्च ठहराती हैं या वेदों को सम्पूर्णतया अपौरुषेय बताती हैं ।

(ङ) निम्न लिखित वेद मंत्रों के अर्थों से स्त्री की घर में स्थिति पता लगती है ।

"गृहपत्नी बनने को घर जावो और जितने पुरुष वहां एकत्रित हों उन से राणियों की भान्ति सम्भाषण करो, अपने ससुर तथा सास पर पूरा शासन करो, ननद और देवरों पर पूर्ण राज्य करो" ।

(च) पति की मृत्यु पर स्त्री अपने देवर के साथ सन्तानोत्पत्ति के लिये ही नियोग कर सकती थी । नियोग की रीति वैदिक काल के भारत वर्ष में ही नहीं पाई जाती प्रत्युत यहूदियों में भी यही रीति थी और अंजील में दो स्थानों पर इस का स्पष्ट वर्णन भी आता है ।

(छ) स्त्रियों को अपने पतियों के चुनाव का बहुत कुछ अधिकार था । महाभारत आदि से जो स्वयम्बर की रीति का पता

लगता है वह किसी न किसी स्वरूप में वैदिक काल में भी सब विवाहों के लिये प्रयुक्त होती थी। ऋ० १०।२७।११-१२

(ज) प्रत्येक पुरुष केवल एक स्त्री से विवाह कर सक्ता था परन्तु पाश्चात्यों का कथन है कि बहु विवाह की रीति भी थोड़ी बहुत अवश्य प्रचलित थी, राजाओं के विषय में यह बात असंदिग्ध है क्योंकि यज्ञों के करते समय ब्राह्मणों में कहा गया है कि महिषी को यहां लावे, अन्यों को यज्ञ में न लावे। याज्ञवल्क्य ऋषि मैत्रेयी तथा कात्यायनी के साथ विवाह करते हैं।

१.६. युद्ध की सामग्री.

i चर्म का कवच और सोने की कलगीदार टोपियां धारण करने वाले दो प्रकार के सिपाही होते थे:—रथी और पदाति सैनिक।

ii वह अधिकतर तीर कमान से लड़ते थे। कमान कानों तक ऊंचे होते थे जिन्हें भूमि पर रख कर बल पूर्वक खैंचा जाता था और जो तीर छूटते समय घोर शब्द उत्पन्न करते थे।

iii युद्धों में सेनाओं की ओर से झण्डे फहराते थे और १०००० सैनिकों की सेनाओं के पराजित करने का वर्णन भी आया है।

iv तीरों का वर्णन बड़ा विचित्र है क्योंकि १०० नोकों वाले और सहस्रों पुंखों से सुसज्जित तीरों का वर्णन आता है।

V इसी प्रकार लोहे के अंकुश, शक्ति और लोहे के वज्र के नाम आये हैं। यह वज्र भिन्न प्रकार के होते थे जैसे चौकन्ने (चतुराश्री) शतकोण वाले (शताश्री) शत पुर्जों वाले (शतपर्व) सहस्र नोकों वाले (सहस्रभृष्टी)।

VI रथ बड़े तेज़ दौड़ने वाले, पक्षियों के समान उड़ने वाले मन से भी तेज़ जाने वाले, आंख की झपक में जाने वाले कहे गये हैं। उन का आकार क्या था? इस विषय पर विश्वास पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, इस में सन्देह नहीं कि वह दो अश्वों वाले होते थे, उन पर चाबुक (हस्तेपुकाशः) लिये हुए रथी के साथ सैनिक बैठा होता था। कई रथों में तीन पहिये होते थे (त्रिचक्र)।

कई रथों पर साधारण रथों से सब कुछ तिगुना सामान होता था (त्रिवृत त्रिबन्धुर त्रयः पवयः त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे) इन रथों पर (सहस्रकेतु) हज़ारों झण्डे तथा भूषण लगे होते थे और ऐसे रथ होते हुए भी वह (रघुवर्तनी) सुगमना तथा बिना शोर के घूमने और चलने वाले होते थे। आज कल भी रबरटाइर वाले यान बनाये जाते हैं ताकि शोर न हो। ज्ञान नहीं कि वैदिक काल में किस पदार्थ से शोर न करने वाले रथ बनाये जाते थे।

vii युद्ध के समय बकुर आदि बाजों से सैनिकों को उत्साह भी दिया जाता था।

२०-जातीय अवस्था—प्राचीन आर्य सभायें करते थे। प्रत्येक सभ्य की यही इच्छा होती थी कि वह अन्यों से अधिक ज़ोरदार वक्ता हो। आनन्द से समय व्यतीत करने के लिये सुरा और सोम का पान करते थे, रस्सों पर नाचने वाले मदारियों, साधारण नाचने वालों, भूषणों से सज्जित नाचने वालों से दिल बहलाते थे, शतरंज खेल कर भी समय गुज़ारते थे, दुन्दुभि आदि बाजों से मनो विनोद करते थे। वैदिक आर्य इस संसार को असार दुखमय समझ कर त्याग नहीं देते थे प्रत्युत घुड़दौड़, रथदौड़, चौपड़, नाचादि से अपने जीवन को कभी २ सुखमय बनाते थे। सभा में बोलने की कुशलता और प्रजातंत्र राज्य प्राप्त करते हुए, भूषण पहनते हुए, सुग-न्धि युक्त वस्तुयें लगाते हुए और ऊनी तथा कपासी सोने की तारों से सज्जित रंग बिरंगे वस्त्र पहन कर अत्यन्त आनन्दित होते थे, पुत्र, पौत्र, अन्न, सुवर्ण, पशु चक्रवर्ती राज्य और ब्रह्मवर्चस की प्रार्थनायें सर्व शक्तिमान दयालु परमात्मा से करते थे और साथ

जहां भूतकाल का प्रयोग ऐतिहासिक लोग करते हैं वहां वस्तुतः ईश्वर की ओर से ऐसा करने वा न करने की आज्ञायें हैं इसी प्रकार के अर्थ अन्य स्थानों में भी समझने चाहियें।

अध्याय ५

१. राम से पूर्व अयोध्या के राजाः—अयोध्या नगरी के प्रथम राजा इक्ष्वाकु से ले कर श्री राम तक ३३ राजा हुए जिन में से प्रसिद्ध के नाम यह हैं; त्रिशंकु, मान्धाता, असित, सगर, दिलीप, भगीरथ, रघु, नहुष, अज और अज के पुत्र दशरथ॥

(i) इक्ष्वाकु महाराज ने ३३×३०=९९० वर्ष पूर्व अवश्य अयोध्या नगरी में अपना राज्य स्थापित किया होगा—अर्थात् लग भग ३६०० ई० पू० में सूर्य्य वंश का आरम्भ होता है।

(ii) "असित" के विरुद्ध बड़ी शूरवीर तीन जातियां हय, ताल जंघ और शश बिन्धु उठ खड़ी हुई थीं, उन से संग्राम में पराजित और राजच्युत हो कर हिमालय में असित भाग गया। उस की दो स्त्रियां गर्भवती थीं, एक ने दूसरी को विष दे दिया ताकि उस के सन्तान उत्पन्न न हो॥

(iii) परन्तु सगर नामी पुत्र उस से उत्पन्न हो गया और युवक हो कर उस ने अयोध्या का राज्य प्राप्त किया; इसी के साठ हज़ार पुत्र कपिल ऋषि से पाताल में मारे गए थे—ऐसी गाथा रामायण और पुराणों में लिखी है। भगीरथ ने पहाड़ों से गङ्गा को विशेष मार्ग से लाने का यत्न किया। चूंकि इन राजाओं के वृतान्त का तिनका भर भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं अतः उन को त्याग कर दशरथ के समय की ओर ध्यान दिया जाता है—परन्तु प्रथम महाराज दशरथ व श्रीराम का समय निरूपण करना आवश्यक है॥

२—श्री रामचन्द्र जी का समय—२५०० ईसा पूर्व
श्री राम का काल निश्चित करने की चार युक्तियां:—

(१) रामायण में चित्रित रामचन्द्र जी महा भारत के काल से निस्सन्देह बहुत पूर्व हुए हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि १,२४९,७९,०१ वर्ष ई० पू० में धर्मावतार राम का जन्म हुआ है—यह सर्वथा कल्पना है परन्तु विष्णु पुराण में जो सूर्य वंशीय राजाओं की सूची दी हुई है उस में धर्म पुत्र युधिष्ठर से पूर्व श्री राम तक ३८ राजा दिये हैं—अर्थात् युधिष्ठर का काल १४वीं शताब्दी ई.पू. में रखते हुए श्री राम का काल हम (१,४०० + ३८ × २८) २५वीं शताब्दी मानेंगे।

(२) रामायण से विदित होता है कि श्रीराम के समय आर्य्य जाति का विस्तार मध्यभारत वर्ष तक भी नहीं हुआ था। चित्र कूट से लङ्का तक सारा देश प्रायः वनाच्छादित पड़ा था। कहीं २ आर्य्य ऋषि मुनियों के वास थे, नहीं तो वानर और राक्षस जातियों (कोलों, भीलों और द्राविड़ों) से शासित हो रहा था, परन्तु युधिष्ठर के समय दक्षिण तक आर्य्य जाति का फैलाव हो चुका था और जो चकित करने वाली प्राकृतिक सभ्यता का दृश्य महा भारत में मिलता है वह रामायण में नहीं दीख पड़ता-अतः राम युधिष्ठिर से पूर्व हुए होंगे ॥

(३) श्री राम के समय सामाजिक दशा अति शुद्ध, पवित्र थी राजा और प्रजा वेदों का अध्ययन करते थे, यहां तक कि स्त्रियां भी पठित होती थीं- वेद कथित यज्ञों में पुरुष रत होते थे स्त्रियां भी उन यज्ञों को करती थीं—श्री राम तथा अन्य आर्य्य जो उस के साथ सम्बन्ध में आते हैं उन का जीवन महाभारत के पुरुषों से शतशः पवित्र है। उस समय के आर्य्यों मे हम कहीं भी मद्य पानादि का व्यसन नहीं पाते, परन्तु महाभारत के वीरों में यह कुकर्म साधारण हैं ॥

(४) स्वयम् महा भारत में श्रीराम की कथा कही है और बहुत मान्य की दृष्टि से वाल्मीकि कवि तथा राम को देखा गया है। रामायण की भाषा महाभारत की भाषा से अधिक पुरानी है और उस के छन्द वेदों के छन्दों से मिलते हैं-इन

राम का धनुर्विद्या शिक्षण ।

कारणों से हमें मानना पड़ता है कि युधिष्ठिर से १००० वर्ष पूर्व वा लग भग २४०० ई० पू० में श्रीराम हुए होंगे ॥

३—राजा दशरथः—महाराज अज के पुत्र राजा दशरथ की तीन स्त्रियां थीं:—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा ॥ परन्तु सन्तान एक भी न थी। "पुत्रेष्टि यज्ञ" कर के उन ने सन्तान प्राप्त की ॥ कौशल्या से राम का जन्म, कैकेयी से भरत का और सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का जन्म हुआ। यह चार भाई ज्यों २ बड़े हुए त्यों २ उन्हों ने सब प्रकार की विद्यायें पढ़ीं। भाइयों का परस्पर बहुत प्रेम था परन्तु इन में से राम और लक्ष्मण अति प्रेम से बंधे थे ॥

दशरथ के समय आर्य्यजाति का विस्तार अभी बहुत थोड़ा था: देश वनों से ढका हुआ था और उन वनों में असभ्य लोग रहते थे जिन्हें राक्षस नाम दिया गया है ॥ जैसे आज कल असभ्य देशों में पाश्चात्य सभ्यता का प्रवेश पादरियों द्वारा होता है वैसे दशरथ के समय में भी आर्य्य ऋषि कुटियाएं बना कर तपस्या और यज्ञ करते तथा धर्म फैलाते थे। वनों के मालिक असभ्य राक्षस थे। वह स्वाभाविकतया अपने देश में आर्य्यों को आक्रमण करते देख उन्हें मारते थे। जैसे आज तक असभ्यों में परस्पर मनुष्य खाने वाले पाये जाते हैं वैसे उस समय के जंगली मनुष्यों तक को खाते थे इस कारण भी उन्हें राक्षस कहा है। एक बड़े ऋषि विश्वामित्र

ऋषि एक बन में रहते थे उन्हें उक्त राक्षस सताते थे। वह दशरथ से राम और लक्ष्मण को युद्धार्थ ले गए। वन में मारीच तथा सुवाहु राक्षस लंका के राजा रावण के सेनापति रहते थे और एक मनुष्य भक्षिका ताड़का राक्षसी भी रहती थी युद्ध में मारीच भाग गया और शेष दो राक्षस सेना सहित मारे गये-जब वन राक्षसों से राहित हो गया तो वहां आर्य्य ऋषि सुख पूर्वक तपस्या करने लगे ॥

४-राजा जनक और सीता-गण्डक नदी के तट पर मिथिला पुरी (तिर्हुत) के राजा जनक थे उन की सीता नामी अति सुन्दरी जगद्विख्यात कमलनयनी और सुशीला कन्या थी। वड़े होने पर उस के विवाहार्थ राजा जनक ने स्वयंवर (खुद पति चुनने का उत्सव) करना चाहा। देश देशान्तरों के राजाओं को सन्देशा भेजा कि वह स्वयंवर सभा में सम्मिलित हों। विश्वामित्र ऋषि राम तथा लक्ष्मण को साथ ले कर उसी सभा में गये। आर्य्य जाति में चिर काल तक वीर क्षत्रियों को पुत्रियां देने की उक्त रीति प्रचलित रही है।

राजा जनक को अपने पूर्वजों से एक अति भारी पुराना धनुष दायाद में मिला था, उसे उठाने तथा उस पर चिल्ला चढ़ाने की शर्त राजा जनक ने लगा दी। सब राजकुमार अपना अपना बल लगा कर अशक्त हुए अन्त में श्रीराम वड़ी सुगमता से कामयाब हो गये, अतः उन का सुन्दरी सीता से विवाह हो गया ॥

भोग पदार्थों के बदले वन के फल फूल मिलते हैं तिस पर भी बड़ी शान्ति तथा धैर्य्य के साथ उन्हों ने माता कैकेयी की आज्ञा का पालन किया॥

७ वन गमन–राज पाट त्याग, अपने माता पिता को शोक सागर में डुबा, कोमलांगी, प्राण प्यारी राजदुलारी, जनकनान्दिनी को चीर वस्त्र पहना, प्रेमी लक्ष्मण को साथ लेकर श्री राम वन को चल दिये। दशरथ समेत सारे नगर निवासी श्रीरामके वियोग से दुःखी हुए और ज़ोर २ से रोते हुए रथ के पीछे २ दौड़े, जब रथ बहुत दूर निकल गया और उठती हुई धूल भी न दिखाई दी तो लाचार हो कर सब अयोध्या में वापिस आगये। श्रीराम सरयू नदी के पार हो प्रयाग के जंगलों में भारद्वाज ऋषि के दर्शन को गये, वहां आगे चल कर

८ चित्रकूट—के पर्वत पर चिर काल तक वास किया, यहीं पर भरत सब मन्त्रियों और प्रधान निवासियों समेत श्रीराम को वापिस लेने आए, क्योंकि भरत ने स्वयम् राज्य को स्वीकार नहीं किया था। परन्तु श्रीराम ने १४ वर्ष से पूर्व राज्य लेना स्वीकार न किया, इस पर भरत जी ने श्री राम की सोने की खड़ावें राजगद्दी पर रखीं और स्वयं राम के प्रातिनिधि के तौर पर राज्य करते रहे, परन्तु साथ ही राजमहलों को त्याग दिया और वृक्षों की छाल पहिन जंगल में कुटिया बना कर फल फूल खा कर श्रीराम की भान्ति दुःख उठाते हुए १४ वर्ष गुज़ारे–ऐसे आत्मत्याग

सत्य प्रेम और दृढ़ निश्चय का दृश्य संसार के इतिहास में नहीं मिलता । यह भरत जी भारत भूमि का एक अपूर्व नमूना है !

९ सीता हरण के कारण—(क) जिन वनों में श्रीराम वास करने को गये थे वह लङ्का के राजा रावण के आधीन थे । रावण की सेनायें वहां रहती थीं । उन्हों ने इन आर्य क्षत्रियों को स्वभावतः रोकना ही था ।

(ख) राक्षसों के दल के दल राम लक्ष्मण के हाथों से मारे गये थे !

(ग) रावण की बहिन शूर्पणखा इन दो सुन्दर राज कुमारों को देख कर मोहित होगई थी. उस ने दोनों से बारी बारी विवाह करने की अत्यन्त प्रार्थना की. परन्तु राम लक्ष्मण दोनों ने इन्कार किया. जब बार बार कहने पर भी शूर्पणखा ने बाज़ आना न माना तो लक्ष्मण ने उस के नाक कान काट लिये !

तब रोती चिल्लाती शूर्पणखा अपने दो भाइयों खर और दूषण के पास गई । याद रखना चाहिये कि रावण के भाई खर, दूषण, विभीषण, कुम्भकर्ण और अनेक रावण थे । पहिले दो इसी जनस्थान में वन की रक्षार्थ सेना समेत सीमाओं के तौर पर रहते थे ।

(ङ) अपने राज्य की रक्षा, भाइयों और वहिन के बदला लेने के लिये रावण शीघ्र तय्यार हो गया, परन्तु राम के प्रताप की सूचनायें पाकर सेना सहित लड़ना उचित न समझा, वल्कि धोखे से राम की प्राणप्यारी सीता को हर कर ले जाने पर तत्पर हुआ ! राम शिकार को गए हुए थे, लक्ष्मण भी देर हो जाने से राम के ढूंढने के लिये चले गये, अकेली सीता को रावण उठा ले गया और आंख की झपट में विमान को लंका की ओर उड़ाया !

१० सीता का लंकावास—अपने प्रियतम पति के वियोग के शोक से चिरकाल तक सीता बेहोश रही। होश आने पर रावण को वहुत सी धमकियां दीं, परन्तु वह राजा कहां स्त्री की धमकियों में आता था। छुटकारे का कोई साधन न देख कर चुपके २ सीता ने पुष्पक विमान पर से एक २ कर के अपने भूषण धरती पर फैंकने शुरू किए—अन्त में रावण आनन्द से फूला हुआ अपनी स्वर्ण नगरी में जा पहुंचा। सीता को विवाह के लिये बारंबार कहा, सहस्रों धमकियां दीं, सैंकड़ों कुरूप धारण किये राक्षसों और राक्षसियों से सीता को भयभीत किया ताकि विवाह करना स्वीकार करे परन्तु उस जनक नन्दिनी ने स्वप्न में भी किसी अन्य जन का विचार न किया था, वह अपने प्राण प्यारे के वियोग में रोती विलबिलाती समय व्यतीत करने लगी, परन्तु विवाह न किया।

११.-सुग्रीव और हनुमान-शिकार से वापिस हो कर कुटिया में जब दोनों भाई राम लक्ष्मण आये तो सीता को न पाकर अति-व्याकुल हुए। राम शोकातुर हो कर विलाप करते हुए इतस्ततः घूमने लगे। आखिर वह ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुंचे, जहां पश्चिमी घाट के बली राजा सुग्रीव अपने बुद्धिमान-स्वामिभक्त और अति बलवान मन्त्री तथा सेनापति हनुमान जी के साथ गुप्त रीति से रहते थे, वास्तव में सुग्रीव किष्किन्धापुरी के राजा बाली का छोटा भाई था। पापी बाली ने क्रुद्ध हो कर सुग्रीव की पत्नी छीन ली थी और उसे देश निकाला भी दे दिया था। अब सुग्रीव के साथ श्रीराम ने मित्रता कर ली और उसे किष्किन्धा का राज्य तथा उस की पत्नी दिलाने की प्रतिज्ञा की और सुग्रीव ने अपने सैनिकों द्वारा सीता की खोज कराने की प्रतिज्ञा की। बाली पर आक्रमण किया गया। और वह घोर युद्ध के पश्चात् मारा गया. सुग्रीव को अपनी स्त्री तथा राजलक्ष्मी मिल गयी. तब उस ने अपने सैनिक लोग सीता के खोजने के लिये सब ओर भेजे।

१२. सीता का अन्वेषण—सुग्रीव के सहस्रों सैनिक, पूर्व, उत्तर, पश्चिम और दक्षिण में सीता और रावण की खोज में जाते हैं, जिन न देशों में ढूंढने की आशा नहीं हो सकती थी उनमें से कतिपय के नाम दिये जाते हैं, ताकि राम के समय की भौगोलिक अवस्था ज्ञात हो। परन्तु खोज से मालूम पड़ता है कि

रामायण में समय २ पर मिलावट होने से इस भौगोलिक ज्ञान पर विश्वास नहीं किया जा सका।

कैलाश-कैशीकी (कोशी), सरयू, गंगा, यमुना, सोन, माही, सरस्वती, शीलवाहा, अकुवेती, शीला, शतद्रु, ह्लादिनी, सिन्धु, बलख, सुदर्शन पर्वत, काला पर्वत, यह नाम पूर्व और उत्तर में आते हैं!

अवन्ति, दशार्ण, मेराल, दण्डक, उत्कल, गोदावरी, नर्मदा, अयोमुख पर्वत, कावेरी, मलय पर्वत, पाण्डवदेश, ताम्र पर्णी, के नाम दक्षिण में आते हैं। सुराष्ट्र पश्चिमीरेगिस्तान, सोमगिरी, ऋड़, गन्धर्वों की पहाड़ियां पश्चिम में बताई हैं। इन के अतिरिक्त समुद्रों के पार यवद्वीप, (जावाद्वीप) लाल समुद्र तथा फारसी खाड़ी का वर्णन है। साथ के चित्र में जहां २ बड़े २ नगरों वा वनों के नाम आये हैं वह भी दिखाये गये हैं। नदियां सर्वदा अपने मार्ग बदलती रहती हैं, सहस्रों वर्षों के व्यतीत होने से मार्ग भेद ज्ञात नहीं हो सका अतः वर्तमान समय में जहां उपरोक्त नामधारी स्थान वा नदियां पाई जाती हैं वहीं हम ने रख दी हैं।

१३-हनुमान का सीता को खोजना—चारों ओर सीता की खोज की गई। परन्तु अन्त में केवल हनुमान जी को अशोक वाटिका में सीता के दर्शन हुए। वहां उस ने श्रीराम की कुशलता का सन्देशा दिया और उन की अंगूठी सीता को दी ताकि हनुमान पर सीता

अशोक वाटिका में सीता

विश्वास कर सके। हनुमान ने सीता को अति संतोष दिया और एक भूषण ले कर राम के पास वापिस होने लगा। परन्तु रावण को अपना बल दिखाने के लिये अपूर्व अशोक वाटिका और अद्भुत सौन्दर्य वाली लंका नगरी का नाश कर दिया। राक्षसों को युद्ध में जीतते हुए हनुमान ने श्रीराम को अति आनन्दित किया।

१४—लंका का विजय—अपनी प्राणप्यारी को रावण के पंजे से छुड़ाने के लिये सहस्रों वानर जाति के सैनिकों समेत श्रीराम लंका पर चढ़े। रामेश्वर स्थान पर पहुँच कर नल और नील शिल्पियों की सहायता से पुल बान्धा—लंका पार हो कर कई दिनों तक शूरवीर राक्षस जाति के साथ घोर संग्राम होते रहे। अन्त में रावण अपने सम्बन्धियों समेत मारा गया। अन्त में सीता श्रीराम के पास आई। रावण के भाई विभीषण को लंका का राज्य दिया गया और क्योंकि १४ वर्ष व्यतीत होने वाले थे इस कारण सीता और मित्रों समेत पुष्पक विमान पर बैठ कर श्रीराम अयोध्या पधारे।

काम मौजूद थे, सब गुण इन दो दोषों से ग्रस्त हो गये थे। उस ने अपनी लंका नगरी को जैसा सुशोभित किया वह लंका वृत्तान्त से देखो।

१६ श्रीराम का राज्य प्राप्त करना—सारी प्रजा ने श्री राम का प्रसन्नता से सन्मान किया, फिर राम सुख पूर्वक सीता सहित चक्रवर्ती राज्य करते रहे, परन्तु प्रजा के कारण गृह लक्ष्मी प्राणप्यारी सीता को मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने छोड़ना योग्य समझा। वह वाल्मीकि ऋषि की कुटिया में रही, चूंकि वह गर्भवती थी, अतः वहीं कुछ मासों में लव और कुश नामी युग्म पुत्र उत्पन्न हुए।

जब हम माता सीता के कष्टों, दुःखों, लांछनों और अपमानों को देखते हैं, हृदय फट जाता है परन्तु उस साध्वी देवी ने चूं तक नहीं की। वस्तुतः उस की सहनशीलता का उदाहरण लोक में नहीं मिल सकता, इसी लिये आर्य्य जाति अब तक इस देवी का मान करती है!

श्रीराम के पश्चात् लव और कुश ने अयोध्या के विस्तृत इलाके पर राज्य किया। इन की सन्तति में से बहुत से राजपूतवंश अपने आप को बताते हैं–श्रीराम से अपना वंश निकालने वाले राजपूत सूर्य्यवंशी कहलाते हैं।

१७ भारत का प्रथम सम्राट—यह सब से प्रथम अवसर था जब प्रायः सारे भारत का एक सम्राट हुआ। पूर्व की आर्य्य बस्तियों में पहिले से ही अयोध्या राज्य प्रधान तथा पुराना था

यद्यपि अन्य बहुत से छोटे २ राजा स्वतन्त्र राज्य करते थे जो किसी प्रकार की आधीनता में न थे, तथापि श्रीराम ने रावण के मारने से सम्राट की पदवी प्राप्त की— दक्षिण में सुग्रीवादि के राज्य आधीन हो गये, उत्तर के अन्य राजाओं ने भी ऐसे महाबली राजा राम को देख कर अपना सम्राट मान लिया हो तो कोई सन्देह नहीं !

१८ राम के गुण—संसार प्रसिद्ध राम, कमलनयन, कोमल, श्यामल शरीर, प्रतापी, धीर वीर, तीक्ष्ण बुद्धि, मनोहर मूर्ति, धर्मावतार, सौम्यस्वभाव, ईश्वरभक्त, मनुष्यों में रण में शूर थे, यह मर्यादा पुरुषोत्तम महाराजाधिराज, विद्वान्, धर्म अर्थ काम मोक्ष के तत्वज्ञाता, प्रणों पर बलिदान होने वाले, प्रजाहित राज्य कार्य्य में अतिकुशल थे। ऐसे गुणपुञ्ज मूर्ति श्रीराम का नाम आर्य्य जाति के रोम रोम में रम रहा है। श्रीराम ने आर्य्य जाति और उस की सभ्यता के उत्थान में [illegible]

जाते हैं। प्रातःकाल हिन्दु लोग सीता राम कह कर उनके यश का कीर्तन करते हैं। रोम नगर को यद्यपि रोम्युलस का बसाया कहा जाता है, तथापि कईयों का विचार है कि किसी रामभक्त भारतीय आर्य जाति ने इस नगर का यह नाम रखा। इसी प्रकार मैकसीको में रामसीतव का उत्सव रचाया जाता है। दक्षिणी अमेरिका के पीरू देश के कोनकह राजा अपने आप को सूर्य्य वंशी कहते हैं और वह भी राम की याद में दशहरे की न्याईं एक उत्सव मनाते हैं। कहां तक इस जगद्विख्यात महापुरुष के यश की साक्षी दी जावे, इतना ही पर्याप्त है। यहां यह कहना भी उचित होगा कि ऐसे पुरुष का आधार अलंकार से रचित वाल्मीकि रामायण पर ही नहीं प्रत्युत वह धर्म्म मूर्ति भूमि पर अवश्य विचरती रही और सत्य जीवन व्यतीत कर अगामी सन्तानार्थ अनेक शिक्षायें छोड़ गयी।

१.६ लक्ष्मणः—लक्ष्मण आत्मत्याग, सत्याचरण और इन्द्रिय निग्रह से निरन्तर सौतीले भाई की सेवा करते रहे और राम का उस के साथ जो प्रेम था वह लौकिक कहावत "जैसे रामलक्ष्मण की जोड़ी" में प्रसिद्ध है। सौतीले होते हुए दोनों भाई एक थे, आहार निद्रा भोग को त्याग कर लक्ष्मण छाया के समान संग रहे। हम साधारण धन दौलत के लिये सके भाई का घात करते हैं, हा !! अब रामलक्ष्मण का अपूर्व स्नेह संसार में नाम मात्र भी नहीं रहा॥

असत्यवादी नास्तिक व्यभिचारी निर्धनी नहीं होता था, प्रत्येक श्रमी को एक दिन में एक स्वर्णमुद्रा मज़दूरी मिलती थी–इस प्रकार से वह नगरी अमरावती हो रही थी !

२१. **लंका का वर्णन**—अब रावण की राजधानी का वर्णन सुनिये। समुद्र के पार ताम्रपर्णी या लंका नामी द्वीप था और राजधानी का नाम भी लंका था। उस के चारों ओर समुद्र रूपी खाई थी, फिर नगर के गिर्द स्वर्ण का परकोट था, जिस के फाटक वैदर्भमणि के बने थे, वहां पर सदा ही बाजों की ध्वनि गूंजती रहती थी, हाथी घोड़े रथसमूहों से सारी नगरी पूरित थी, उस के धनाढ्यों के भवन सोना चांदी मणि रत्नों से जटित

टिप्पणीः—प्राचीन यूनानी ऐतिहासिक **हैराडोटस** लिखते हैं कि **वेबीलोन** का घेरा ५५ मील था, उस की दोहरी दीवारें ३०० फ़ुट ऊंची और ८५ फ़ुट मोटी थीं। यद्यपि यह नगर विचित्र प्रतीत होता है परन्तु चीन की दीवार, मिश्र के मीनार, यूनान के अति प्राचीन मकीने नामी नगर तथा उस की दीवारें और रोम के भी अति प्राचीन नगर प्रगट करते हैं कि ऐतिहासिक सभ्यताओं से पूर्व एक अपूर्व और अनौपम्य सभ्यता विद्यमान थी।

नेबूचदनज़र के लटकने वाले उद्यान भी यहां अपूर्व थे। वेबीलोनिया वालों की पोशाक आर्यों से बहुत मिलती थी, उन के लम्बे बाल, सिर पर पगड़ी, शरीर पर सुगन्धि लगाना, हाथ में छड़ी उठाना, यह सब बातें भारत में भी थीं॥

लेकर निरन्तर जागते थे। रामायण के पूर्वोक्त वर्णन में कविता की अत्युक्तियां मौजूद हैं सत्यासत्य का निर्णय कठिन है परन्तु इतना विचार अवश्य करना चाहिये कि एक ओर लंका निवासियों को पुरुष भक्षक राक्षस कहा गया है दूसरी ओर रावण को वेदपाठी वेदभाष्य करने वाला महा तपस्वी माना गया है और साथ ही अपूर्व सभ्यता से पूरित लंका का वर्णन आया है। तीसरा, राक्षसों के वास्तविक नाम कवि को ज्ञात नहीं वह उन के संस्कृत नाम रखता है और जैसे उन के गुण कवि ने वर्णन करने हैं वैसे नाम दिये हैं। यह रामायण के अवलोकन से सिद्ध है: खर, दूषण, अकम्पन, देवमुखी, इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण, धूम्रराक्षस, वज्रदंष्ट्र, त्रिशिरस, इत्यादि। यह तीन घटनायें परस्पर विरुद्ध हैं और रामायण के सत्य वर्णन पर बहुत अविश्वास पैदा करती हैं।

२२-अस्त्रों शस्त्रों के नाम--रामायण में भिन्न २ अस्त्रों शस्त्रों अर्थात् फेंकने वाले तथा हाथ में पकड़ कर लड़ने वाले हथियारों के नामों को पढ़ कर बुद्धि विस्मत रह जाती है— श्रीराम के समय आर्य्यों को युद्ध विद्या का ऐसा अपूर्व ज्ञान था। हाशोक ! अब दुर्भाग्य से वह लुप्त हो गया। नीचे नमूने के तौर पर कुछ अस्त्रों शस्त्रों के नाम दिये जाते हैं:-

शोक है कि हमें पता नहीं लग सकता कि यह हथियार कैसे बनाये वा चलाये जाते थे।

दी है कि श्रीराम ज्येष्ट पुत्र थे, उन के भाग में अयोध्या का राज्य प्राप्त करना था, इक्ष्वाकुवंश की रीति नहीं कि ज्येष्ट पुत्र के स्थान पर कोई अन्य राजा बने। परन्तु प्रजा के अधिकार भी बहुत थे उन से राजा की शक्ति को बहुत रोका गया था। महाराज दशरथ ने अपनी पार्लियामेन्ट की स्वीकृति श्रीराम को युवराज बनाने में ली, फिर श्रीराम को बुला कर उपदेश दिया जो स्मरणीय है "प्रजा की सम्मति शीघ्र परिवर्तन शील होती है, कहीं ऐसा न हो कि जो प्रजा आज तुम्हें युवराज बनाने में सहमत है वह ही किसी अन्य को युवराज बनावे इस कारण तुम शीघ्र युवराज बनने को तय्यार हो जावो" ॥

इन से स्पष्ट पता लगता है कि प्रजा के अधिकार बहुत थे, ब्राह्मणों का उस समय विशेष सन्मान था और वही मन्त्री होते थे, इस कारण शान्ति और न्याय पूर्वक राज्य होता होगा ॥

२४–रामायण पुस्तक-श्रीरामचन्द्र की उक्त कथा प्रतिष्ठित कवि-शिरोमणि वाल्मीकि कृत महाकाव्य 'रामायण' से ज्ञात होती है। यह आदि महाकवि अयोध्या प्रान्त के एक वन में रहा करते थे। जब प्रजा के सन्देहों से प्रेरित हो कर पूज्यपाद जानकी जी को राम ने राज्य महलों से निकाल दिया तो वह इसी ऋषि की कुटिया में रहने लगी, वहां दो युगल पुत्र लव और

दी है कि श्रीराम ज्येष्ठ पुत्र थे, उन के भाग में अयोध्या का राज्य प्राप्त करना था, इक्ष्वाकुवंश की रीति नहीं कि ज्येष्ठ पुत्र के स्थान पर कोई अन्य राजा बने। परन्तु प्रजा के अधिकार भी बहुत थे उन से राजा की शक्ति को बहुत रोका गया था। महाराज दशरथ ने अपनी पार्लियामेन्ट की स्वीकृति श्रीराम को युवराज बनाने में ली, फिर श्रीराम को बुला कर उपदेश दिया जो स्मरणीय है "प्रजा की सम्मति शीघ्र परिवर्तन शील होती है, कहीं ऐसा न हो कि जो प्रजा आज तुम्हें युवराज बनाने में सहमत है वह ही किसी अन्य को युवराज बनावे इस कारण तुम शीघ्र युवराज बनने को तय्यार हो जावो" ॥

इस से स्पष्ट पता लगता है कि प्रजा के अधिकार बहुत थे, ब्राह्मणों का उस समय विशेष सन्मान था और वही मन्त्री होते थे, इस कारण शान्ति और न्याय पूर्वक राज्य होता होगा ॥

२४—रामायण पुस्तक-श्रीरामचन्द्र की उक्त कथा प्रतिष्ठित कवि-शिरोमणि वाल्मीकि कृत महाकाव्य 'रामायण' से ज्ञात होती है। यह आदि महाकवि अयोध्या प्रान्त के एक वन में रहा करते थे। जब प्रजा के सन्देहों से प्रेरित हो कर पूज्यपाद जानकी जी को राम ने राज्य महलों से निकाल दिया तो वह इसी ऋषि की कुटिया में रहने लगी, वहीं दो युगल पुत्र लव और

कुश उत्पन्न हुए । इस ऋषि ने राम के गुणों से उत्साहित होकर रामायण बनाई और श्री राम के पुत्रों को याद करा दी एक बार जब राम ने एक महायज्ञ किया तो उस में वाल्मीकि के सामने श्रीराम को लव और कुश ने वह हृदय विदारक कथा सुना, कर अपनी ओर सब को आकर्षित कर लिया । तब से यह उत्तम पुस्तक क्रमशः बढ़ती गयी, कतिपय अन्य कवियों ने समय २ पर उस में मिलावट की है इस कारण जो वाल्मीकि रामायण अब हमें मिलती है वह सारी श्री राम के समय नहीं लिखी गयी, परन्तु अधिकांश ४०० ईसाब्द तक बनता रहा । फिर भी यह लौकिक कविता की प्रथम पुस्तक है उस की मधुरता, गम्भीरता शब्दरचना, प्रेमभाव आनुप्रासिक यमक, विलक्षण अलङ्कार, रस, आदि गुणों ने संसार के लोगों को ऐसा मोहित किया है कि उस का अनुवाद संसार की सब प्रसिद्ध भाषाओं में पाया जाता है । कईयों का तो यह मत है कि यूनानी प्रसिद्ध कवि होमर ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक इलियड इसी रामायण के अधार पर लिखी है ॥

आधुनिक समय में श्री तुलसीदास ने आर्य्य भाषा में रामायण लिख कर सारे भारत का बड़ा उपकार किया है यदि कोई जातीय पुस्तक भारत में अध्ययन के लिये बाकी रह गयी है तो वह एक भगवद्गीता है और दूसरी तुलसी कृत रामायण है ॥

श्लीगल महाशय लिखते हैं कि वीर रस प्रदान करने वाली पुस्तकों में रामायण उत्तम है ॥

मो० विलियम का कथन है-"संस्कृत साहित्य के कोष में रामायण निस्सन्देह उत्तम रत्न है-किसी देश या किसी काल में ऐसा सुन्दर काव्य कभी नहीं देखा गया" ॥

ग्रिफथ साहब लिखते हैं—"प्रत्येक देश और काल के साहित्य को रामायण चैलेञ्ज कर सक्ती है कि ऐसा काव्य दिखावे जिस में सीता राम जैसे पूर्ण मनुष्य पाए जावें ।" रामायण में ४८००० पंक्तियां हैं और इलियड की केवल १५६९३ पंक्तियां हैं * ॥

अध्याय ६ ।

कौरव पाण्डव ।

१.—युधिष्ठिर के काल का निश्चय—इस काल के निश्चय करने वाले दो दलों में विभक्त हैं एक दल की सम्मति है कि ३१०० वर्ष ई० पू० युधिष्ठिर हुए । दूसरा दल १४०० वर्ष

---

* टिप्पणी:—रामायण के आधार पर होमर कवि ने इलियड बनाई, इस के लिये विशेष तया Rama and Homer by Lillie देखो ॥

पूर्व उस युद्ध का समय वताता है—हमारी सम्मति में दूसरे दल की युक्तियां वलवती हैं परन्तु सत्यता कहां है यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जासकता—दोनों दलों की प्रधान युक्तियां नीचे दी जाती हैं ॥

(१) सारी हिन्दु जाति का चिर काल से विश्वास चला आता है कि कलियुग के आरम्भ में वह युद्ध हुआ, अव सारे ज्योतिष शास्त्र के लेखक १म शताब्दी से अव तक कलि सम्वत् का आरम्भ ३१०० वर्ष ई० पू० रखते हैं और हिन्दु लोग भी चिरकाल से इस विश्वास में दृढ़ हैं यहां तक कि अलवरूनी (११वीं श०) और अवूफ़ज़लादि (१६वीं श०) मुसलमान लेखकों ने भी यह कलिकाल माना है ॥

(२) महाभारत स्वयं भी यह कहता है कि युद्ध कलियुग के आरम्भ में हुआ और उस की भाषा निर्माण से भी यह ज्ञात होता है कि उसे ब्राह्मण ग्रन्थों के काल के पास रखना चाहिये ॥

(३) महाराज चन्द्र गुप्त के समय जो यूनानी दूत मेगस्थनीज़ आया उस के लेखों के आधार पर एक यूनानी महाशय ने १म शताब्दी में लिखा कि दायोनिसस के समय से चन्द्र गुप्त के समय तक १५३ राजाओं तथा उन के राज्य की ६०४२ वर्षों की गणना भारती लोग करते थे और दायोनिसस हरिक्लीप से १५ पीढ़ी पूर्व हो चुका था। इस कथन से चन्द्रगुप्त से हरिक्लीप

साथ ही कलियुग का समय वस्तुतः १२०० वर्ष था वह २०० ई० पू० समाप्त हो कर सत्युग का आरम्भ होना था उस काल के आर्य्यों ने अपनी गिरी अवस्था देखी इस कारण उन्हें निश्चय नहीं हो सकता था कि हम सत्युगी आर्य्य हैं। उन्हों ने कलि वर्षों को दैवी वर्षों वाला बना दिया। इसी से सारा भ्रम हुआ, महाभारत में पीछे से युग के श्लोक और कलियुग को निकृष्ट बताने वाले श्लोक मिला दिये गये, अतः प्रथम दो युक्तियों पर विश्वास नहीं हो सकता॥

(२) शोक है कि उस सत्यवादी युनानी दूत ने जो राजाओं की संख्या '१३८' दी है उस पर विश्वास कर लिया जाता है और जो सम्पूर्ण काल '६०४२' दिया है उसे पक्षपात से अन्धे हो कर त्याग दिया जाता है। यदि सत्य हैं तो दोनों संख्याएं सत्य हैं नहीं तो दोनों सन्दिग्ध हैं। उस दूत के अनुसार $\frac{६०४२}{१३८}$=४० वर्ष के लग भग प्रत्येक राजा ने राज्य किया जो सर्वथा असम्भव है। कल्पना करो कि दोनों संख्याएं ठीक हैं तब श्री कृष्ण से चन्द्रगुप्त तक ५४४२ वर्ष हुए। कोई बुद्धिमान् पुरुष इस बात को मानेगा? सत्य है पक्षपात की केवल एक आंख होती है॥

(३) स्वामी दयानन्द सरस्वती, युधिष्ठिर से १२४६ विक्रमी सम्वत् तक केवल १२४ राजा हुए-ऐसा मानते हैं। उक्त दूत चन्द्रगुप्त के समय तक ही (अर्थात् १५५० वर्ष पूर्व तक ही)

ii कल्हन ने अपनी राजतरङ्गिणी में युधिष्ठिर से अशोक तक ४७ राजा बताये हैं, यदि कईयों के नाम उस ने छोड़ भी दिये हों तो भी ५१ तक वह राजा माने जा सकते हैं न कि १३८; जैसे कि युनानी दूत का कथन है और उपरोक्त १२४ राजाओं के ख्याल से भी यही संख्या आवेगी।

$$\left(\frac{११६३ \text{ ई०} + २७२}{२१} = ७० \text{ और } १२४ - ७० = ५४ \text{ राजे}\right)$$

५४×२१ + २७२=१४०६ वर्ष युद्ध को हुए होंगे।

iii विष्णु पुराण और भागवत पुराणों ने स्वयं नक्षत्रों के हिसाब से कहा है कि युधिष्ठर से नन्द राज्य तक १०६५ वर्ष हुए हैं अतः युद्ध को १०६५+३२२=१३८७ वर्ष ईसाब्द तक हुए। यह साक्षी अत्यन्त बलिष्ट है क्योंकि कलिकाल को मानने वाले पुराण स्वयं हमारे अनुमान को सत्य ठहराते हैं॥

IV मगध इतिहासानुकूल युधिष्ठर से बुद्धदेव तक ३५ राजाओं ने राज्य किया अतः ३५×२१+६६७–बुद्ध की जन्म तिथि=१४०० वर्ष ईसाब्द से पूर्व युद्ध हुआ॥

२—उक्त युक्तियों से १४वीं शताब्दी में युद्ध का होना सिद्ध हुआ। इस युद्ध का वृत्तान्त हमें महाभारत नामी वृहत् पुस्तक से ज्ञात होता है जिसे उसी व्यास ऋषि की बनाई हुई माना जाता है जिस ने वेदों का संग्रह किया, जिस ने शुक्ल यजुर्वेद से कृष्ण यजुर्वेद में भिन्नता की, जिस ने पौराणिकों के अनुसार १८ पुराणों की रचना की और जिस ने वेदान्त नामी छटा दर्शन

३—कौरवों और पाण्डवों का इतिहास 'महाभारत' नामी बृहत् पुस्तक से ज्ञात होता है। यह महा पराक्रमी पुरुष राजा भरत के वंशज थे इन्हीं में महाभयङ्कर भ्रातृ युद्ध हुआ जिस में दुष्ट, कपटी ईर्षालु कौरवों का नाश हुआ और सरल स्वभाव और सत्यारूढ़ पाण्डवों की जय हुई—यही महाभारत की कथा का सार है॥

४—वंशः—भयानक युद्ध के वृत्तान्त के स्पष्टार्थ कौरव पाण्डवों की वंशावली जाननी चाहिये :—

दुष्यन्त
|
भरत
|
२ राजे
|
हस्ती (जिस ने हस्तिनापुर बसाया)
|
विकुन्थन
|
अजमीढ़ (जिस के पुत्र नील ने सम्भवतः मिश्र देश बसाया)
|
सोम वर्ण
|
कुरु (जिस ने कुरुक्षेत्र की समर भूमि बनाई
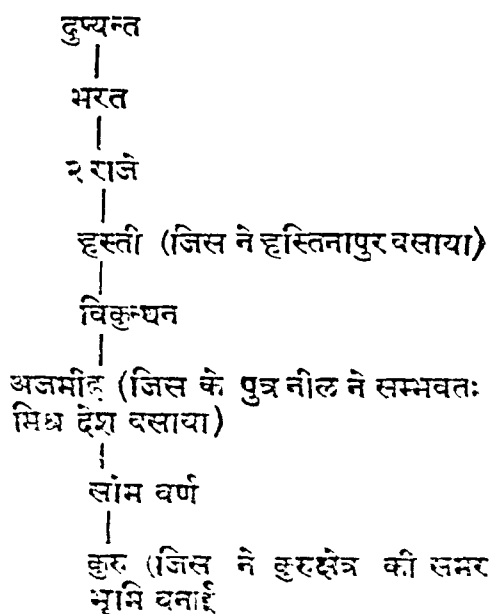
|
६ राजा अप्रसिद्ध हुए
|

सत्यवती = शन्तनु = गंगा
॥ ॥
विचित्र वीर्य्य भीष्म

राजा की सन्तान न होने से उस की धर्म्म पत्नियों से वेद व्यास ने नियोग किया तीन पुत्र हुए:
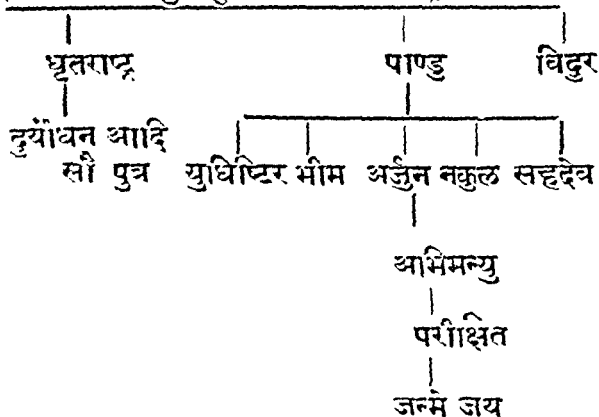
५—श्रीराम से युधिष्ठिर के काल तक भारत के इतिहास पर पर्दा पड़ा हुआ है। पुराणों में भी उक्त राजाओं के विषय में कोई रोचक बातें नहीं मिलतीं। अतः हम सीधे १००० वर्षों की छलांग लगा कर युधिष्ठिर के परदादे तक आ पहुंचते हैं। राजा शन्तनु सत्यवती कन्या से विवाह करना चाहता था परन्तु कन्या का पिता अपने दौहित्रों को भीष्म के स्थान पर शन्तनु के पश्चात् राजा बनाना चाहता था। भीष्म ने अपने पिता की व्याकुलता को

देख कर राज्याधिकार तथा गृहस्थाश्रम सर्वदा के लिये त्याग दिये, और जीवन पर्य्यन्त उन विकट प्रतिज्ञाओं का पालन किया। इन सरीखे महा पुरुष संसार में कम मिलेंगे, बूढ़ा पिता कामवश एक मच्छलीगीर की कन्या का शिकार है, नवयुवक पुत्र सर्वदा के लिये सांसारिक भोगों का त्याग करने पर भी पिता के लिये कटिबद्ध होता है, ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ. सत्यवादी, पराक्रमी, ब्रह्मचारी, ज्ञानी, धार्मिक, भीषण योद्धा, आत्म त्यागी धर्मोपदेष्टा के लिये संसार को प्रणाम करना चाहिये॥

६—राज्य में परिवर्तन—शन्तनु के दो पुत्र हुए एक युद्ध में मारा गया, दूसरा विचित्रवीर्य्य भोगों के कारण क्षय रोग से यौवन में ही चल बसे। शन्तनु के योगी पुत्र व्यास ने पुत्र रहित विचित्रवीर्य्य की दो स्त्रियों से नियोग करके तीन पुत्र उत्पन्न किये। धृतराष्ट्र अन्धा होने के कारण राज्य प्राप्त न कर सका, इस कारण पाण्डु को राज्य दिया गया परन्तु वह भी जल्दी मर गया। इस के पांच युधिष्ठरादि पुत्र थे, जो पाण्डव नाम से प्रसिद्ध हैं। युधिष्ठिर के अल्प आयु वाला होने से धृतराष्ट्र संरक्षक के तौर पर गद्दी पर बैठे॥

७—युद्ध के कारण—I युधिष्ठिर पाण्डु का पुत्र होने से राज्याधिकारी था। धृतराष्ट्र के दुर्योधनादि सौ पुत्र कहते थे कि हम ज्येष्ठ पुत्र के पुत्र हैं यदि धृतराष्ट्र अन्धा होने से राज्य के अयोग्य था तो हम कुरु के वंशज कौरव अयोग्य नहीं हो सकते, राज्याधिकार हमारा है। अतः युद्ध होना आवश्यक है॥

II—बालावस्था से ईर्षा थी—कौरव और पाण्डव बाल्यावस्था में कृपाचार्य्य और द्रोणाचार्य्य के शिष्यत्व में एक स्थान पर विद्या प्राप्त करते थे, युधिष्ठिर बड़े सौम्य और क्षमा शील, अर्जुन बड़े बुद्धिमान तथा शस्त्रवेत्ता और भीम बड़े पराक्रमी थे, गुरु इन को अधिक शस्त्रविद्या सिखाते थे, दुर्योधनादि को भीम अपने अपूर्व बल से प्रायः हराया करता था। ऐसी अवस्था में कौरव सदा पाण्डवों से ईर्षा करते और बदला निकालने की ताक में रहते थे॥

III—भीम को विष देना—कौरवों ने भीम को मारने के लिये विष देकर गंगा में बहा दिया, बेचारा विष के प्रभाव से बच कर यथा तथा घर पहुंचा परन्तु कौरवों पर बदला निकालना चाहता था, कि युधिष्ठिर के कहने से उन्हें क्षमा कर दिया, ऐसा बली होते हुए ऐसी क्षमा प्रशंसनीय है॥

IV—कर्ण—कुन्ती को कुमारी अवस्था में कर्ण उत्पन्न हुआ था पाप कर्म छिपाने के लिये उसे गंगा में बहा दिया गया था, बड़े होने पर जब उसे अपनी उत्पत्ति का ज्ञान हुआ तो माता से उसे प्रेम न था: और साथ ही अर्जुन से ईर्षा के कारण वह दुर्योधन से जा मिला, उन्हों ने उसे अङ्गदेश का राजा बनाया, वह महाशय बदला निकालने के लिये कौरवों को चमकाता रहता था॥

V—वारणावर्त में पाण्डवों के भवन को जलाना—एक समय युधिष्ठिरादि वारणावर्त नगर में विश्राम करने के लिये जाने लगे, दुर्योधन ने तब शुभ अवसर देखा। उन के लिये लाख गन्धकादि शीघ्र जलने वाले पदार्थों का एक भवन बनवाया ताकि छुपके से रात्रि में घर को आग लगादी जावे और सब पाण्डव भस्म हो जावें। परन्तु पाण्डवों के हितैषियों ने बन में जाने वाली एक सुरंग बनादी थी, घर को आग लगाने पर पाण्डव सुरंग द्वारा बन में निकल गये, कौरव मन में बड़े प्रसन्न हुए, यद्यपि दिखावट के लिये बड़ा शोक प्रगट किया॥

VI. पाण्डवों का द्रौपदी को जीतना—तब पाण्डव बनों में फिरते रहे, आखिर पाञ्चालदेश के राजा की कन्या द्रौपदी के स्वयम्बर में ब्राह्मण रूप में शामिल हुए, वहां अर्जुन के अतिरिक्त अन्य कोई राजयुवक रङ्ग शाला में ऊपर टंगी हुई मछली की आंख को अपने बाण से न बेध सका, इस पर कर्ण सहित कौरव बहुत लज्जित हुए॥

VII. पाण्डवों के सुशासन से ईर्षा—पाण्डवों के निज बल तथा पाञ्चालाधीश की सहायता से भय भीत हो कर कौरवों ने उन्हें आधा राज्य देना स्वीकार किया। आधुनिक देहली के आस पास का प्रान्त पाण्डवों को दिया गया—उन्हों ने अपने बाहु और बुद्धि बल से शीघ्र ही राज्य उत्तम कर दिया,

राजधानी को अपूर्व भवनों से इन्द्र-नगरी अमरावती के समान सुन्दर बना दिया, वहां अपने रहने के लिये जो माया भवन मय शिल्पी द्वारा बनवाया, उसे देख कर और उस में कई प्रकार के तान सह कर कौरवों ने पाण्डवों को राज्य से च्युत करवाना चाहा। साथ ही उन की ईर्षा को बढ़ाने वाला यह कारण था कि पाण्डवों ने मगध देश के राजा जरासन्ध को मार कर उस के राज्य में जो बहुत से राजा कैद थे, उन्हें छुटकारा दिया। इस प्रकार मगध देश, छोड़े हुए राजाओं के देश और कुछ पूर्व के देशों की भी पाण्डवों ने दिग्विजय की। उस विजय की अपूर्वता को दर्शाने के लिये युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया, कौरव हीन शक्ति रहने से अधिक ईर्षालु हो गये और राज्य ग्रहण करने की तदबीरें सोचने लगे॥

मय भवन—का मनोरञ्जक वृत्तान्त यूं है :—

मय भवन में जल की जगह स्थल और स्थल की जगह जल की भ्रान्ति होती थी, इसी कारण से कतिपय कर्मचारी सरोवर में गिर पड़े। उस सभा के चारों ओर खिले हुए नाना प्रकार के वृक्ष अत्यन्त सघन छाया कर रहे थे, तथा मन को लुभाने वाले हंस, कारण्डव, चकवाक इत्यादि पक्षिगण इधर उधर मन्द चाल से घूम रहे थे। इस अपूर्व सरोवर की शीतल मन्द वायु कमलों की सुगन्धी से सुवासित हो कर पाण्डवों की सेवा किया करती थी॥

उस का सरोवर शीशों का बना हुआ था, इस से सिद्ध होता है कि आर्य्य लोग शीशे की खिड़कियां और दरवाज़े बनाया करते थे, इसी एक घटना को देख कर विलसन साहब कहते हैं कि [सभ्यता की उच्चता का यह ऐसा प्रमाण है जैसा कि यूनानी और रोमन सभ्यताओं में कदापि नहीं पाया जाता। शकुनि को साथ लेकर दुर्योधन ने उस सभा को भलीभान्ति देखा क्योंकि ऐसी विलक्षण रचना उस ने कभी स्वप्न में भी नहीं देखी थी। एक दिन उदासचित्त दुर्योधन सभा में जा रहा था कि स्फटिक में जल की भ्रान्ति होने से उस ने धोती भीगने के भय से ऊपर उठा ली, पर वास्तव में जल न होने के कारण वह लज्जित हुआ और पीछे लौटा, पर जिधर वह लौटा वह जलीय प्रदेश था, स्थल थी केवल उस में भ्रान्ति मात्र थी अतः वह जल में गिर गया॥

फिर एक स्फटिकमय फाटक को खुला जान कर घुसना चाहा कि शिर में चोट खाकर पीछे लौटा। इसी प्रकार दूसरे स्थान पर स्फटिक द्वार को बन्द जान कर जो कि वास्तव में बन्द न था, खोलना चाहा कि सहसा गिर पड़ा, वहां से उठ कर आगे बढ़ा, पर एक खुले हुए मणिमय द्वार को भ्रान्ति में बन्द समझ पीछे लौट पड़ा। महाराज दुर्योधन इस प्रकार राजसूय यज्ञ में पाण्डवों की सम्पत्ति और उक्त प्रकार से अपनी हंसी देख कर अत्यन्त अप्रसन्नचित्त हो हस्तिनापुर में लौट आया॥

VIII. पाण्डवों का जुए में सर्वस्व हारना—उस समय जुआ खेलना बुरा नहीं समझा जाता था, और यदि किसी क्षत्रिय को जुआ खेलने का निमंत्रण दिया जावे तो वह इन्कार नहीं कर सकता था। दुर्योधन के मामा शकुनि ने जो जुआ खेलने में अत्यन्त निपुण था-युधिष्ठिर को निमंत्रण दिया. बेचारा युधिष्ठिर अपनी इच्छा के विरुद्ध उस कपटी शकुनि से जुआ खेलने कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर में गया, हर एक दाव पर युधिष्ठिर हारता गया, धन, धान्य, राज्य, दास, दासी, भाई अपने आप को और फिर द्रौपदी को हार बैठा !!

द्रौपदी का केशाहरण—इस पर दुर्योधन का भाई दुःशासन द्रौपदी को सभा में लाने के लिये गया-वह सभा में जाने के योग्य न थी, उस ने केवल एक वस्त्र शरीर पर धारण किया हुआ था, व्यभिचारी, क्रूर, दैत्य दुःशासन ने द्रौपदी को केशों से पकड़ कर घसीटा और उसी दीनावस्था में दरबार में लाया. वहीं उस पतिव्रता रानी को नङ्गा करना चाहा। तब दीन लज्जित, क्रोधाग्नि से भस्म होती हुई, धर्मपुत्र युधिष्ठिर की पत्नी रो रो कर सभा के सामने दुःख प्रकाशित करने लगी। पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा से बन्धे हुए इस हृदय विदारक भयङ्कर दृश्य को देखते रहे, और दुःशासन को मार कर रक्त पीने और दुर्योधन की जंघा चूर करने का प्रण मात्र भीम ने किया ॥

पाण्डवों का वनवास—दुर्योधन की माता गान्धारी की सलाह से हारा हुआ सब कुछ पाण्डवों को वापिस दिया गया, परन्तु फिर एक वार निमंत्रन करके बारह वर्ष वन में रहने तथा एक वर्ष छिप कर रहने पर पाण्डवों को बाधित किया गया, अर्थात् जब यह शरत पूरी कर लेगें तो वापसी पर उन्हें इन्द्रप्रस्थ का निज राज्य दिया जावेगा।

IX. वनवास में पाण्डवों को मारने का यत्न—जुए के शिकार हुए सारे पाण्डव द्रौपदी समेत बारह वर्ष तक वनों में रहे। वहां भी देश हत्यारे, द्वेषी, छली दुर्योधन और उस के असत्यवादी साथियों ने पाण्डवों का पीछा न छोड़ा। कई प्रकार से उन का घात करना चाहा, परन्तु वह कौरवों के छल जाल से बचते रहे. १३वें वर्ष विराट राजा की सेवा में छिप कर रहे, यद्यपि कौरव रात दिन उन की खोज में रहते थे तथापि वह कामयाब न हुए। जब तेरहवां वर्ष समाप्त होने वाला था तब कौरवों ने विराट राजा पर आक्रमण किया। पाण्डवों ने उसे सहायता दी. कौरवों को पराजित किया गया, इस पर दुर्योधन अत्यन्त शोकित और लज्जित हुआ क्योंकि वह पाण्डवों को मृत समझे बैठा था, अब राज्य लेने के लिये साक्षात् पाण्डव मौजूद थे॥

X. वनवास की प्रतिज्ञा पूर्ण करने पर भी राज्य न मिलना—राजा द्रुपद और विराट पाण्डवों को निज राज्य दिलाने

में तत्पर थे और द्वारकाधीश श्रीकृष्ण भी उन के बड़े सहायक थे। उक्त तीनों राजाओं ने कौरवों को राज्य वापिस कर देने की प्रेरणा की। श्रीकृष्ण सर्व नाशक युद्ध को वन्द करने के लिये स्वयं हस्तिनापुर में गये, परन्तु स्वार्थी दुर्योधन ने किसी की सलाह न मानी और युद्ध करने पर तत्पर हुआ। बस अब दोनों दलों का प्याला भरपूर था, उस में कोई बून्द अधिक न समा सकी थी। सर्व और राज्य दूत भेजे गये, भारत के सब राजा एक ओर या दूसरी ओर हो कर परस्पर लड़ने लगे।

८—सेना—संसार के इतिहास में इतनी बृहत् सेना कभी एकत्रित नहीं हुई, युधिष्ठर के पक्ष में ७ अक्षौहिणी और दुर्योधन के पास ११ अक्षौहिणी सेना थी, जो सम्पूर्ण ३९३६६०० सैनिक होते हैं। यह संख्या असम्भव प्रतीत होती है परन्तु अन्य देशों के उदाहरण लेते हुए इस में विश्वास हो जायेगा कि यह असम्भव संख्या नहीं है जब कि सारे भारत वर्ष तथा अन्य देशों के राजा भी कुरुक्षेत्र में एकत्रित हुए हों।

ज़र्कसीज़ ने युनान पर ५३ लाख सैनिकों तथा सेवकों से हमला किया।

मुसलमानों और हमिंट राजा की सेना की संख्या फ्रान्स में ७ लाख थी॥

हनीबाल ने रोम पर १½ लाख सैनिकों से हमला किया
नेपोलियन ने रूस पर ५ लाख ”

अमेरीकन भ्रातृ युद्ध में २२ लाख सेना थी।

सैमिरस ने भारत वर्ष पर तीस लाख पैदल, पांच लाख सवार,एकलाख रथ और दो हज़ार जहाज़ों से हमला किया,(८.१.)॥

९—कुरुक्षेत्र पर संग्राम—१८ दिन तक निरन्तर दोनों दलोंमें घोर सर्वनाशक महासंग्राम होता रहा। बड़े २ वीर, धीर, पराक्रमी शस्त्रवेत्ता योद्धा लाखों की संख्या में प्रतिदिन मारे जाते थे. कौरवों के सेनापति भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, अश्वत्थामा युद्धविद्या में अतिकुशल और महावीर थे. तो भी अर्जुन, भीम और श्रीकृष्ण की चालों और वीरता के सामने उन की कुछ पेश न गयी. कई प्रकार के व्यूह बनाये गये जैसे मध्य भेदी, अन्तर भेदी, मकर व्यूह, श्येन व्यूह,शकट व्यूह,अर्धचन्द्र,सर्वतोभद्र,गोमूत्रीक,दण्ड भोज,मण्डल, असंहत आदि। बहुत से सैनिक बच कर अपने घरों में न गये--धृतराष्ट्र के वंश में कोई पुत्र या सम्बन्धी न बचा। पाण्डवों के भी सब राजपुत्र मारे गये। अतः लाखों स्त्रियां विधवा होगईं,पुत्रों,पतियों, पिताओं, भ्राताओं के लिये हाहाकार सारे भारत में होने लगा और सारे भारतीय शोक सागर में डूबे हुए थे।

१०—अस्त्र शस्त्र—कुरुक्षेत्र के युद्ध में जिन अस्त्रों, शस्त्रों और यंत्रों का प्रयोग किया गया, उन में से कई अति अद्भुत तथा विचित्र हैं, उन से पूर्ण साक्षी मिलती है कि आर्यों ने युद्ध विद्या में बड़ी ही प्रवीणता प्राप्त कर ली थी, युद्धविद्या को

विज्ञान तथा क्रिया के पूर्ण रूप में लाये हुए थे. धनुर्वेद इस विद्या की खान थी । इस विद्या के ४ वृहत् और दश लघु भाग थे ताकि पूर्णतया अन्वेषण हो सके । अस्त्रों शस्त्रों के पाञ्च प्रकार थेः स्वाभाविक शस्त्र, निर्मित शस्त्र, हस्तमुक, मुक्तामुक, यंत्र मुक्त । अब इन पांचों के कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं, जिन से विदित हो जावेगा कि आर्यों को कतिपय प्रकार की ऐसी तोपों बन्दूकों और अन्य ऐसे अस्त्रों का पता था कि जिन को अब तक किसी जाति ने नहीं बनाया । यह ध्यान रखना चाहिये कि निम्न लिखित अस्त्र जब आर्यों में प्रचलित थे तो अन्य सब देश घोर अज्ञानान्धकार में पड़े थेः—

ढाल तलवार	शक्ति	कचग्रह	विद्युतास्त्र
अङ्कुश	तोमर	चक्र	प्रमोदनास्त्र
गदा	बरछी	त्रिशूल	प्रज्ञानास्त्र
मुद्गर	बल्ल	कम्पन	अन्तर्धान ,,
मुसल	नरच	क्षुरास्त्र	वारुणेय ,,
अस्थि सन्धि	विपथ	चक्रविशिख	वायव्य ,,
स्थूल	परशु		आग्नेय ,,
क्षुरप्र	पगाश		परजन्यास्त्र
	पट्टिश		पार्वत्यास्त्र
	परिघ		भौमास्त्र
	फरशु		

यंत्र–शतघ्ना, भुशुण्डी, अग्नि यन्त्र, वज्र, चक्राश्म (पत्थर फेंकने का यन्त्र), अयस्कणव (गले से गोले गिराने वाला यन्त्र) तुलगदा (वे तोपें जो चक्र युक्त हैं और वायु से चलती हैं और जिन का शब्द मेघ के समान होता है)॥

११.—युद्ध के परिणाम–(१) युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में राज्याभिषेक हुवा और यद्यपि धर्म, न्याय और शान्ति पूर्वक ३६ वर्ष तक उस ने राज्य किया, तथापि पाण्डवों का मन पुत्रों और भाईयों के मृत्यु के कारण राज्य में न लगता था। इसी समय में उन्हों ने श्रीकृष्ण की सम्मति से अश्वमेध यज्ञ किया, और अन्त में शान्ति न पा कर अर्जुन के पौत्र परीक्षित को राज्य दे कर पर्वतों की ओर प्रस्थान किया, और वहीं देह त्याग कर स्वर्ग लोक को सिधारे। सत्य है दूसरों का घात करके निष्कण्टक सुख राज्य से भी नहीं मिल सकता॥

(२) बड़े २ नगरों में नरों की मृत्यु होने से स्त्रियों की संख्या अधिक होगई जिससे व्यभिचार और वाममार्ग संसार में फैलने लगा॥

(३) सारे वीर योद्धा और विद्वान् क्षत्रिय इस सर्वनाशक संग्राम में मारे गये। तब से विद्या का नाश और वीरता का क्षय होता गया, अतः अवनति के ढलवान पर भारत वर्ष पड़ गया॥

१२.—युधिष्ठिर—को सद्गुणों के कारण संसार अब तक धर्म पुत्र वा धर्मराज कहता है। एक अवसर के सिवाय उस ने

कभी झूठ नहीं बोला, दया का वह समुद्र था, उदार, क्षमा शील, धैर्यवान्, सहनशील, प्रतिज्ञापालन करने वाला, धर्म से कभी मुख न मोड़ने वाला था, उसे शान्तिप्रिय और प्रेमसागर कह सकते हैं। प्रपञ्चियों में रह कर साधुता कैसे हो सकती है—यह शिक्षा युधिष्ठिर के चरित से सीखनी चाहिये ॥

१.३—भीम—संसार में ऐसा अपूर्व बली अन्य कोई नहीं हुवा, उस में मन्यु प्रधान था, बदला लेने में अति क्रोधी परन्तु दीनों को दुःख नहीं देता था, और न व्यर्थ उपद्रव मचाता था, युधिष्ठिर की आज्ञा पालन करता था यद्यपि कोई आज्ञा उस के विचार के विरुद्ध भी क्यों न हो ॥

१.४—अर्जुन—अत्यन्त बुद्धिमान् और अस्त्र शस्त्र विद्या में अद्वितीय था, श्रीकृष्ण में अतिप्रेम, धर्म में प्रीति, बड़ों की आज्ञा पालना, सम्बन्धियों में मोह, कर्तव्य परायणता आदि गुण उस में कूट २ कर भरे थे ॥

१.५—द्रौपदी—ऐसी पतिव्रता स्त्रियें सीता के सिवाय बहुत कम मिलती हैं। जो दुःख इस राजदुलारी, द्रुपद पुत्री, धर्मराज की पत्नी ने सहे, ईश्वर करे! वह किसी को न सहने पड़ें। पति में प्रेम, कर्तव्य का समझना तथा समझाना, धैर्य, बुद्धिमता के लिये द्रौपदी का चरित अपूर्व है ॥

१६—विदुर—बड़े नीतिनिपुण, बुद्धिमान् और सत्य परायण थे, जब दुष्ट कपटी कौरवों ने पाण्डवों को सताना चाहा, विदुर ने पांडवों की सहायता की। उपदेश न माना जाने पर कौरवों को त्याग कर वन में चले गये और उन को सदा समझाते रहे—संसार में अपनी नीति के लिये यह प्रसिद्ध हैं, अब तक भी विदुरनीति के कुछ भाग मिलते हैं॥

१७—श्रीकृष्ण—यह सब प्रकार के व्यवहार में चतुर और सत्याचारी, परमयोगी, निष्काम कर्म में रत थे- उस गिरे समय में धर्म मार्ग को दिखाने तथा शान्ति लाने का कार्य इन्हों ने किया—जब कौरव अपने दुष्ट मार्ग को न छोड़ सके, तब सत्य और धर्म मार्ग पर चलने वाले पाण्डवों की ओर हो कर अधर्म का नाश किया, हिन्दुओं ने पीछे इन्हें अवतार ठहराया। इन्हों ने संग्राम के समय जो अमर उपदेश अर्जुन को युद्ध करने के लिये किया था, वह श्रीभगवद्गीता नामी अमर पुस्तक में पाया जाता है॥

१८—महाभारत का गिरा हुवा समय—युद्ध होने से पूर्व आर्यों का आचार भ्रष्ट होना आरम्भ हो गया था, नर नारी साधारणतया व्यभिचारी हो रहे थे। किसी में पञ्च महायज्ञ तथा अन्य धर्म कार्य करने का प्रेम नहीं था और नारियों का बहुत अपमान होने लगा था। निम्नलिखित

कुछ साधारण उदाहरणों से ही इस कथन की सत्यता का पता लग जायगाः—

[१] भीष्म के पिता शन्तनु का गङ्गा और सत्यवती तथा वेदव्यास की शूद्रा माता-इन तीन स्त्रियों से विवाह करना [२] भीष्म के भ्राता विचित्र वीर्य का क्षय रोग से मरना [३] विदुर का एक-दासी से जन्म होना [४] पाण्डु का माद्री और कुन्ती से विवाह कर के पाञ्च पुत्र उत्पन्न करना [५] द्रौपदी का पाञ्चों भाइयों से विवाह होना [६] पाञ्चों पाण्डवों का पत्नीव्रत पालन न कर के अन्य स्त्रियों से विवाह करना [७] महाभारत से अर्जुन के पांच विवाहों का सिद्ध होना [८] भरे दर्बार में द्रौपदी के केशों का आकर्षण तथा चीरहरण आदि महापाप करना [९] स्त्रियों को भी द्यूत में हारना [१०] वन में सिन्धु राजा द्वारा द्रौपदी का हरण होना [११] राजा विराट् के सेनापति तथा साले का द्रौपदी से दुराचार की अभिलाषा करना तथा विराट् की सभा में द्रौपदी के विलाप करने पर भी न्याय का न होना [१२] महर्षि व्यास और कर्ण जैसे दानी योद्धा का कुमारी से उत्पन्न होना [१३] भीमसेन का दुःशासन के हृदय का रक्त पीना [१४] मद्यपान से मदोन्मत्त हो युद्ध करना तथा द्वारिका में मद्य पान रूपी प्रधान कारण से यदुवंश का सर्वनाश होना [१५] युद्ध के पश्चात् स्त्रियों के आधिक्य से वाममार्ग का फैलना ॥

——:०:——

अध्याय ७

याज्ञिक काल।

ब्राह्मण ग्रन्थों के समय का इतिहास।

१. ब्राह्मण ग्रन्थ क्या हैं?—हिन्दुओं की दृष्टि में ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदों की न्याईं अपौरुषेय हैं, परन्तु उन में भारत वर्षीय राजाओं और ऋषियों के कार्यों का वर्णन होने के कारण वह इलहामी पुस्तकें कभी नहीं हो सकतीं। उन में वेदों के मन्त्रों को यज्ञों में उपयुक्त करने की विधि और उन के लिये समय तथा स्थान बतलाया है। राजाओं, ब्राह्मणों तथा अन्य वर्णों को यज्ञ करते हुए अपने जीवन व्यतीत करने चाहिएं—उन्हीं के करने से इस लोक और परलोक में सुख मिलता है—ऐसी शिक्षाएं स्थान २ पर दी हैं। योगाभ्यास आदि से परमात्मा के स्वरूप को जानना तथा तपश्चर्य्या से जीवन व्यतीत करना—इन के विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का मत प्रतीत होता है। इन के पढ़ने से ज्ञात होता है कि आर्य्यों के सारे जीवन में अधिकतर सादगी, सत्य व्रतता तथा यज्ञ परायणता थी, परन्तु कहीं २ सांसारिक सुखों की भी कुछ झलक मिलती है। यद्यपि वह स्थान दुर्भाग्य से थोड़े हैं तथापि उन से भी आर्य्यों की आर्थिक, सामाजिक, मानसिक और धार्मिक अवस्थाओं पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है॥

२. ब्राह्मणों की संख्या—ब्राह्मण ग्रन्थों के नाम से बहुत सी पुस्तकें मिलती हैं, परन्तु पुरातन और प्रामाणिक ब्राह्मण केवल चार हैं जो स्वयं अन्य प्राचीन ब्राह्मणों के आधार पर बने हैं, जिन के नाम और आस्तित्व का अब पता नहीं।

सामवेद	के मन्त्रों की व्याख्या करने वाला ...			तैत्तरेय ब्रा०
ऋगवेद	...	...	... ...	ऐतरेय ब्रा०
यजुर्वेद	...	...	... ...	शतपथ ब्रा०
अथर्ववेद	...	...	... ...	गोपथ ब्रा०

३. किस ने और कब बनाए?—एक २ ब्राह्मण एक २ ऋषि का नहीं बना हुआ, परन्तु अनेक ऋषियों ने भिन्न २ समयों में इन में से एक २ ग्रन्थ की पूर्ति की है। तैतरेय और शतपथ के सम्बन्ध में तो यही कथन पूर्ण तया ठीक होगा। यद्यपि कईओं का विचार है कि उन्हें भी एक २ ऋषि ने जैसे तित्रि और याज्ञवल्क्य ने रचा है, जब ऐसी अवस्था हो तो अमुक ब्राह्मण ग्रन्थ कब बनाया गया, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। हमारी सम्मति में तैतरेय ब्राह्मण के कतिपय स्थल सब से पुराने हैं, फिर ऐतरेय और शतपथ के, और गोपथ तो बहुत ही आधुनिक प्रतीत होता है। ब्राह्मणों के पढ़ने से स्पष्ट विदित होता है कि इन के पहिले अन्य ग्रन्थ विद्यमान थे, नहीं तो श्लोक, अनुश्लोक तथा गाथाएं तो अवश्य थीं, पुनः अपने २

समय तथा सम्मति के अनुसार यज्ञों की रीति तथा फलों के विवाद को खण्डन मण्डन से समाप्ति पर इन ब्राह्मणों में पहुंचाया गया है—इन बातों से एक परिणाम तो स्पष्ट है कि वेदों की सत्य शिक्षा के बहुत ही पीछे इन ग्रन्थों का निर्माण हुआ ॥

ऐतरेय ब्राह्मण—अब हम कतिपय मोटी २ युक्तियों से ऐतरेय ब्राह्मण के समय का निरूपण करते हैं :—

(१) ऐतरेय ब्राह्मण में कुरुक्षेत्र का वर्णन है जिसे पुराणों के कथनानुसार राजा कुरु ने बनाया था जोकि कुरुक्षेत्र के युद्ध से ३०० वर्ष पूर्व हुआ था ।

(२) सहदेव के पुत्र राजा सोमक का सोम के स्थान पर सुरा पिलाई गई, क्योंकि सोम उस समय प्राप्त नहीं हो सकती थी । यह सोमक भीष्मपितामह के पिता शन्तनु का समकालीन राजा था, अर्थात् युद्ध से ५० वर्ष से पूर्व की घटना का वर्णन है ।

(३) सोम के पश्चात् भी कतिपय राजाओं ने सोम के स्थान पर सुरा पी, वह उस के पश्चात् के राजाओं के उदाहरण होने चाहिऐं—इस कारण युद्ध के आस पास इस ब्राह्मण के कई स्थलों का समय रख सकते हैं नहीं तो बाकी के भाग अतिप्राचीन समय की सभ्यता के दर्शक हैं जो श्रीराम से भी पूर्व की प्रतीत होती हैं जैसे राजा हरिश्चन्द्र की कथा से ज्ञात होगा ।

शतपथ का समय—(१) कुरुक्षेत्र के वर्णन में आया है कि देव और ऋषि यहां यज्ञ करते थे-यह शब्द इस ब्राह्मण के कतिपय स्थलों को महा युद्ध से बहुत पीछे का ठहराते हैं (२) अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय परिक्षित तथा उस के तीन भ्राताओं-भीमसेन उग्रसेन, श्रुतसेन के भी नाम अश्वमेध यज्ञ करने वालों में आये हैं (३) राजा धृतराष्ट्र का भी नाम उन्हीं में है (४) ताण्डय ऋषि की सम्मति दी है इस से शतपथ ब्राह्मण तैत्तरीय ब्राह्मण से पीछे का बना हुआ निश्चित होता है (५) विदित है कि सोम का पान छूट चुका था और सुरापान यज्ञों में प्रचलित हो गया था, यह एक अति प्राचीन जाति का दृश्य नहीं हो सकता (६) ब्राह्मणों की अनुचित प्रतिष्ठा मालूम होती है जो कि प्राचीन पद्धति के सर्वथा विरुद्ध है। उस में लिखा है कि ब्राह्मण की रक्षा लोगों को चार प्रकार से करनी चाहिए-मान से, दान से उन पर होते हुए अत्याचार से रक्षा तथा प्राण दण्ड से रक्षा (७) स्त्रियों के बारे में बहुत घृणित शब्द आते हैं,यह वाम मार्गियों के समय का दृश्य है। इस प्रकार हमारी सम्मति में शतपथ के कुछ भाग कुरुक्षेत्र युद्ध के पश्चात् बनाए गये हैं और वाममार्गियों ने भी उस में कुछ अपने मन की मिलावटें की हैं। (८) अन्तिम परन्तु आवश्यक युक्ति यह है-पण्डितों में अब तक प्रसिद्ध है और एक उपब्राह्मण में भी यह घटना मिलती है कि

शतपथ का नायक ऋषि याज्ञवल्क्य व्यास का शिष्य था। व्यास तैत्तरेय ब्राह्मण की शैली को उचित समझते थे, याज्ञवल्क्य सर्वदा उस शैली के विरुद्ध बोलते थे। निदान गुरु शिष्य में बहुत भेद हो जाने से याज्ञवल्क्य पृथक हो गये और इन्हों ने शतपथ ब्राह्मण रचा। स्पष्ट हुआ कि महायुद्ध के पीछे शतपथ लिखा गया था। इस के कई भाग युद्ध के कई सौ वर्ष पीछे के भी प्रतीत होते हैं, इस कारण हम ने ब्राह्मणों का समय २००० से १२०० ई० पू० रक्खा है॥

८—आज काल ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण अति प्रसिद्ध हैं, अतः केवल इन दो में से आर्य्य सभ्यता दिखाई जाती है। ऐतरेय में वर्णित भिन्न प्रकार की राज्य संस्थाएं यह हैं:-(१) प्राचीन समय की गाथा बताते हुए आर्यावर्त के पूर्व गंगा यमुना के द्वीप में भारत जाति का निवास बतलाया गया है। इस के राजा सम्राट कहलाते थे, अर्थात् कतिपय राजा इन के अधीन थे—इस समय में आर्यों की शक्ति के केन्द्र गंगा यमुना के भिन्न उपजाऊ प्रान्त हो गये थे।

(२) मध्य में उस समय तीन जातियां रहती थीं—कुरु पंचाल वाश, उशीनर। इन के अधिपति राजा की पदवी धारण करते थे, सम्भव है कि यह पूर्वीय सम्राटों के आधीन हों क्योंकि अन्य

किसी आधीन जाति का नाम नहीं मिलता—यह जातियां सिन्धु से गंगा तक के सारे इलाके में रहती होंगी।

(३) पश्चिम के निवासी स्वतन्त्र राज्य वा स्वराज्य करते थे। पश्चिम से अभिप्राय यहां सुराष्ट्र [गुजरात] सिन्ध, सिन्धु और अफ़ग़ानिस्तान के मध्यवर्ती इलाकों से होगा।

(४) दक्षिण में आर्य्यजाति ने अभी तक निवास नहीं किया था, परन्तु उन को वहां का कुछ २ ज्ञान था,—हम देख चुके हैं कि आर्य्यजाति का फैलाव दक्षिण में शनैः २ होता है, ऐतरेय में दक्षिण के राजाओं को भोज्य मनुष्य और पशु कहा जाता है अर्थात् यहां के लोग भोगी और असभ्य थे, परन्तु उन्हें कृषि का ज्ञान अवश्य था, क्योंकि कहा है कि उन के हां गेहूं की फ़सल उत्तर की अपेक्षा शीघ्र होती थी॥

(५) अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिवा आदि जातियों का भी भारत में निवास था—सम्भव है कि यह बंगाल और उड़िया देशों के रहने वाले लोगों के नाम हों।

(६) इस प्रकार भारतवर्ष में प्रजातन्त्र राज्य का वर्णन है परन्तु हिमाचल के पार उत्तर कुरु और उत्तर मद्र में विना राजा के प्रजा का अपनी ओर से ही राज्य होता था।

(७) यह कहना भी उपयोगी होगा कि पश्चिम में गिरने वाली नदियों का ज्ञान भी इस ब्राह्मण के लेखक को था। इस

प्रकार बंगाल और पूर्वीय हिमाचल से सुराष्ट्र, सिन्धु, अफ़गानिस्तान तक और तुर्किस्तान से दक्षिण तक के इलाके का थोड़ा बहुत ज्ञान होना सम्भव प्रतीत होता है। इस सारे देश में प्रजासत्तात्मक समराज्य, एक सत्तात्मक, स्वेच्छाचारयुक्त एक सत्ता का राज्य और सुरक्षित राज्य (Protectorate) के अपूर्ण दृश्य दिखाई देते हैं जिन में कम से कम १२ बड़ी जातियां राज्य कर रही थीं। वङ्ग वासियों और दाक्षिण निवासियों को घृणा की दृष्टि से देखा गया है इस कारण यह विचार अशुद्ध न होगा कि पारस्परिक युद्ध भी होते होंगे। ऐतरेय ब्राह्मण का यह सारा वर्णन कुरुक्षेत्र युद्ध से बहुत प्राचीन समय का प्रतीत होता है।

५—संग्राम कुशलता—ब्राह्मणों के समय के आर्य्यों के पास युद्ध करने के लिए प्रशंसनीय सामान मौजूद थे, जैसे कि पंखों से सज्जित तीक्ष्ण लोहे की नोक वाला दीर्घ तीर, और यम के समान घातक वज्र जो फ़ौलाद का बना होता था। ऐसे प्राचीन समय में फ़ौलाद का ज्ञान होना आर्य्यों की उच्चता दिखाता है। फ़ौलाद के अभेद्य कवच, शल्य, नेज़े, कन्धों की ढाल, पीठ की ढाल, छाती की ढाल, जंघा की ढाल, जानु की ढाल जो कच्छुए के समान कठोर होती थी, प्रयुक्त की जाती थीं। कवच धारण किए हुए रथों पर चढ़ कर युद्ध में आर्य्य लड़ते थे। दीवारों वाले दुर्गों का वर्णन आया है जिन के बाहिर खाई होती थी और

नगरों की रक्षा के लिए भी दीवारें होती थीं, इस प्रकार तोप बन्दूकों के पूर्व जो युद्ध विद्या में उन्नति संसार ने की हुई थी वह हमें धार्मिक काल में इन्हीं दो तीन पुस्तकों से मिलती है जिन का कदापि यह विषय नहीं कि वह युद्ध के सम्बन्ध में हमें कुछ बतावें।

(६) **ग्रहस्थ जीवन**—उस समय के आर्य्यों का जीवन अत्यन्त सादा होता था, वह 'सादा जीवन और उच्च विचार' के सिद्धान्तानुसार जीवन व्यतीत करते थे। सच्च पूछिये तो बाहर के जीवन के सामानों में तो उस समय के आर्य्यों का यहां के आधुनिक हिन्दुओं के जीवन से कोई बड़ा भेद न था, बड़ा भेद धर्म परायणता का था, राजा से कृषक तक अपने जीवन का उद्देश्य बहुत प्रकार के यज्ञ करने में समझता था जिन की मोटी गणना दश अङ्क में देखो। प्रातःकाल मुर्ग़ की बांग से पूर्व प्रार्थना करने की आज्ञा दी है जिस से पता लगता है कि उस प्राचीन समय में भी इस प्रातःकाल उठने वाले पक्षी से लोग शिक्षा लेते थे। कुप्रसिद्ध आदमी को वमन किए हुए पदार्थ के समान निन्दित समझते थे। सवारी तथा रथों के लिये घोड़े सिखाये जाते थे, खच्चरों और घोड़ों को भार वाहन के लिये प्रयुक्त करते थे। गौओं की प्रतिष्ठा करते थे, उन्हें वर्ष में एक दिन जैसे आज कल भी गोकुलाष्टमी के दिन किया जाता है, सुशोभित करते थे घुड़दौड़ और खच्चरों

(७)–साधारण सभ्यता–राज मार्ग, मध्यपथ और कई प्रकार के अन्य पथों का वर्णन आता है, इस लिये व्यापार की दशा अच्छी होगी, सोने चांदी की आधिक्यता प्रतीत होती है क्योंकि यज्ञ पात्र प्रायः इन्हीं धातुओं के बने होते थे। यद्यपि यह धातु सिक्के के तौर पर प्रयुक्त होते थे तथापि वस्तुओं का विनिमय भी किया जाता था जैसे गौओं के बदले पहाड़ियों से सोमलता का खरीदना। मार्गों पर निषादादि लुटेरे व्यापारियों को लूटा भी करते थे॥

(८) शिल्प की वृद्धि भी काफ़ी थी–उत्तम, नवीन तथा चकित करने वाले पदार्थों के बनाने के लिये शिल्प मन्त्र कहे जाते थे–हाथी के ऊपर बिछाने वाले सिलमे सितारे के वस्त्र, सोने की तारों से बुने हुए आसन, चान्दी के पत्तों से साज्जित रथ, पुरोहित के बैठने के लिये सोने की तारों वाला वस्त्र, ऐसे सुन्दर वस्त्र जिन के सिरों पर कलबत्तू लगा हुआ हो और ऐसे वस्त्र भी जिन में तीन स्थानों में यह सिलमा सितारा लगा हो–इन सब बातों को पढ़ने से हमें प्राचीन शिल्प की अवस्था का बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है परन्तु साथ ही सोने से जड़े दान्तों वाले हाथियों और कण्ठ में विविध प्रकार के आभूषण धारण करने वाली दासियों का ब्राह्मणों को दान में देने का वर्णन आया है। अतः जहां इतनी आर्थिक उन्नति थी वहां दासत्व की घृणित

रीति भी उपस्थित थी जो कि सभ्य जगत् से केवल नाम मात्र में १८६६ से ही बन्द हुई है॥

ज्योतिष का प्रचार—बहुत प्रतीत होता है। यज्ञों के करने के लिये पूर्व ही से तिथियों और दिनों के निश्चित करने की आवश्यकता थी इस कारण ज्योतिष का उन्नत करना स्वाभाविक था—परिणाम यह हुआ कि उस अति प्राचीन समय में आर्य्यों ने उन सत्यताओं को ढूण्ढ निकाला जिन में कि यूरुप १५ वीं शताब्दी तक विश्वास न करता था बल्कि गैलीलियो और कोपर्नीकस जैसे महाशयों को घोर दण्ड दिया जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण के पृ० ४४में कहा है कि सूर्य्य अस्त और उदय नहीं होता जैसे कि लोगों का खयाल है, बल्कि भूमी के भ्रमण से उस का जो पृष्ठ सूर्य के सामने होता है वहां दिन होता है और जो आर्ध भाग दूर होता है वहां रात्रि होती है। भूमि को सर्पराज्ञी की पदवी दी है जो कि घूमने वाले लोकों में मनुष्य के रहने के कारण सब से श्रेष्ठ है—अर्थात् भूमि किसी शेषनाग पर या बैल के सींग पर स्थिर नहीं है, परन्च सर्वदा चल रही है॥

वर्ष ३ प्रकार के प्रचलित थे—३५४ दिनों, ३६० दिनों और ३६५ दिनों के। इन की अशुद्धि दूर करने के लिए १३ वां मल मास था, अर्थात् कुछ वर्षों के पश्चात् कुछ दिनों की वृद्धि की जाती थी। यह तरीके संसार में अब तक प्रचलित हैं—अतः कम

से कम ४ सहस्त्र वर्षों से इन विषयों में जगत् ने कोई विशेष उन्नति नहीं की॥

(९) महाभिषेक—शतपथ तथा ऐत्तरेय ब्राह्मणों में राजा के महाभिषेक की रसम समान है और वह बड़ी विचित्र है। जहां उन से प्रजा तन्त्र राज्य प्रकाशित होता है वहां दृढ़ता पूर्वक यह विश्वास भी होता है कि इस रसम में भी संसार ने अब तक कोई विशेष उन्नति नहीं की। प्रत्युत उसी रसम को स्वभावतः परम्परा से पूर्ण करते आते हैं। महाराजाधिराज बनने की इच्छा-वाला राजा चिर जीवन, स्वतन्त्रता और प्रजा पर स्वत्व जमाने की प्रार्थना के मन्त्र पढ़ कर सिंहासन पर बैठता था॥

इस प्रकार बैठ चुकने पर पुरोहित उसे राजा उद्घोषित करते थे और कुछ ऐसे शब्द कहते थे कि 'एक क्षत्रिय उतपन्न हुआ है जो सम्पूर्ण जगत् का मालिक है, जो शत्रुओं का घातक है, जो रिपुओं के दुर्गों को भंग करने वाला है, जो असुरों का घातक है, जो ब्रह्म और धर्म का रक्षक है'। इसी घोषणा से विधि पूर्ण नहीं होती थी—राजा की सब प्रकार की उपरोक्त विभूतियां उस से छीन ली जा सक्ती थीं यदि वह प्रजा वा ब्राह्मणों को हानि पहुंचावे। इस कारण राजा को विशेष शब्दों में प्रण करनी पड़ती थी कि वह कभी हानि नहीं पहुंचावेगा,

यदि पहुंचावे तो उसे राज्य से च्युत कर दिया जावेगा। फिर यह शपथ भी पर्याप्त न समझ कर उस की पीठ पर दण्ड मारा जाता था कि यदि वह अपने शासन में अपराध करेगा तो उसे भी दण्ड दिया जा सकेगा। वह आधुनिक यूरपी महाराजाधिराजों के समान अदण्डनीय न था, परन्तु धर्म-बल प्रधान की न्याईं दण्डनीय था। परन्तु नियम कुछ नहीं करते जब तक कि प्रजा में उत्साह न हो। परिमित शक्ति का राजा स्वेच्छाचारी हो सकता है जब कि प्रजा उस के कामों पर ध्यान न दे और नियमों के उल्लंघन करने पर उस से क्रोध प्रकट न करे, अतः उपरोक्त शुद्ध नियमों के होते हुए भी हम कुछ नहीं कह सकते कि प्रजा पर वास्तविक राज्य कैसे होता था।

१०—शतपथ ब्राह्मण—यजुर्वेद के मन्त्रों से कर्म काण्ड निकालने वाला शतपथ ओर विस्तृत ग्रन्थ है। बड़े विस्तार से यज्ञ कुण्ड बनाने, अग्न्याधान तथा अग्निचयन करने की विधियां दी हैं, साथ ही पिण्ड पितृयज्ञ, आग्रहायणेष्टी, चातुर्मास्य, दर्श पौर्णमासी, सौत्रामणी, वाजपेय, अश्वमेध, राजसूय, नरमेध तथा पुरुषमेध आदि यज्ञों का वर्णन है॥

आर्थिक सभ्यता—आर्थिक सभ्यता यहां हैं क लोग से नहीं दिखायी जा सकती, केवल कतिपय पदार्थों के नाम ही यहां मिल देते हैं जिन से सभ्यता की अवस्था ज्ञात हो जाती। सोना, चांदी के बर्तन, भूषण, स्थूल तथा शीशे और कांसे के हार।

पर स्वर्ण के पत्र, मोतियों की माला, गले के हार तथा बालों में लगाने के लिये सुगन्धिदार तैल, ऊन रेशम कपास के उत्तम वस्त्र जिन में सोने चांदी की तारों से शिलपकारी भी की हुई थी, और जिन्हें विदेशों में भी भेजा जाता था। सीसे, लोहे तथा सोने के सिक्के, भिन्न २ प्रकार के १७ रङ्ग, गौ और घोड़ों की रथें, कूप, तालाब, सरोवर, जहाज़, परकोटा और खाइयों वाले दुर्ग, लुहार, तरखान, कारीगर, घटकार, कलाकार : तीर, धनुष, तांत, रस्सी और टोकरे बनाने वाले कारीगर, सारथी, पीलवान, रत्नकार, सुवर्णकार, चित्रकार, सूचीकार, सुराकार, रङ्गरेज़, व्यापारी गन्धी, चमार, तलवार बनाने वाले शिल्पी तथा म्यान बनाने वाली स्त्रियां, ज्योतिषी, वैद्य, जादूगर स्त्रियें, मागध, सूत, वैतालि, पुंसाल्ल, नट, गायक, वीणा बजाने वाले, लकड़ी पर नाचने वाले इत्यादि का भी वर्णन आया है, यह सब प्राकृतिक सभ्यता के सूचक हैं।

११.—स्त्रियों की स्थिति—स्त्री को अर्धाङ्गिणी, श्री और लक्ष्मी कहा है। घोर अपराध करने पर भी स्त्री का घात करना सर्वथा निषिद्ध है। जहां गृहकार्य्य में स्त्रियां कुशल होती थी, वहां ऊन तथा सूत कातने का काम भी करती थीं। तलवारों का कोश बनाना, टोकरे बनाना तथा मन्त्र जन्त्र की भी कुछ विशेष बातें जानती थीं, परन्तु आर्य्यों के गिरावट वाले विचार उपस्थित है, जिन के कारण भी हम ने शतपथ ब्राह्मण को महाभारत युद्ध के पीछे रक्खा था: (क) बहु स्त्री विवाह का बार बार वर्णन आया

हैं (ख) स्त्री, शूद्र, कुत्ता और कौआ यह चार असत्य हैं. यज्ञ कर्ता इन को न देखे (ग) स्त्री के साथ कोई मित्रता नहीं हो सकती। उस का हृदय हिंसक पशु के समान अत्यन्त क्रूर होता है। (घ) परम्परा से स्त्रियों की प्रवृत्ति सांसारिक और व्यर्थ पदार्थों की ओर अधिक होती है इसी लिये जो पुरुष नाचना और गाना बजाना जानता है उस की ओर वह शीघ्र आकर्षित होती हैं ॥

इस प्रकार के घृणित वाक्य स्त्रियों के विषय में इस ब्राह्मण ने प्रयुक्त किए हैं—यह कैसे अति प्राचीन हो सकता है ?

१२—शतपथ के विचार स्वदेशी तथा विदेशी साहित्य में उस के विचारों और अलंकारों को ठीक तौर पर न समझ कर ही उद्धृत किये गए हैं, जिन में से कतिपय उदाहरण मनो-रंजक होंगे जैसे:—

(१) कूर्मावतार, (२) विष्णु का वामन अवतार (३) उर्वशी और पुरूरवा की गाथा। (४) कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति (५) हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति (६) ओलम्पिस पर्वत पर ओसा और इस ओसा पर पेलियन पर्वत असुरों ने बनाकर देवों से लड़ना चाहा—होमर का यह विचार वीवर और कुहन साहबों के अनुसार शतपथ से ही प्रचलित हुआ है (७) अन्तिम परन्तु असाधारण घटना जलप्लावन की है जिस का संक्षिप्त वर्णन

यह है: शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि 'मनु को हाथ धोने के लिये जल दिया गया, उस में एक मछली थी जिस ने मनु को कहा 'मुझे पहले बड़े पात्र में और फिर गढ़े में फिर समुद्र में रख कर पालो तो मैं तुम्हारी रक्षा उस जलप्लव से करूंगी जो सब जीवों को बहा ले जावेगा, अमुक वर्ष में वह जलप्लव आयगा तब तक एक बड़ी नौका बनाकर मेरी ओर लाना और जब तूफ़ान आने लगे तो बैठ जाना। तब उस तूफ़ान से तुम को बचा दूंगी'। मनु ने उस की शिक्षानुसार कार्य्य किया। तूफ़ान आने पर वह मछली किशती को बड़ी शीघ्रता से उत्तरीय पर्वत पर ले गई।

इस प्रकार मनु बच गए तथा अन्य सब प्राणी जलप्लव से नष्ट होगए। यह नहीं कह सकते कि उक्त कथा उस अन्तिम जलप्लव को बताती है जो लग भग ८००० वर्ष ईसा से पूर्व हुआ अथवा अन्य बहुत सी बातों की भान्ति अलंकार के रूप में कोई गूढ़ बात बताती है। जलप्लव का विश्वास बहुत सी पुरातन जातियों में था॥

जहां महाभारत, अग्निपुराण, विष्णुपुराण आदि में इस का वर्णन आया है वहां मिश्र, चैल्डिया और यूनान के प्राचीन वासी भी जलप्लव की ठीक यही कथा कहते हैं तथा बाइबल और कुरान में भी यही कथा है। वस्तुतः संसार के इतिहास में यह घटना आश्चर्य्य जनक है॥

अध्याय ८

दार्शनिक काल।

इस काल की राजसम्बन्धी प्रसिद्ध घटना भारतवर्ष पर सैमिरैमिस का आक्रमण है किन्तु मानसिक उन्नति इस समय विशेष रूप से हुई, इस कारण इस समय का नाम दार्शनिक काल रक्खा है और इस का सविस्तर वर्णन हम आगे करेंगे॥

I

सैमिरैमिस का भारत पर आक्रमण

ईसा के जन्म से लग भग २०० वर्ष पूर्व असीरिया देश में सैमिरैमिस नामी एक रानी राज्य कर्त्ता थी। संसार में उक्त स्त्री बड़ी ही शक्ति शालिनी, बुद्धिमती विदुषी, उत्साह वती, वीराङ्गना थी। इस के सामने सिकन्दर, महमूद, तैमूर नैपोलियन जैसे विजेताओं का यश भी छाया में पड़ जाता है। यश प्राप्ति और कीर्ति स्थापन उस के लिये साधारण बात थी। स्त्री होते हुए भी बड़े २ दुस्साध्य कार्य्य किये: मीडिया, ईरान, मिश्र आदि देशों को जीता, और बड़े गर्व युक्त नरेशों को अपने आधीन किया। फिर बड़ी धूम धाम से तैयारी करके स्वर्ण भूमि भारतवर्ष पर चढ़ाई की। उस की सेना की संख्या एक कोश में यूं बताई हुई है: तीन लाख पैदल, पांच लाख सवार, एक लाख रथ, १००००

कृत्रिम हाथी और सिन्ध नदी को पार करने के लिये दो हज़ार जहाज़ों और नौकाओं का सामान था। यद्यपि इस सेना के अनुमान में अत्युक्ति है–इस बृहत् सेना की सहायतार्थ जितने असंख्य नौकर चाकर होंगे इस का अनुमान पाठक गण स्वयं कर सकते हैं॥

सेमिरेमिस जानती थी कि भारतवासी अपनी सेना का बल हाथियों में समझते हैं। चूंकि उस के देश में हाथी नहीं थे इस लिये उस ने ऐसी विधि निकाली कि उस की सेना इस अंश में न्यून प्रतीत न हो। छः लाख भैंसों की खालों को ऐसा मढ़वाया कि हाथीचर्म जैसा रंग हो गया। उन्हें ऊंटों पर ऐसी रीति से जमाया कि दूर से वे हाथी ही प्रतीत होते थे। पीलवानों को अंकुश समेत उन की गर्दनों पर बिठा दिया और भारत वासियों की भांति कृत्रिम हाथियों पर हौदे आदि भी रख दिये॥

भारत वर्ष उस समय उन्नति के शिखर पर था परस्पर के ईर्षा द्वेष ने भारत को गारत नहीं किया हुआ था। स्वार्थ, देश विद्रोह और फूट ने अपना पदार्पण अभी नहीं किया था। देश जाति धर्म और मान की भक्ति से उत्तेजित होकर भारत वासियों ने उस का खूब मुकाबला किया। उसे सिन्ध के इस पार आने का अवसर दे दिया। फिर पंजाब में एक स्थान पर सत्यव्रत नामी वीर राजा की सेनापतीत्व में ऐसे पराक्रम, आत्म त्याग और देश भक्ति से आर्य्यलोग सेमिरेमिस की अनगणित

सेना से लड़े कि उस के कृत्रिम हाथी इधर उधर भागने लगे। सेमिरेमिस स्वयं घायल हो जाने से एक तेज़ घोड़े पर सवार होकर रण भूमि से भाग निकली। आर्य्यों ने पहिले ही सिन्धनदी का पुल तोड़ डाला था इस लिये सैमिरेमिस की सेना को आर्य्यों ने चुन २ कर मार डाला फिर जो भाग कर सिंध पर पहुंचे और तैर कर पार होना चाहते थे उन्हें भी एक २ करके मारा गया। इस प्रकार सैमिरेमिस की सेना का अधिकांश नष्ट हो गया और वह दीन राज्ञी अपनी सेना का ⅓ भाग ले कर अपने देश में पहुंची। इस जगत विजयिनी राजराजेश्वरी सैमिरैमिस को इस पराजय से इतना धक्का लगा कि इस ने शीघ्र राज पाट छोड़ दिया। भारत वर्ष का यह अद्भुत विजय गर्व जनक तथा उत्साहोत्पादक है॥

II

उपनिषद् ग्रन्थ।

१—उपनिषदों की महिमा—मैक्समूलर, वीबर और गौफ़—भारत वर्ष में जब उपनिषद् लिखे गये तत्काल देश की जो अवस्था थी इस का अनुमान मैक्समूलर साहब के शब्दों से कर सकते हैं।" जब किसी राज्य में सब प्रकार की रक्षा का प्रबन्ध था, जब इस के कतिपय घरानों में धन संचय हो चुका हो,

जब उस देश में विद्यालय और विश्वविद्यालय स्थापित किए गये हों और प्रजा की वैज्ञानिक बातों में साधारण प्रवृत्ति हो चुकी हो—तभी उस देश में वैज्ञानिक उतपन्न होते हैं" जब हम उपनिषदों को देखते हैं तो वह विज्ञान के समुद्र मालूम होते हैं उन्हीं को देख कर उक्त साहिब कहते हैं कि "हिन्दू वैज्ञानिकों की जाति थी," एक अन्य स्थान पर कहा है कि 'अब तक हिन्दु लोग बाज़ारों में विज्ञान की बातें कहते हैं।' हिन्दु फ़िलासफ़ी और व्याकरण को देख कर महाशय वीबर ने कहा है कि 'इन अंशों में हिन्दु बुद्धि ने अद्भुत उच्चता प्राप्त की है,' बल्कि श्लीगल यहां तक बढ़ कर कहते हैं कि 'आर्यों की फ़िलासफ़ी मध्याह्ण के सूर्य्य की अद्भुत प्रभा के समान है यूरुपी विज्ञान उस के सामने एक चंगारा है जो ऐसा कमज़ोर और टमटमाता है कि सर्वदा उस के बुझने का भय रहता है" ॥

२—उपनिषदों का समय—आज कल कम से कम १२० उपनिषद् पाये जाते हैं जिन में से ग्यारह पुरानी उपनिषदों के नाम पूर्व दिये जा चुके हैं। १२०० से ५०० ई० पूर्व तक पुरानी उपनिषदें लिखी गईं—ऐसा प्रतीत होता है। उक्त उपनिषदों का समय क्रम निश्चित हो सकता है जो हमारी सम्मति में यह है

ईश, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, केन, कठ, मुण्डक, प्रश्न, तैतरेय, ऐतरेय, माण्डूक्य, श्वेताश्वतर ॥

३—उपनिषदों में प्रधान विषय—संसारसम्बन्धी जो सूक्ष्म बातें हैं जिन की गवेषणा में विद्वान् लोग अति प्राचीन काल से अब तक लगे हुए हैं और फिर भी सन्तोष नहीं होता—उन का उत्तर इन पुस्तकों में दिया है ॥

हंटर साहब का कथन है कि 'ब्राह्मणों के विज्ञान ने सब सूक्ष्म बातों के सब सम्भव उत्तर दे दिये हैं। निम्न लिखित छः प्रश्नों पर उपनिषदों में विवाद है (I) ब्रह्म क्या है ? (II) आत्मा क्या है ? (III) ब्रह्म और आत्मा का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? (IV) संसार की उत्पत्ति कैसे हुई ? [V] प्रकृति ब्रह्म और आत्मा का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? [VI] मनुष्य के क्या कर्तव्य हैं कि जिन के करने से बारंबार के जन्म मरण के दुःखों से निकल कर मुक्ति को प्राप्त करे ? उपनिषदों ने इन प्रश्नों का जो उत्तर दिया है उसे यहां लिखना असम्भव है किन्तु इन पुस्तकों के विचार अब तक संसार में फैल रहे हैं और डाक्टर डासन का कथन है कि 'आगामी विज्ञान की दृष्टी भारत वर्ष की ओर होगी ताकि वह मुक्ति का सिद्धान्त सीख सके ॥

४–उपनिषदों जैसे विज्ञान के उत्पन्न होने के कारण–

[१] भारतवर्ष की प्राकृतिक अवस्था ऐसी है कि वह मनुष्यों को विचार कोटि में धकेलती है।

[२] यहां आर्थिक दशा भी बहुत उन्नत हो चुकी थी इस कारण बहुत से पुरुषों के पास समय था कि वह उसे उच्च प्रश्नों के हल करने में लगावें।

[३] सहस्रों वर्षों से भारत में सहस्रों प्रकार के यज्ञ हो रहे थे, ब्राह्मणों ने एक एक दिन में कई यज्ञ कराके लोगों को तंग कर दिया था [४] समय व्यतीत होने से यज्ञों के ठीक अर्थ और उपयोग ब्राह्मण लोग भूल गए थे। शनैः २ लोगों को वह भ्रम मूलक और व्यर्थ प्रतीत होने लगे (५) फिर यज्ञों में मांस का प्रयोग भी बल पूर्वक था–बुद्धिमान लोगों के हृदयों में यह भाव समा गया कि यज्ञ व्यर्थ हैं, इन के द्वारा इस लोक में तथा परलोक में सुख नहीं मिल सक्ता। कोई अन्य साधन सुख की प्राप्ति के होने चाहियें, उस साधन की खोज में वह लोग मग्न हो गए।

ब्राह्मणों को यह नवीन विचार बुरे ज्ञात हुए परन्तु जब यह मन्त्र लहर चल पड़ी तो ब्राह्मणों जैसी चतुर श्रेणी ने अपने हाथों से शक्ति जाते देख शीघ्र नवीन सिद्धान्तों की ओर ध्यान दिया। बृहदारण्यक और छान्दोग्य जैसी पुरानी उपनिषदों से

पता लगता है कि क्षत्रियों ने ब्राह्मणों को ब्रह्मविद्या सिखाई। इस के पांच उदाहरण यहां दिये जाते हैं :—

[१] महाशाल, महा श्रोत्रिय पांच गृहस्थी अरुणि के पुत्र उद्दालक ऋषि के पास गए और उस से ब्रह्म और आत्मा का ज्ञान पूछा। "ऋषि ने अपने आप को उन के प्रश्नों के उत्तर देने में अशक्त समझकर कहा कि तुम लोग अश्वपति राजा के पास जावो-वह तुम्हें यह शिक्षा दे सकेगा" वह अश्वपति राजा के पास गए और शिक्षा प्राप्त की।

२—राजा जनक—ने कई ब्राह्मणों को बल्कि याज्ञवल्क्य ऋषि तक को भी शिक्षित किया।

३—राजा प्रवाहण—ने जनक और अश्वपति की भान्ति कतिपय ब्राह्मणों को ब्रह्म विद्या सिखाई॥

४—राजा अजात शत्रु ने भी वही कर्म किया, बल्कि जब कई ब्राह्मण उस से शिक्षा लेने आये तो उस ने कहा "यह ब्राह्मणों के तेज के विरुद्ध है कि वह क्षत्रियों से ब्रह्म विद्या प्राप्त करने के लिये शिष्य बनें तथापि मैं आपको शिक्षा दूंगा"।

५—गौतम ऋषि जब प्रवाहण राजा का शिष्य बनकर शिक्षा प्राप्त करने गया तो राजा ने कहा "आप भली भान्ति जानते हैं कि पूर्व काल में यह ज्ञान किसी ब्राह्मण के पास न

था। तथापि मैं आप को शिक्षा दूंगा क्योंकि आप जैसे वक्ता को शिक्षा देने से कौन इन्कार करे ?"

५—उपनिषदों की शिक्षा का विदेश में प्रचार—इतिहास के लुप्त होने से इस विषय पर पूरा प्रकाश नहीं पड़ता किन्तु कुछ रोचक बातें यहां बताई जाती हैं: (1) ईसाई तथा मुसलमान मानते हैं कि सब से पहिले परमात्मा ने सब तत्वों को इकट्ठा करके एक पुतला अपने रूप का बनाया—उस में जान फूंक दी, वह मनुष्य आदम था। हव्वा नामी नारी उसकी पसली से उत्पन्न हुई। आदम ने सब जानवरों के नाम रक्खे। ईश्वर ने छै दिनों में यह जगत रचा, फिर थक कर सातवें दिन आराम किया॥

उक्त सब विचार उपनिषदों के अर्थों को ठीक न समझ कर यहूदियों ने बाईबल नामी पुस्तक में लिखे—आदम को संस्कृत में आदिप (प्रथम पुरुष—प्रजापति) कहते हैं: बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि 'प्रजापति ने अकेला होने के कारण सुख अनुभव न किया। वह सुखदायक साथी चाहता था, तब उसने अपने दो भाग किये—वह पति पत्नी थे जैसे मटर के दो पाट होते हैं—सत्य है स्त्री से ही आकाश की पूर्ति होती है। दोनों ने परस्पर संयोग किया और मनुष्य पैदा हुए। कुछ काल बीतने पर स्त्री ने विचारा कि मुझे प्रजापति ने स्वयं ही पैदा करके

स्वपत्नी बना लिया, लज्जा के मारे वह गौ बन गई, प्रजापति ने बैल बन कर बछड़े पैदा किये - इस प्रकार सब पशु-घोड़े, बकरी, गधे, कीट, पतंगों तक पैदा हुए। एक अन्य स्थान पर लिखा है-

"भूमि पैदा हो गई-उस के उत्पन्न होने पर प्रजापति थक गए"।

ऐतरेय उपनिषद् में लिखा है: प्रजापति ने इच्छा की" आओ इस लोक पैदा करें" तब पृथिवी आदि यह लोक पैदा कर दिये। फिर उस ने विचार किया कि लोक तो उत्पन्न कर लिये, अब लोक पाल उत्पन्न करने चाहियें। जिस पर मनुष्य रूपी एक पुतला जल में से निकाला। देवताओं ने-जब उन्हें पशु दिखाए गये उन्हें पसन्द न किया किन्तु जब प्रजापति ने मनुष्य दिखाया तो वह बोल उठे "सुकृतम बतेति"-वस्तुतः यह बहुत सुन्दर बना हुआ है।

लौट कर यूनान में प्रसि वैज्ञानिक बने'। इस कथन की पुष्टि करने वाले अन्य बहुत विद्वान हैं जैसे श्लीगल, प्रिंसप, मानियर विलीयमज़, विलसन आदि। भारतवर्ष में भी सांख्य और वेदान्त दर्शन के कर्ताओं ने और बौद्ध मत ने इन उपनिषदों से सहायता लेकर अपने सिद्धान्त बनाए। यहीं तक उपनिषदों की महिमा का अन्त नहीं। संसार के विज्ञान फैलाने में उपनिषदों ने बहुत भाग लिया है जिस प्रकार बौद्धों के धर्म शास्त्र सैंकड़ों की संख्या में चीनी भाषा में उलथा किये गये वैसे ही उपनिषदें कई भाषाओं में अनुवादित हुई। औरंगज़ेब के बड़े भाई दारा ने पचास उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद कराया, फ़ारसी से एक इटली निवासी डूपेरान ने १८०१-०२ में लातीनी भाषा में उन का अनुवाद किया। वह उपनिषद् जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिक शौपनहार जर्मनी निवासी ने पढ़ीं और उन्हीं के आधार पर अपनी प्रसिद्ध वैज्ञानिक पुस्तकें लिखीं, फिर संसार विख्यात कैन्ट महाशय ने उपनिषदों को पढ़ा और उन के मायावाद को साइन्स द्वारा सिद्ध किया, सिपिनोज़ा और हीगल महाशयों की फ़िलासफ़ी भी उपनिषदों से मिलती है इस प्रकार जिन पुस्तकों पर पुरातन यूनान और आधुनिक युरुप घमंड करता है वह उपनिषदों के आधार पर है या उन के विचार उपनिषदों के समान हैं। डफ साहब ने कहा है, 'हिन्दुओं का विज्ञान ऐसा विस्तृत है कि

गुरुपी विज्ञान के सब अङ्ग वहां मिलते हैं" शोरहसूकर कहते हैं 'उपनिषदों में सब फिलासफी के बीज हैं" काउन्ट जानसरजन कहते हैं, 'यह सब बातें हिन्दु फिलासफी में ऐसी स्पष्ट पाई जाती हैं जैसी कि हमारी आधुनिक फिलासफी में" किन्तु स्मरणीय है कि हिन्दु फिलासफी को लिखे ३००० वर्ष से भी अधिक हो चुके हैं। एक अन्य स्थान पर यही काउन्ट लिखते हैं कि "यूनान और रोम के विज्ञानिकों से हिन्दु विज्ञानिक बढ़े हुए थे"। इस प्रकार भारती विज्ञान का यह शुद्ध सरोवर था जहां पर यूनान, रोम मिश्र, जर्मनी निवासियों ने आकर विज्ञान के अमृत पान से अपनी पिपासा दूर की और आनन्दित होकर उस अमृत जल को अपने देश निवासियों में बांटा। प्राचीन आर्य्यों ने सत्य विज्ञान का प्रकाश ढूंढा और उसे द्वीप द्वीपांतर में प्रचलित भी किया। भारती लोग उपनिषदें नहीं पढ़ते। सत्य है जो अमूल्य वस्तु घर में उपस्थित हो उस का मान कम होता है किन्तु याद रहे कि थोड़े वर्षे तो गड्ढ़ों का राज्य होगा॥

६—उपनिषदों में एक परमात्मा की पूजा तथा उस की प्राप्ति के साधन—उपनिषदों के कतिपय वाक्यों में समुद्र को प्याले में बन्द किया गया है—थोड़े शब्दों में अति गूढ़ भाव जैसे इन पुस्तकों में मिलेंगे वैसे संसार की किसी अन्य पुस्तक

में कठिनता से पाए जावेंगे "जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध वत गोचर नहीं, जो नाशवान् नहीं, जो सदा बना रहता है, जिस की न आदि न अन्त, जो अति महान्, और अति स्थिर है-ऐसे ईश को जान कर मनुष्य मृत्यु के मुख से बचता है"। "परमात्मा को उस के जानने वाले अविनाशी कहते हैं। उस का न स्थूल शरीर है न सूक्ष्म; वह न लम्बा है न चौड़ा, न लाल है, न पीला; न द्रव है न ठोस, न अन्धकार है न दीप्तिमान; न लेसदार है न स्वादु; न गन्ध है न नेत्र न कान है न शब्द है; न मन है न ज्योति; न भीतर है न बाहर, न उस का कोई भक्षक न वह किसी का भक्षक है, उस की आज्ञा से चन्द्र और पृथ्वी अपने स्थान पर स्थित हैं, उसी के द्वारा घड़ी पल, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष रूप अपने २ स्थान पर स्थिर रहते हैं"।

जिस प्रकार इस लोक का नेत्र रूपी सूर्य्य मनुष्यों के नेत्रों में दोष होने से दोष युक्त नहीं होता वैसे चराचर जगत् में व्यापक ईश लोगों के दुःखों और दोषों से युक्त नहीं होता। वह निर्लेप है। उक्त परमेश्वर केवल बहुत पढ़ने सुनने और तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा प्राप्त नहीं होता बल्कि साथ ही तप, दम, कर्म, और सत्याचरण की भी आवश्यकता होती है। इन के द्वारा जब सूक्ष्म बुद्धि हो जाती है तब उस दयालु दे दीप्यमान प्रभु के दर्शन हो सक्ते हैं।

७—उपनिषदों में विद्या विस्तार—जिस उच्च कोटी की अध्यात्मविद्या का प्रमाण उपनिषद् देती हैं उसका वर्णन पूर्व किया जा चुका है। अब नमूने के तौर पर कुछ विद्याओं के नाम दिए जाते हैं जो कि उस समय तक अवश्य बढ़ चुकी होंगी।

(क) बृहदारण्यक तथा छान्दोग्य अति प्राचीन उपनिषदें हैं—इन में बहुत विद्याओं के नाम हैं। छान्दोग्य में नारद ऋषि सनत्कुमार राजर्षि के पास अध्यात्म विद्या सीखने को जाते हैं और गुरु को कहते हैं कि मैं ने निम्न लिखित विद्यायें पढ़ी हैं।

आधिदैविक दुःखों के निवारण का शास्त्र तथा जातीय विद्या (Sociology)॥

(ख) मुण्डकोपनिषद् में लिखा है कि विद्या दो प्रकार की होती है, अपरा तथा परा। अपरा विद्याएं यह हैं—चार वेद शिक्षा, कल्प (यज्ञ क्रियाओं का उपदेश करने हारी विद्या) व्याकरण, निरुक्त, छन्द (पद्य)–(Prosody) ज्योतिष। परा वह अध्यात्मविद्या है जिस से नाश न होने वाले अमर ब्रह्म की प्राप्ति होती है॥

८—धार्मिक जीवन—उस समय के आर्य धर्म कर्म में लगे हुए थे, दुराचार, अत्याचार, असत्याचार, व्यभिचार तथा चोरी चकारी बहुत थोड़ी थी। कैकेय देश (जहां की रानी कैकयी थी) का राजा अश्वपति पांच ऋषियों को जो उस से शिक्षा ग्रहण करने आए थे–कहता है "मेरे देश में कोई चोर आलसी, शराबी, अविद्वान्, अग्नि होत्र न करने वाला, व्यभिचारिणी स्त्री–इन में से कोई एक नहीं, फिर आपका कैसे पधारना हुआ"? ऋषियों के सामने अध्यात्मविद्या का ज्ञाता राजा झूट नहीं बोल सक्ता था, वस्तुतः उक्त दशा होगी। भारतवर्ष में चोरी नहीं होती थी, रात को द्वार खुले रहते थे–यही बात मैगस्थनीज़ की साक्षि से ज्ञात होगी। (ख) नीचे लिखे पांच मनुष्यों को महापापी समझा जाता था, वह नीच से

नीच योनियों में जाते हैं—ऐसी शिक्षा उपनिषद् देता है। सोना चुरानेवाला, शराबी गुरु की पत्नी से व्यभिचार करने वाला, विद्वान का घातक—और इन चारों का सहचर—अत्यन्त पापी हैं ॥

(ग) फूल के साथ कांटा रहता है—सर्वांश में धर्म नहीं पाया जा सकता। क्योंकि चण्डाल और अति शूद्र लोग अपना शकल दिखाए बिना नहीं रहसके यह लोग अन्य देशों के लोगों को चुराकर भारत में लाते थे जैसा कि छान्दोग्य में दिया है: जब कोई पुरुष गांधार देश से आंखों पर पट्टी बांधकर लाया जाता है और वन में उसे छोड़ दिया जाता है वहां से वह पुरुष स्वयं और जाता हुआ गान्धार का मार्ग ढूंडता है, जैसे कोई दयालु पुरुष उसे गान्धार का मार्ग दिखा देवे वैसे शिष्यों को ब्रह्मविद्या का मार्ग गुरुजन दिखाते हैं ! ॥

आज्ञा से दी जाती थी। यदि उस ने चोरी की होती थी तो असत्य से अरक्षित उस का हाथ जल जाता था नहीं तो किसी प्रकार की हानि सत्य से रक्षित को नहीं होती थी"। आगे चल कर पता लगेगा कि उच्च सभ्यता के साथ २ यह रीति रह सकती है और शुद्ध न्याय करने के लिये इस रीति के बिना निर्वाह नहीं हो सकता। आधुनिक सभ्यता ने अध्यातम विद्या में अभी पग ही रखा है, इस कारण यह सत्य और असत्य की रक्षा से इंकार नहीं कर सकती॥

९.—वहम—यद्यपि निस्सन्देह अधिकांश में सोना ही सोना उपनिषदों में पाया जाता है तो भी उन में वहम रूपी अन्य धातुओं का भी मिलाप है।

(१) बृहदारण्यक में दो बार लिखा है कि "जिस को यह ज्ञान हो जावे उस का शत्रु और भतीजा मर जावेंगे और वह अपने सुनीले भाइयों को मारने वाला होगा"। (२) भारत की विशेष सीमा से बाहिर जाना लोगों के लिये निषिद्ध कर दिया गया है: "इस कारण सीमा देश पर रहने वाले लोगों के मध्य में कोई न जावे। यदि जावेगा तो वह पाप और मृत्यु का भागी होगा"। (३) जब ब्राह्मणों का परस्पर विवाद होता था तो उत्तर न देने वालों को प्रश्न पूछने वाला शाप देता था कि उत्तर न देने पर तेरा शिर गिर पड़े—ऐसे विवाद में याज्ञवल्क्य ऋषि ने

गौओं के सींगों पर सोने के पत्र चढ़ाए जाते थे, स्त्रियां माल ए तथा अन्य भूषण पहनती थीं-सिन्धदेश के घोड़ों को उत्तम समझा जाता था, नीले, पीले सब्ज़, लाल रंगों को प्रायः प्रयुक्त करते थे,।

(२) सोना, चान्दी, सीसा, लोहा, फौलाद, टीन आदि धातुओं के शुद्ध करने की विधियां भी उन से गुप्त न थीं। ग्रामों में कृषक जिन अनाजों को उत्पन्न करते थे उन में से दस के नाम दिए हुए हैं बाकी बहुत अनाज होते होंगे यह हम विचार सक्ते हैं क्यों कि उपनिषद् कुरुक्षेत्र युद्ध के कई सौ वर्ष पीछे लिखी गयीं और महाभारत की सभ्यता बड़ी उच्च थी। चावल, जौ, तिल, माष, ज्वार, मसूर, गन्दम, अलसी, कुल्थी, प्रियङ्गु,। छान्दोग्य में एक बड़ी रोचक बात लिखी है कि चावल के खाने वाले लोग अधिक सन्तान पैदा करने वाले होते हैं-आज कल भी यह अनुभव ठीक है और अष्टाध्यायी में यह बताया है कि चावल खाने वाले विशेष बुद्धिमान् होते हैं॥

(३) भिन्न २ जातियों की धर्म पुस्तकों में यह देखा गया है कि उन के स्वर्ग लोक के वर्णन में उन्हीं पदार्थों का बयान किया है जो कि उन देशों में कम पाए जाते हैं जिन देशों में कि वह जातियां रहती हैं। सत्य तो यह है कि ऐसे स्वर्ग लोक निर्धनियों के वास के लिए रोचक हैं धनी लोग तो यहीं उस प्रकार के स्वर्गों में रहते हैं । कौषीतकि उपनिषद में भी एक

आप भली भान्ति जानते हो कि मेरे पास बहुत धन, गौएं, घोड़े, दासियां, परिवार और वस्त्र हैं, अतः आप के धन दौलत की इच्छा नहीं"। आज कल के हिन्दुओं के रगो रेशे में वेदान्त की लहर चल रही है-संसार को माया और मिथ्या जान कर वह सब कर्म और उत्साह त्याग बैठे हैं। जब तक हिन्दू लोग इस संसार को सत्य न जानेंगे और यहीं वास्तविक सुख की उपलब्धि का यत्न नहीं करेंगे तब तक वह कभी उन्नति नहीं कर सकें॥

१२—स्त्रियों की उन्नत दशा—(क) मैत्रेयी और कात्यायनी। ऋषि याज्ञवल्क्य की दो स्त्रियां थीं-एक का नाम कात्यायनी और दूसरी का मैत्रेयी था। कात्यायनी की गृह सम्बन्धी विविध कार्यों में विशेषरुचि थी परन्तु मैत्रेयी उन्नत चेता, तीव्र बुद्धि और ज्ञान वाली थी। इन दोनों स्त्रियों का मेल मिलाप और भगिनी भाव जगद् विख्यात है। ग्रहस्थाश्रम को त्याग ऋषि वानप्रस्थ सेवन करने के लिए उद्यत हुए-दोनों स्त्रियों को समीप बुला कर उन्हें अपनी सम्पत्ति देने लगे। परन्तु बुद्धिमती विदुषी मैत्रेयी ने ऋषि के वनवास का कारण पूछा। उत्तर मिला कि "परमानन्द की प्राप्ति और असार संसार के दुःखों से छूटने के लिए जाता हूं"। जिस पर मैत्रेयी बोली "हे भगवन्! क्या यह सम्पत्ति जो आप मुझे देना चाहते हैं, कभी परमानन्द की प्राप्ति में सहायता देगी"?

याज्ञवल्क्य—नहीं, कदापि नहीं।

मैत्रेयी—स्वामिन्! यदि मुझे संसार का सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य मिल जाए तो क्या उस परमानन्द की प्राप्ति होगी?

याज्ञवल्क्य—प्रिये! कदापि नहीं, यह धन बन्धन कारी हैं।

मैत्रेयी—आपकी इस दी हुई सम्पत्ति को लेकर क्या करूंगी? क्योंकि इस नाशवान्, भय लोभ तथा चिन्ता उत्पन्न करने वाले धन से क्या लाभ होगा?

याज्ञवल्क्य—मैत्रेयी! फिर तुम क्या चाहती हो?

मैत्रेयी—स्वामिन! मोक्ष का परमानन्द जिन साधनों से प्राप्त हो सकता हो उन्हें आपके मुखारविन्द से सुनना चाहती हूं।

इसपर पति पत्नी में एक दीर्घ विवाद होता है जो अत्यन्त सूक्ष्म और शिक्षा प्रद है। परन्तु वह यहां नहीं दिया जा सका। इस वृत्तान्त से स्त्रियों के ज्ञान की उच्चता मालूम होगी।

(ख) गार्गी और याज्ञवल्क्य—वचक्नी ऋषि की विदुषी ब्रह्म वेत्री कन्या गार्गी के नाम से किसी पाठक को अज्ञानी नहीं रहना चाहिये। यह महा बुद्धिमती देवी याज्ञवल्क्य से अपने समय में दूसरे दर्जे पर थी। राजा जनक ने इस

बात के परीक्षण के लिये कि ब्राह्मणों में कौन अधिक ब्रह्मवेता है: एक वृहत परिषद् स्थापित की। उस में अति रोचक और शिक्षाप्रद विवाद हुए, परन्तु याज्ञवल्क्य ऋषि ने सब को, क्रमानुसार पराजित किया। जब सब ब्राह्मणों ने मौन साध लिया तब सब के सून्न् होने पर एक कमलनयनी, सरस्वती की अवतार रूपी गार्गी देवी ने झट उठकर प्रश्न करने की आज्ञा मांगी। याज्ञवल्क्य प्रश्नों का उत्तर देता गया, परन्तु अन्त में याज्ञवल्क्य ने धत्कार कर कहा "गार्गी! तू परमात्मा के विषय में प्रश्न करती है,जो वाणी में नहीं आसक्ता अब मत प्रश्न कर"। परन्तु गार्गी का सन्तोष न हुआ था वह याज्ञवल्क्य की योग्यता अधिक आज़माना चाहती थी। दूसरी बार सम्वाद करने में सैंकड़ों ब्राह्मणों की परिषद् में जो शब्द देवी ने कहे, वह ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि उनसे उस देवी की अद्भुत बुद्धि और सैकड़ों ब्राह्मणों से उच्चता का पता लगता है गार्गी ने कहा "सन्मान के योग्य ब्राह्मणो! मैं अन्य दो प्रश्न करती हूं, यदि ऋषि ने उत्तर दे दिया तो वास्तव में तुम में से कोई ब्रह्म विषय में याज्ञवल्क्य को परास्त न कर सकेगा। मेरी बात मानो तो इस महा विद्वान् ऋषि को नमस्कार करो" यह कहकर वचक्नी ऋषि की कन्या मौन हो गई।

पाठक गण! उपनिषदों में उक्त दो देवियों का वर्णन है। महाभारत शान्तिपर्व से ज्ञात होता है कि राजा जनक के

साथ एक सुलाभा भृषिका का संवाद होता है परन्तु इस प्रकार की ब्रह्मवेत्री कितनी देवियां थीं-इतिहास के लुप्त होने के कारण कुछ नहीं कह सके॥

III

१.३-दार्शनिक कालमें विदेशीय व्यापार-१००० ई०पूर्वा इतिहास के वेता इस बात से भली प्रकार परिचित हैं कि ऐतिहासिक समय में यूनानियों ने फ़िनिशिया वालों से व्यापार व्यवसाय, कानों का खोदना, भाषा का लिखना और सभ्यता के अन्य भी साधन सीखे थे। और यह भी ज्ञात है कि फ़िनिशिया वाले भारत वर्ष से व्यापार करते थे और उन्हों ने भी अपनी बहुत सभ्यता इसी पुण्य भूमि से सीखी। यूनानियों तथा फिनिशियन्ज़ का संघटन कम से कम ईसा जन्म से दश सौ वर्ष पूर्व हुआ।

ईसा से दश सौ वर्ष पूर्व ही संसार प्रसिद्ध बादशाह 'सुलेमान' और टायर नगर के 'हिराम' बादशाह ने भारत वर्ष में जहाज़ भेज कर यहां से हाथी दांत, चन्दन, बन्दर, मोर, मसाले, सोना, चान्दी, तथा अमूल्य रत्नादि गुजरात निवासी भीर जाति से मंगवाये थे, यह वही जाति है जिस ने कृष्ण का घात किया था।

अफ़्रीका महाद्वीप में मिश्री आर्यों के साथ व्यापार था ही: परन्तु अफ़्रीका के पूर्वीय वर्ती प्रधान नगरों से भी भारत का

व्यापार था जैसा कि हङ्कर साहब लिखते हैं कि 'दक्षिणी अरब की तटवर्ती सेबियन जाति तथा भारत वासियों में ईसा के जन्म के दश सौ वर्ष से भी पूर्व परस्पर व्यापार था'।

५०० ई० पू०—लङ्का द्वीप भी व्यापार के लिये इस समय बहुत प्रसिद्ध था, मालाबार, जावा, चीन, आस्ट्रेलिया और पश्चिम में अरब तथा अफ्रीका के साथ ईसा से ५ सौ वर्ष पूर्व लंका का व्यापार खूब चमका हुआ था और पांचवीं शताब्दि तक वृद्धि पर ही रहा, यह हरनू महाशय की संमति है।

१४—भारतवासी भिन्न प्रकार के जहाज़ बनाकर नदियों तथा समुद्रों द्वारा व्यापार किया करते थे। दस प्रकार के साधारण और १५ प्रकार के असाधारण जहाज़ थे जिन की लम्बाई चौड़ाई और ऊंचाई क्यूबिटस में निम्न लिखित हैं॥

क्षुद्रा—१६×४×४	गत्वरा—८०×१०×८
मध्यमा—२४×१२×१२	गामिनी—८६×१०×९ ३/५
भीमा—४०×२०×२०	तरिः—११२×१४×११ १/५
चपला—४८×२४×२४	जङ्घला—११८×१६×१२ ४/५
पटला—६४×३२×३२	प्लाविनी—१४४×१८×१४ २/५
भया—७२×३२×३२	धारिणी—१६०×८०×१६
दीर्घा—८८×४४×४४	वेगिनी—१७६×२२×१७ ३/५
पत्रपुटा—९६×४८×४८	ऊर्ध्वा—३२×१६×१६

गर्भरा—११२×५६×५६	अनुर्ध्वा—४८×२४×२४
मन्थरा—१८०×६०×६०	स्वर्ण मुखी—६४×३२×३२
दीर्घिका—३२×४×३ १/५	गर्भिणी—८०×४०×४०
तरणि—४६×६×४ ४/५	मन्थरा—९६×४८×४८
लोला—६४×८×६ २/५	

इन्हीं जहाज़ों पर सवार होकर भारतवासी स्वदेशी वस्तुएं अति प्राचीन काल से विदेशों में ले जाते थे। डाक्टर साइस की सम्मति है कि भारत और असीरिया में ३००० ई०पू० से व्यापार था क्योंकि वहां उस काल का भारती सागून खण्डरात में से मिला है।

१५—व्यवसाय की अवस्था—रीज़ डेविड ने छठी शताब्दी ई०पू० की आर्थिक दशा का जो अनुमान अति प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से दिया है उस को संक्षेप से यहां उद्धृत किया जाता है। कृषकों और व्यापारियों के अतिरिक्त १८ पेशों के अन्य लोग थे जिन्हों ने अपनी श्रम समितियां बनाई हुई थीं उनके रसम रिवाज और नियमों को राजा लोग मानते थे, उन के प्रधान राजदरबार में सन्मान के स्थानों पर बिठाये जाते थे और पेशों के सम्बन्ध में जो कार्य्य राजा को करना होता था, वह उनके प्रधानों के द्वारा किया जाता था। समिति में जो झगड़े होते थे उन्हें समिति की प्रबन्ध कर्तृरी सभा फ़ैसला करती थीं परन्तु कई समितियों के झगड़े महा सेठी नामी राज्याधिकारी फ़ैसला करता था।

श्रम समिति वाले पेशों के नाम ये हैं-धातुकार-जो सोना, चांदी, लोहे का अति उत्तम कार्य्य करते थे, पाषानकार (संगतराश)-पत्थरों के प्याले, सन्दूक और चित्रकारी वाले स्तम्भ बनाते थे, जुलाहे—देश विदेश के लिये उत्तम २ बारीक मलमलें और रेशमी वस्त्र तथा ऊनी चादर और कम्बल आदि बनाते थे, चर्मकाल—सिलमे सितारे वाली बहुत क़ीमती जूतियां तथा अन्य वस्तुयें बनाते थे, कुम्हार, हाथी दांत कार—हाथी दांत की वस्तुएं बनाने में बहुत ही शिल्प दिखाते थे, उन की बनी हुई वस्तुए विदेश में बहुत जाती थीं, रंगरेज़-यहां के रंग संसार में पक्काई के लिये प्रसिद्ध थे, शायद फ़िनिशिया वालों ने यहीं से रंग करना सीखा था, सुनार, मछलीगीर, कसाई, शिकारी, पाचक और हलवाई, नाई, मालाकार, मल्लाह, (यह लोग छै छै मास तक समुद्र में रहते थे) टोकरे और चटाइयें बनाने वाले, ओर चित्रकार। व्यापार की वृद्धि के प्रमाण ऊपर दिये जा चुके हैं किन्तु यह आश्चर्य दायक प्रतीत होगा कि उस समय व्यापारियों में हुण्डियां तथा प्रामिसरी नोट चलते थे, उस समय बैंक नहीं थे इसलिये बचा हुआ धन भूषण रूप में या भूमि में दबाकर या किसी सेठ के यहां धरोहर रक्खा जाता था, तब दरिद्रता का भयानक दृश्य नहीं दिखाई देता था, बड़े बड़े भूमिपाति नहीं पाए जाते थे,

भूमि के जोतने वाले भूमि के मालिक होते थे, राजा लोग बड़े बड़े कर लेकर अत्याचार नहीं किया करते थे-इसलिये सब लोग सुख और आनन्द से रहते थे।

III षड्दर्शन

१६-पुरातन वेदादि ग्रन्थों के प्रमाण मानने वाली छै वैज्ञानिक सम्प्रदायें हुई: उन के छै दर्शन शास्त्र प्रसिद्ध हैं—

दर्शन	कर्त्ता	लेखकों का प्रसिद्ध समय
सांख्य	कपिल	३८६३२११ वर्ष हुए
वैशेषिक	कणाद	२१६५२०० वर्ष हुए
न्याय	गौतम	८८६२११ "
योग	पतञ्जलि	६००० "
उत्तर मीमांसा	जैमिनी	५११४ "
पूर्व मीमांसा या वेदान्त	व्यास	५११४ "

१७-दर्शनों की उत्पत्ति—ब्राह्मण ग्रन्थों के यज्ञों के विरुद्ध बहुत लोग हो रहे थे और धर्म विषयक स्वतन्त्रता पूर्वक परस्पर वाद विवाद भी होते थे। उपनिषदों की विस्तृत फ़िलासफ़ी के स्थान पर परिमित सम्प्रदायों का उद्भव होने लगा और अन्त में

ऐसी स्वतन्त्रता बढ़ी कि एक ओर वेद और परमात्मा को मानते हुए आस्तिकों की छैः सम्प्रदायें बनीं ओर दूसरी ओर चारवाकों, जैनियों और बौद्धों के नास्तिक सम्प्रदाय उत्पन्न हुए॥

१८—**छैः दर्शनों का समय निरूपण**—दर्शनों के निर्माण का प्रसिद्ध समय ऊपर बतलाया गया है किन्तु उस में बहुत गपाष्ट भरी है, वह अत्यन्त ही भ्रममूलक है। नीचे के कुछ उदाहरणों से यह कथन स्पष्ट होगाः (क) वेदान्त सूत्रों में कर्ता ने अपने आप को ऋषियों की सूची में रक्खा है। ज्ञात हुआ कि किसी दूसरे ने सूत्रों का संशोधन वा संग्रह करते समय व्यास ऋषि का नाम सूची में लिखा दिया है। उस में कपिल पतञ्जलि, कणाद, गौतम और जैमिनी के सिद्धान्तों का उल्लेख है तथा जैन बौद्ध और पाशूपतों के धर्म का खंडन है। वेदान्त में शतपथ की दो शाखाओं का वर्णन है, इस लिये पहिले शतपथ बना फिर वाजसनेय और काणव शाखाओं का भेद हुआ, फिर चिरकाल तक वाद विवाद होते रहे तब वेदान्त दर्शन बना। इस कारण युधिष्ठर के समकालीन व्यास ऋषि का बना हुआ वेदान्त दर्शन कभी नहीं हो सकता, बल्कि लगभग ३०० ई० पू० का कहना चाहिये। (ख) कणाद ने कपिल का और कपिल ने कणाद का अपने २ शास्त्रों में खण्डन किया है। (ग) सांख्य में वेदान्त और योग के सूत्र मिलते हैं। (घ) लाखों वर्षों का अन्तर होते हुए भी

कणाद और गौतम परस्पर विवाद करते हैं। (७) गौतम ने सांख्य और वेदान्त दोनों पर आक्षेप किये हैं !!

यदि प्रसिद्ध समय ठीक होता तो उक्त विचित्र बातें दर्शनों में न मिलतीं। सत्य यह प्रतीत होता है कि उपनिषदों के समय से ही स्वतन्त्रता पूर्वक भिन्न २ परिषदों में विचार हो रहे थे। विशेष सिद्धान्तों के चलाने वाले ऋषि मुनियों के शिष्यों ने अपने गुरुओं के विचारों को और बढ़ाया, अन्त में उन के वाक्यों को किसी एक समय में संग्रहीत किया। उन में से भी कई पुस्तकें खोई गई जैसे सांख्य दर्शन तिस पर किसी ने नई पुस्तकें बना कर पुराने नाम से प्रसिद्ध कीं-इसलिये इन छै दर्शनों में परस्पर खण्डन मण्डन मिलता है। इनका समय निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु ६०० से २०० ईसा पूर्व में बने हुए मान सकते हैं, इस समय से पूर्व के यह दर्शन प्रतीत नहीं होते। उपनिषदों में जो प्रश्न उठाए गये हैं, जो प्रश्न सब मनन शील पुरुषों के मनों में उठते हैं—परन्तु जिन का उत्तर वे पूर्णतया नहीं दे सकते, उनका उत्तर अपने तौर पर प्रत्येक दर्शनकार ने संतोष जनक दिया है। यद्यपि सांख्य को अनीश्वरवादी और छै दर्शनों का परस्पर विरोध माना जाता है तथापि पंडित विज्ञान भिक्षु ने इन में समानता दिखलाई है और इस की प्रबल युक्तियों का खण्डन करना बड़ा कठिन है॥

१.६—षडदर्शनों की महिमा—इन दर्शनों में उच्च सभ्यता की दर्शक जो शाक्षियां मिलती हैं उनका दिखाना यहां असम्भव है. कई यूरोपी विद्वानों की सम्मतियां दी जाती हैं जिन से उन की महिमा का प्रकाश होगा, न्याय के विषय में श्लीगल लिखते हैं "न्याय एक आदर्श स्वरूप है जिसे ऐसी अनुपम बुद्धि और तार्किक युक्ति के साथ बनाया गया है कि उस उच्चता को यूनानियों ने भी प्राप्त न किया था" ॥

डंकर साहब कहते हैं, "हिन्दुओं की तार्किक गवेषण आधुनिक काल के बनाये यूरूपी न्याय शास्त्रों से कम नहीं है"॥

अलफिनस्टन का कथन है कि तर्क पर ब्राह्मणों ने अनगिनत पुस्तकें लिखीं ॥

वैशेषिक के अणवों के सिद्धान्त में रोअर साहब ने कणाद का मुकाबला यूनानी वैज्ञानिक डिमाक्रीटस के साथ किया है और यूनानी महाशय से कणाद को श्रेष्ट कहा है ॥

सांख्य के विषय में हन्टर साहब ने बलपूर्वक लिखा है कि सांख्य में उत्पत्ति, विकृति तथा विकाश विषयक सिद्धान्त हृत पक्व किये गये हैं और पदार्थ विद्या के आधुनिक विद्वानों के मत उस कापिल के विकास सिद्धान्त की ओर नवीन प्रकाश समेत जा रहे हैं ॥

योग्य शास्त्र के विषय में सम्मति देने की आवश्यकता ही नहीं क्योंकि संसार के किसी अन्य देश में इस योग्य विद्या को अनुभव ही नहीं किया गया। यह भारत की विशेष दायाद है और यही दर्शन संसार को सुख देने का अपूर्व साधन भावी में होगा॥

उत्तर मीमांसा को विज्ञान नहीं कह सकते। यह वेदों और ब्राह्मणों के कर्म काण्ड को युक्ति पूर्वक सूत्रों में संग्रह करने वाला है। विज्ञान का कर्तव्य नित्य तत्वों का ढूंढना है परन्तु वह ज्ञान इस शास्त्र की अवधि में नहीं॥

वेदांत शास्त्र उपनिषदों का निचोड़ है। जो प्रशंसा उपनिषदों की पूर्व की गई हैं वही इस शास्त्र की समझनी चाहिये। जज मैकिनतोष साहब ने कहा है कि वेदान्त के सिद्धान्त सूक्ष्म, गूढ़, सुन्दर और अपूर्व हैं। अन्त में कूसान महाशय का वचन याद रखना चाहिये कि भारत का विज्ञान सारे संसार के विज्ञान का संक्षेप है,॥

अध्याय ६

चारवाक सम्प्रदाय ।

१—चार वाक—इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक बृहस्पति कहा जाता है जिसकी जीवनी की घटनाएं ज्ञात नहीं। परन्तु उस के पश्चात् उस का एक चेला चारवाक नामी गुरू का भी गुरू निकला. गुरु की शिक्षा में भेद करके नास्तिकवाद का खूब प्रचार किया। तब उसी के नाम से एक सम्प्रदाय स्थापित होगई, यद्यपि आज कल उस सम्प्रदाय के लोग या शास्त्र कम दिखाई देते हैं तथापि पुरातन समय में चारवाकों के विज्ञान का काफ़ी प्रचार था और उस की पुष्टि कपिल के सांख्य शास्त्र और जैन और बौद्ध मतों से मिली। यूनान में भी कुछ सौ वर्ष पश्चात् पिर्हो,एम्पिरिकस और एपिक्यूरिस ने इन्हीं सिद्धान्तों का प्रचार किया। चार वाकों के सिद्धान्तों को खण्डन करना ऐसा सुगम है कि पाठक स्वयम थोड़ी सी बुद्धि लगाकर उन युक्तियों को ज्ञात कर लेगा। इस कारण यहां चारवाकों के मूल सिद्धान्त ही दिये जाते हैं॥

(२) सिद्धान्त-(१) सर्व प्रकार के ज्ञान का आधार इन्द्रिय हैं-केवल अनुभव वा प्रत्यक्ष है॥

(२) अतः कोई आत्मा और परमात्मा नहीं–आत्मा और बुद्धि की उत्पत्ति शरीर, इन्द्रिय, प्राण या मन से होती है, शरीर से पृथक हो करके आत्मा के आस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं ॥

(३) संसार में चार तत्व हैं—अग्नि, वायु जल और पृथिवी—इन्हीं के मेल से जीव उत्पन्न होता है, जैसे मादक पदार्थ से नशा हो जाता है ॥

(४) देश का राजा ही परमेश्वर है ॥

(५) वेदों को सर्वथा नहीं मानते, प्रत्युत उन पर असत्य, पुनरोक्ति और परस्पर विरोध के तीन दोष लगाते हैं। वैदिक ऋषिगण शठ, राक्षस, धूर्त, और भाण्ड हैं, अग्नि होत्र, तीन वेद, सन्यासिओं के तीन दण्ड और भस्म लगाना—मनुष्यों ने यह बातें अपने जीवन निर्वाह के लिये निकाली हैं ॥

(६) मनुष्य के कर्म और भाग उस को सुख दुःख नहीं पहुंचा सकते, कर्मों का फल इसी देह में समाप्त होजाता है ॥

(७) मोक्ष व बन्धन, परलोक, स्वर्ग, नर्क का नाम भी नहीं–यह कल्पित पदार्थ हैं, शरीर की मृत्यु से मोक्ष है, संसार के दुःख नर्क हैं। यहीं भोगों से स्वर्ग बन सकता है ॥

(८) पितरों का श्राद्ध व्यर्थ है ॥

(१०) सब प्रकार के यज्ञ भी व्यर्थ हैं।

(११ संसार को दुःखों के कारण त्याग देना मूर्खता है क्योंकि धान्य, चावल और फूल अपने भूसे और कान्टे के बिना नहीं मिलते, अतः दुःखों को दूर करते हुए सुखों का भोग करना चाहिये।

(१२) शारिरिक भोगों का भोगना ही मानव जीवन का उद्देश्य है॥

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योर गोचरः।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

जीवन प्रयन्त सुख से जीवो, मृत्यु से कोई नहीं बच सकता शरीर के भस्म होने पर फिर यहां आना नहीं होता॥

यदि धन न हो, ऋण लेकर भोग करो–यह ऋण देना नहीं पड़ेगा क्योंकि जिस आत्मा ने लिया था वह वापिस नहीं आता, फिर कौन ऋण देवे? अतः मद्य, मांस, मद्रा, मीन, मैथुन से सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करो। खाओ, पीओ और आनन्द करो क्योंकि कल हम ने मरना है, फिर यह भोग मय जीवन हाथ नहीं आना–इस शरीर के साथ आत्मा उत्पन्न हुआ और शरीर के साथ आत्मा मृत्यु को प्राप्त होता है। वाम मार्गियों के दुराचार को चारवाकों ने दर्शण रूप में दिखाकर उस लहर को

चारवाक, जैन और बौद्ध मतों का खण्डन श्री स्वामि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश में देखने से पाठकों को बहुत लाभ होगा॥

अधिक बढ़ाया। भारत की अवनति का कारण जितना वाम मार्ग हुआ है, उतना कोई सम्प्रदाय सत्यानाशी इस देश में नहीं हुआ। पुण्यभूमि आर्य्यावर्त्त के निवासियों को इन विचित्र सम्प्रदायों से यथा शक्ति बचना चाहिये॥

॥ जैन मत

३—वर्धमान महावीर—गौतम बुद्ध से ४२ वर्ष पूर्व इक्ष्वाकु वंश के एक अमूल्य भूषण राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला के यहां वर्धमान पुत्र उत्पन्न हुआ। इस ने बुद्धदेव के समान एक अपूर्व धर्म का प्रचार किया जो अब तक भारत में पाया जाता है। वर्धमान देशराज के स्थान पर धर्मराज हुआ। क्षमा, दया, धर्म, वैराग्य का वह अवतार था। ३० वर्ष की आयु में राजपाट छोड़ कर जंगल की राह ली। वहां दो वर्ष तक घोर तप किया। प्राणि-मात्र के परोपकार के लिये इस महात्मा ने सर्व त्याग किया। मोहमाया, मन और काया को जीतने वाला वर्धमान जिन या तीर्थ-कर-(जिस ने काम क्रोधादि अठारह दोषों को जीत लिया हो) आदर्श पुरुष कहलाया। जब संसार के दुःखों को दूर करने का मार्ग मिल गया तो राजगृह, वैशाली, कुशाली और मगधदेश में "अहिंसा परमो धर्मः" का प्रचार करता रहा। तप और

योग साधनों से अपने आप का ऐसा जितेन्द्रिय किया था कि वह प्रकृति माता के नग्न शरीर में रहता था। बारह वर्षों तक प्रचार में उसे, कृतकृत्यता न हुई परन्तु फिर ७२ वर्ष की आयु तक खूब प्रचार करता रहा। आख़िर ५२७ ई० पूर्व जिन महाराज स्वर्ग लोक पधारे॥

४–तीर्थंकर–जैनी लोगों ने वर्धमान को महावीर कहा–इसी नाम से वह अब तक प्रसिद्ध है। यह जैन मत का प्रथम संस्थापक नहीं परंच एक श्रेष्ठतर प्रचारक है, क्योंकि २३ तीर्थंकर महावीर से पहले हो चुके हैं, ऐसा जैनी लोग मानते हैं। विशेषतया महावीर और उस से पूर्व तीर्थंकर 'पार्श्वनाथ' की पूजा करते हैं। छोटा नागपुर में ४५०० फुट ऊंची एक पहाड़ी है उसे पार्श्वनाथ की पहाड़ी कहते हैं, इस पर जैनियों के बहुत आलीशान मन्दिर हैं। यह पार्श्वनाथ लगभग ८०० ई० पूर्व हुआ। उस की पूजा करने वाले जैनी श्वेताम्बर कहलाते हैं और निर्ग्रन्थ और नग्न महावीर की पूजा करने वाले दिगम्बर नाम से प्रसिद्ध हैं क्योंकि वे अपने गुरू के समान नग्न रहते हैं—उन के वस्त्र केवल दिशाएं हैं॥

५—जैन धर्म का उद्भव—जैन धर्म के विषय में घोर अज्ञानता है (१) क्योंकि जैनी स्वधर्म पुस्तकें नहीं छपवाते॥

(२) क्योंकि इस धर्म का प्रचार भारत से बाहिर बहुत नहीं हुआ, यद्यपि पहिले पहिल मिश्र, यूनान और पश्चिमी एशिया में कुछ प्रचार अवश्य हुआ॥

(३) क्योंकि ब्राह्मणों ने इन्हें नास्तिक कह कर उन के मन्दिरों में हिन्दुओं को जाने से सर्वथा बन्द कर दिया। परन्तु वाम मार्ग की प्रचण्ड भस्म करने वाली लहर से भारत गारत हो रहा था, सहस्रों पशुओं का घात प्रति दिन किया जाता था- जिस के प्रमाण मेघदूतकाव्य तथा अन्य २ अनेक ग्रन्थों से मिलते हैं—जैसे राति देव नामक राजा का उदाहरण हृदय विदारक है—उसने यज्ञ में ऐसा पशुवध किया कि नदी का जल खून से रक्तवर्ण का होगया और उसी समय से उस नदी का नाम चर्मवती प्रसिद्ध हो गया। मांस, मद, मैथुन, मीन, मद्रा पांच मकार मकर रूप धारण कर के भारतीय आर्य्यों का भक्षण कर रहे थे। स्त्री जाति को रसातल तक फेंक दिया गया था, आचारहीन, दयाहीन धर्म हीन, लज्जा हीन भारत को उठाने और वाममार्ग का नाश करने के लिये महावीर और उस के पश्चात् बुद्ध ने विचित्र यत्न किए और वे फलीभूत हुए। पुरातन आर्य धर्म का पुनः उद्धार हुआ और अब तक जैनियों में दया धर्म का अति विस्तार है। भारत के सेठों में यह मत इस समय प्रचलित है और १५ लाख की संख्या में जैन पाए जाते हैं॥

बौद्ध धर्म

६—गौतम बुद्ध—का जन्म ईसा से ५६७ वर्ष पहिले बनारस से १०० मील की दूरी पर रोहिणी नदी की तटवर्ती राजधानी कपिल-

वस्तु में जिसे आज कल वस्ती कहते हैं, हुआ। वहां शक जाति का स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य था। उन के शिरोमणि महाराज शुद्धोदन की धर्मपत्नी मायादेवी से संसार के उद्धारार्थ गौतमदेव ने लुम्बनी नामक वन में जन्म लिया, उस राजकुमार का नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। बाल्यपन से ही बाल क्रीड़ा और कुतूहलों की अपेक्षा एकान्त में वास करना उस को रुचिकर था। भाषण मधुरता, दयालुता, मैत्री भाव के लिये प्रति दिन गौतम प्रसिद्ध होता गया, प्रायः जब शिकार के लिये जाता था, तो यद्यपि तीर चिल्ले पर चढ़ा हो, लक्ष्य बंधा हो, कमान खूब तनी हो, तथापि जब भोले भाले, बे ज़बान, बेकस, मृदु पातों को खाने वाले पशु पर दृष्टि पड़ती थी, तो ख्याल आता था कि इस पशु ने मेरा कोई अपराध नहीं किया–इसे मैं क्यों मारूं, उसी समय शिकार त्याग देता था–इसी प्रकार कभी घोड़े को बहुत हांकता तो उस को बहुत कष्ट होता था, अतः जीत ली हुई बाज़ी को प्रायः छोड़ देता था॥

अपने वैराग्य की बहुत साक्षियां माता पिता को दे चुका था, अतः वह अधिकतर चिन्ता में डूबे रहते थे। युवराज को वैराग्य से बचाने के लिये सहस्रों भोग पदार्थ एकत्रित किये गये, छोटी अवस्था में सर्वांग सुन्दरी यशोधरा से विवाह किया गया। २८ वर्ष की आयु तक नाना प्रकार के लौकिक सुखों में बुद्धदेव

मस्त रहा, तब चूंकि अपने पिता के स्थान पर शीघ्र राज्य प्राप्त करना था, इसलिये नगर देखने के लिये पिता ने प्रबन्ध कर दिया। यद्यपि खुशी में सारे नगर को समारोह से सजाया गया था और सर्व प्रकार के बुरे दृश्य दूर कर दिये गये थे, तो भी वृद्ध, रोगी और मृतक पुरुष दृष्टिगोचर हुए। उन की दुःखित अवस्था से बुद्धदेव को बहुत दुःख हुआ क्योंकि उसे यह ज्ञान हो गया कि उस ने भी एक दिन बूढ़ा, रोगी और मृतक बनना है। फिर एक साधु का उत्तम दृश्य दीख पड़ा, उस का प्रेम भरा दिल, तप और आनन्द से आनन्दित मुख था, फटे वस्त्रों, कमण्डलु और दण्ड से भी वह राजाओं की मस्ताना चाल चल रहा था, इस पर बुद्धदेव ने भी साधु होने की ठान ली॥

राजत्याग—कमल नयन बालक, सुन्दरी यशोधरा पूज्य माता पिता और राज्य पाट को मोह माया की ज़ंजीरों से जकड़ा हुआ जान कर, एक रात्रि महल्लों को छोड़ कर, बुद्धदेव वनों में चल दिया, तलवार से केश मुण्डन करके साधुओं के वस्त्र पहिन कर दो पण्डितों का शिष्य बना। उद्देशप्राप्ति न देख कर गयाजी के निकट उरुवेला नामक अंधेरे जंगल में तपस्या करने को गया। पांच वर्षों तक कठोर तप किया, तब मोह तथा अविद्या की बेड़ियों को तोड़ कर ज्ञान प्राप्त किया। फिर बोधी वृक्ष के नीचे ४९ दिन तक समाधि लगाई, यहां उसे विश्वास हो गया कि मुझे धर्म का सीधा मार्ग मिल गया है॥

७—गौतम बुद्ध का प्रचार—वन को त्याग कर पीड़ित संसार को धर्म का सत्य मार्ग दिखाने के लिये बुद्धदेव इतस्ततः भ्रमण करने लगे। बनारस में पधार कर सब नरनारी को अपने सत्य उपदेश से मोहित कर लिया। श्रोताओं ने उनको अपार ज्ञान होने से बुद्धदेव की उपाधि दी, यह पहला उपदेश काशी के समीप शारनाथ स्थान में दिया गया था, यहां अब भी बौद्धों की मूर्तियां तथा मन्दिर मिलते हैं और वह धर्म चक्र का रूप भी है, जो बुद्धदेव ने चलाया। बनारस से चल कर बुद्धदेव राजगृह में पहुंचा, वहां का राजा बिम्बीसार प्रजा समेत एक बड़ा यज्ञ करने में तत्पर था, उस यज्ञ में सैकड़ों बकरियों और भेड़ों का घात होना था, इस को देख कर धर्ममूर्ति, दया सागर बुद्ध ने सब एकत्रित लोगों को 'अहिंसा परमोधर्मः' पर प्रभावशाली उपदेश दिया। तिस पर वह घोर यज्ञ त्याग दिया गया और सब लोग बुद्ध के नये धर्म को मानने वाले हो गये। वहां से अपने जन्मस्थान कपिलवस्तु में गया, उस के वृद्ध माता पिता ने प्रजा सहित परिव्राजक बुद्ध का सत्कार किया। लोभ मोह और अहंकार के दमन करने वाली बुद्ध की मूर्ति और उपदेशों से मोहित होकर उसके सहजाति चेले हो गये। इसी प्रकार आयु पर्यन्त मगध, बिहार और युक्त प्रान्त में भ्रमण करके सदाचार, दया, दान और अहिंसा आदि के उत्तम उपदेशों से लाखों नर नारियों को चेला बना लिया, मृत्यु काल तक निरन्तर उपदेश

करता रहा। बुद्ध ने यह चोला ४८७ वर्ष ईसा पूर्व त्याग कर मोक्ष प्राप्त किया॥

८—बुद्धदेव की शिक्षा—बुद्ध की शिक्षा की उत्तमता उस के अत्यन्त प्रचार से ज्ञात होती है। यद्यपि बौद्धों और हिन्दुओं ने उसे अवतार माना हुआ है, तथापि उस महात्मा ने अपने आप को कभी अवतार या पैग़म्बर या किसी नवीन शिक्षा का देने वाला नहीं कहा॥

बुद्धदेव के नवीन मत का तत्व—बुद्धदेव ने केवल लोगों को रहने सहने के नियम सिखाए। परन्तु उस समय भारतीय संसार वाम मार्गियों के कुकर्मों से बहुत पीडित था और जात पात के बन्धनों से शूद्रों और नारियों की ऐसी दुर्गति थी कि ग़रीब अमीर, राजे, कृषक, ब्राह्मण, शूद्र, नर नारी, बालक और वृद्ध सब उस शुद्धाचरण मधुर भाषी देव के सत्योपदेशों को सुनने के लिये उत्सुक थे, और चूंकि सत्य बोलने वाले, पाप न करने वाले, पवित्र जीवन रखने वाले शूद्रों को भी अपने मठों में बुद्ध ने समान दृष्टि से रक्खा और शिक्षा दी, इस लिये ऐसे लोगों के समूह के समूह बौद्ध हो गये॥

जन्म से वर्ण नहीं—बुद्धदेव ने सत्य कहा है कि जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता प्रत्युत ज्ञानी, सिद्धात्मा, आत्मानीन, महानुभाव, अहिंसक, सत्यप्रिय, धार्मिक, लोभ, मोह तथा क्रोध के दमन करने द्वारा क्षमा शील, वैरागी, संतोषी, निर्व्यसनी

महाशय ही ब्राह्मण कहाता है। 'जिस प्रकार गंगा, यमुना, सिन्धु, नदियां समुद्र में गिर कर अपना नाम खो देती हैं, वैसे ही मेरे मठ में प्रविष्ट होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सब समान हो जाते हैं, चाण्डाल भी पवित्र जीवन से बुद्ध बन सकता है,' जैसा कि वस्तुत: नाई उपाली और भङ्गी सनित बड़े प्रसिद्ध भिक्षुक हुए ॥

दुःखों के कारण—बुद्धदेव का मत था कि अति के सेवन से संसार दुःखित होता है। या तो मनुष्य अति तप और हठ योग से अपना शरीर क्षीण कर देते हैं या असार संसार के भोगों में सर्वथा लीन हो जाते हैं. इसी कारण सांसारिक मनुष्यों को सुख पूर्वक रहने के नियम बताये।

बुद्धदेव ने कहा कि

I. जन्म दुःख है।

II मृत्यु दुःख है।

III बुढ़ापा दुःख है ॥

IV रोग दुःख है

V घृणित वस्तुओं की उपस्थिति दुःख है।

VI निराशा दुःख है।

बुद्धदेव ने ४ आर्य सत्य कहे:—

I दुःख का अस्तित्व है।

II दुःख का कारण इन्द्रियोंको वश में न रखना है।

III दुःख का नाश निर्वाण से हो सकता है ॥

IV निर्वाण प्राप्ति के आठ श्रेष्ठ उपाय हैं:—

i भक्ति ii सत्य भाषण iii सत्योद्देश्य

iv सत्य पोषण v सत्य भक्षण,
vi सत्य मनन। vii सत्य स्मृति
viii सत्य ध्यान॥

दुःखों की निवृत्ति—इन दुःखों की निवृत्ति आशा रहित होने से हो सकती है। आशा तीन प्रकार की है: जीवन की, जीवनोपयोगी पदार्थों की और भोगों की।

निम्नलिखित धर्म नियमों पर सब को चलना चाहिये।

I हिंसा मत करो	I दान दो।
II असत्य मत बोलो।	II धीरता और सबर करो।
III चोरी मत करो।	III सत्याचार रक्खो॥
IV मद्यपान मत करो।	IV ज्ञान संग्रह करो।
V व्यभिचार मत करो।	V चित्त एकाग्र करो॥

निम्न लिखित पांच नियमों का सर्व भिक्षुक सेवन करें:—

१—असमय भोजन मत करो।

२—नाच रंग में मत जाओ।

३—भूषण सुगन्धि मत लगावो।

४—भोग मय वस्त्र मत पहिनो।

५—सोना चांदी दान में मत लो॥

६—निर्वाण—बुद्ध देव कल्पना को अपने मन में स्थान नहीं देते थे, वे क्रियात्मक शक्ति के भण्डार थे। इन की सारी शक्ति

का सार यह है कि मनुष्य की शुभाशुभ दशा का आधार लोक तथा परलोक दोनों में अपने शुभाशुभ कार्य्यों पर है। लाखों यज्ञ और प्रार्थनायें मनुष्य को किये हुए बुरे कर्मों के फल से नहीं बचा सकतीं, बबूल बोने से फूलों की उत्पत्ति नहीं होती। जैसी करनी वैसी भरनी के सिद्धान्त पर वह महात्मा तुला हुआ था, अत एव उस ने सारे जीवन में यह उपदेश किया कि सत्य कामना, सत्य वाक् और सत्य कर्म से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है और इस के उलट जीवन व्यतीत करने से अपने आप को मनुष्य दुःख का भागी बना लेता है। अर्थात् जब मनुष्य शुभ कर्म नहीं करता, तो बारम्बार वह जन्म मरण में आता रहता है। इस लिये शोक, दुःख, सुख, विषय भोग से विरक्त हो कर शत्रु और मित्र को समान समझते हुए अनादि सुख-निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है। निर्वाण की दशा में संसार सागर के तूफ़ान नहीं आया करते-वहां किसी प्रकार का परिवर्तन, विक्षोभ और पाप नहीं है। यह दशा सर्वथा अचल और अटल है॥

बुद्ध देव पूर्व जन्म को मानते थे और उन्हों ने वैदिक देवताओं के विरुद्ध या ईश्वर की सत्ता के विरुद्ध कभी आवाज़ नहीं उठाई परन्तु उन के अनुयायी उक्त वेद मार्ग से बहुत हट गये॥

१०-बौद्ध धर्म में त्रुटियां—I. बौद्ध धर्म, ध्यानियों, मुनियों, विरक्तों के लिये हो सकता है-सर्व साधारण इस से लाभ नहीं उठा सकते॥

II—विरक्तता को फैला कर सांसारिक उन्नति तथा आबादी को घटाने वाला है। यदि इस के अनुयायी इस के असली तत्वों का अनुकरण करते, तो ब्रह्मा, चीन, जापान आदि देशों की दशा कुछ और ही होती। आज कल की न्याई साधारण अहिंसा तो एक तरफ़ रही, कुत्ते बिल्ली और मेंडक का भक्षण कदापि न होता ॥

III—बुद्ध ने स्वर्ग नरक दोनों को ही माना है, पूर्व ऋषियों के आधार पर अपना धर्म बताया है, पर केवल एक जगदाधार ईश्वर को ही वह भूल गया है। संसार में नास्तिकता को साधारणतया लोग पसन्द नहीं करते—इसी कारण से बौद्धधर्म शनैः शनैः घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। (IV) बुद्ध मूर्ति पूजा के विरुद्ध था और अपने आप को कभी ईश्वर का अवतार नहीं जताता था, परन्तु फिर भी उस के पीछे सम्पूर्ण बौद्ध बुद्ध बुद्ध रटने लगे और उस की तथा अन्य बुद्धों की मूर्तियां बना कर पूजने लगे और इस प्रकार दूसरे रूप में ईश्वर वाद भी मानने लगे। (V) बुद्ध के धर्म की नींव बड़ी कच्ची थी—जहां ईश्वरवाद न था, उस के साथ ही साथ संसार में सुख का नाम भी नहीं—ऐसा विचार फैलाया। यह केवल उस की भूल थी क्यों कि जहां दुःख है, वहां सुख भी है। अतः जो दुःख है, उसे दूर करना चाहिये न कि उस से डर कर अत्यन्त दूर भग जाना चाहिये। इस कारण जो औषधि रोगी भारतवर्ष के लिये उपयोगी

समझी वह बिलकुल विपरीत हुई । ज्यों ज्यों औषधि सेवन की गयी, त्यों २ भारत का रोग बढ़ता गया ॥

११—बौद्ध मत के विस्तारार्थ सभायें ।

प्रथम सभा—४८७ वर्ष ई० पूर्व बुद्ध की मृत्यु के दो मास पश्चात् बौद्ध मत के विरुद्ध उपदेश करने वाले एक सुभद्र नामी भिक्षुक के मत के खण्डनार्थ तथा अपने पूज्य गुरु के वचनों को याद करने के लिये कश्यप, आनन्द और उपाली आदि पांच सौ भिक्षु गण ने राज गृह में सभा की । मगधेश्वर अजातशत्रु की सहायता से त्रिपिटक बनाए । त्रिपिटक नामी धर्म शास्त्र-सूत्र, विनय और अभिधर्म नामी हैं ।

दूसरी सभा—३८७ वर्ष पूर्व वैशाली (अनुमान से छपरा ज़िला में होनी चाहिये) के समीप वेलुकाराम विहार में महा· यश आदि ७०० भिक्षुगण ने बौद्ध मत के विरुद्ध उपदेश करने वाले ३०००० भिक्षुओं के मत के खण्डन करने के लिये आठ महीने तक कालाशोक महाराज की सहायता से फिर त्रिपिटक की आवृत्ति की ।

तीसरी सभा—२४० वर्ष ई० पूर्व मौद्गलीपुत्र आदि १००० भिक्षुगण ने महाराजा अशोक की सहायता से अधर्म वादी धूर्त भिक्षुओं को निकलवा कर राज्यधानी पटना के समीप

अशोकाराम विहार में ६ मास तक तीन शास्त्र की फिर आवृत्ति की और सिद्ध भिक्षुओं को लंका आदि नौ विदेशों में भेजकर बौद्ध धर्म का प्रचार कराया ॥

२१३ वर्ष ई० पू० अशोक महाराज के पुत्र महा महेन्द्र आदि दो लाख भिक्षुगण ने लंका द्वीप के महाराजाधिराज दुष्टग्रामणी की सहायता से ताल पत्रों में त्रिपिटक लिखा दिया।

चतुर्थ सभा—महाराज कनिष्क के समय अश्वघोष के अधिपत्य में अन्तिम चतुर्थ सभा की गई। त्रिपिटकों की पुनरावृत्ति हुई। वास्तविक बौद्ध धर्म से भिन्न एक धर्म इस सभा ने निश्चित किया, जो 'महायान' या उत्तरी बौद्ध मत कहलाता है। बुद्ध का असली धर्म 'हीनयान' या दक्षिणी धर्म के नाम से प्रसिद्ध है ॥

अध्याय १०

धर्म शास्त्रों की सभ्यता॥

१—धर्मसूत्रकार—दार्शनिक काल में बहुत से धर्मसूत्र भी लिखे गये, जिन में से बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशिन्, गौतम, नारद, बृहस्पति आदि इस समय मिलते हैं। इन ग्रन्थों से पता लगता है कि इन से पूर्व हारित, एक, कुणीक, कण्व, कुत्स, पुष्करसादी, वार्ष्यायणी नामी ऋषि धर्मसूत्र कार हो चुके थे। यद्यपि पूर्वोक्त ग्रन्थ ६ वा ७ शताब्दी ई० पूर्व बने होंगे, तथापि ब्राह्मणों ने उन में पीछे मिलावटें करदीं। उनसे जो सभ्यता दीख पड़ती है वह अति संक्षेप से यहां दिखाई जाती है। जिस प्रकार से न्याय करने की रीति सूत्रों में बतायी गई है, उस से आज कल का सभ्य संसार भी शिक्षा ग्रहण कर सकता है॥

२—न्याय के क्रम—आठ प्रकार के न्यायालय उत्तरोत्तर अधिकार रखने वाले पाये जाते हैं: कुल, कुल परोहित (नियम तोड़ने वाले को प्रायश्चित करावे, यदि प्रायश्चित करने को भी वह तैयार न हो तो राज कर्मचारी को सूचित करे), पञ्चायत, श्रम समिति, स्थिर न्यायालय, भ्रमणीयन्यायालय, महान्यायाधीश और राजा। उस प्राचीन काल में श्रम समितियों का होना अतीव विचित्र है॥

न्याय के आठ सभ्य—न्याय के आठ सभ्य कहे गये हैं: राजा, पुलीसमैन, न्यायाधीश तथा न्यायाधीश मण्डल, स्मृति, लेखक, सोना, अग्नि और जल।

३—अपराधों का वर्गीकरण—सब अपराधों का वर्गीकरण अठारह विभागों में किया है। उन के १३२ उपविभाग किये गये हैं। इस प्रकार अपराधों की सूची, न्याय की विधि, दण्ड की मात्रा आदि सब प्रश्न निश्चित किये गये थे। यह सब बातें उत्तम सभ्यता की दर्शक हैं। राजा को आज्ञा है कि यदि स्मृति का दण्ड कठोर प्रतीत हो, तो अपने आत्मा के कथनानुसार उचित न्याय करे, क्योंकि देश रीति स्मृति की आज्ञा से प्रबल है। प्रत्येक देश में उस की रसमों के अनुसार न्याय करना चाहिये न कि केवल स्मृतियों के अनुसार, जैसे दक्षिण में द्विज लोग भी मामाजी से विवाह करते हैं, मध्य देश में द्विज भी मजदूरी तथा गो मांस तक खाते हैं। पूर्व देश निवासी मछली खाते हैं और उन की स्त्रियों में व्यभिचार बहुत है। उत्तर में स्त्रियां मद्य पीती हैं। खशनाभी पर्वतीय देश में विधवा भावज से विवाह कर देते हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं, अतः देश रीत्यनुसार न्याय करना चाहिये न कि केवल स्मृति के बल पर।

४ साक्षि के प्रकार—साक्षि कतिपय प्रकार की कही हैं: असत्य साक्षि, सत्य साक्षि, योग्यायोग्य साक्षि। इन को सत्य

साक्षि का प्रकार	अप्राप्य धन की मात्रा का उदाहरण	जाति वर्ग	ऋतु जिस में साक्षि लेनी है	ऋतु जिस में साक्षि नहीं लेनी चाहिये
१–विष खिलाना	१००० मुद्रा	शूद्र	सरदी	वर्षा
२–अग्नि में हाथ डालना	७५० ,,	क्षत्रिय, स्त्री तथा गर्म स्वभाव वाले को नहीं	वर्षा	गर्मी
३–खौलते घी में से मोहर उठाना	४०० ,,	सब वर्ग	...	
४–धान चबाना	३०० ,,	,,	सदा	सदा
५–मूर्ति का चरणोदक लेना	१५० ,,	,,	,,	,,
६–जल में तैरना	...	वैश्य स्त्री और खांसी वाले को नहीं	गर्मी	सर्दी
७–तुला पर तुलना	...	ब्राह्मण, सर्व वृद्ध, स्त्री, बच्चे कमज़ोर रोगी।	सरदी व सदा	जब आंधी न चलती हो

उक्त वर्णन से पता लग गया होगा कि दैवी साक्षि लेते समय कठोरता और अन्याय को सब प्रकार से दूर करने का ख्याल किया जाता था।

न्यायाधीश को दण्ड—यदि किसी न्यायाधीश ने क्रोध, अज्ञान, लोभ, तथा मोह वश होकर अन्याय किया हो, तो उसे राजा दण्ड देवे दण्ड न देने पर राजा पाप का भागी होगा। यह भी लिखा है कि यदि चोरी का माल राजा पता न लगा सके, तो अपने कोश में से उतना धन उस पुरुष को देवे जिस की चोरी हुई है।

६-वकील—न्यायाधीश मुकदमें के समय दोनों दलों के शब्दों को लेखक द्वारा नोट कराते जावें, यदि दलों के प्रतिनिधि वकील, न्यायालय में बोलते हों तो हारजीत दलों की उन के वकीलों की हारजीत के अनुसार होती है और दण्डनीय भी वही होते हैं न कि वकील। जिस अपराधी को न्यायाधीश दण्ड की आज्ञा देवे उसे दण्ड देने का प्रबन्ध राज्य करे और जीते हुए दल को योग्य शब्दों में लिखित प्रमाण दिया जावे।

७-निम्न लिखितों को योग्य दण्ड देना लिखा है :-
वैद्य जो पूर्ण विद्या न पढ़कर चिकित्सा करना आरम्भ करे। कपटी पासे से जो जुआ खेले। कम्पनियों को जो धोखा

दे अन्यायी न्यायाधीश। वेश्या। घूंसखोर कर्मचारी। विश्वा-सघाती। झूठा ज्योतिषी। कपटी साधु। नकली वस्तु को असल रूप में बेचने वाला। झूठा साक्षि। नकली सोना, रत्न और मोती बनाकर स्त्रियों को ठगाने वाला। मन्त्र यन्त्र से रोग दूर करने वाले पुरुषों और मनुष्यों को उठा ले जाने वाले लुटेरों और ठगों को उचित दण्ड देना चाहिये। यदि आज काल उपरिलिखित सब पुरुषों को दण्ड दिया जाय तो संसार की सम्पत्ति दिन दुगनी रात चौगनी बढ़ जाय।

८—दासत्व—शोक है कि भारत वर्ष में ईसा जन्म के पश्चात् अन्य देशों की देखा देखी दासत्व आरम्भ हो गया। सिकन्दर के समय मेगस्थिनीज़ की साक्षि के अनुसार देशी या विदेशी लोगों को आर्य दासत्व मे नहीं लिया करते थे, पर वृहस्पति धर्म सूत्र में १५ प्रकार के दासों का वर्गीकरण किया है :—

खरीदा हुआ, अकाल में प्राप्त, जुआ में हारा हुआ, वृत्ति के लिये दान में मिला, भेंट में आया हुआ, स्वयं दास, स्त्री के लिये दायाद में मिला, ऋण के बदले में, वैराग्य से भागा हुआ, अपने को बेचने वाला, घर में पैदा हुआ, युद्ध में पकड़ा हुआ, नियमित अवधि तक दास॥

९. व्यापारिक दशा—जब भारत में बौद्ध मत का प्रचार था तो जात पात का कोई बन्धन न था, सब सत्य व्यवसाय वाले

नियम बनाने पड़े। इसलिये यह नियम किया गया कि पुलीस की निगरानी में विशेष नियत द्यूतघरों में जुआ खेला जा सकता है। इसी प्रकार जब पण लगा कर मेंडे, कुक्कुट, लावक आदि लड़ाने हों तो वह कर्म भी पुलीस की आज्ञा से किया जावे। जुए के अध्यक्ष खेल में अवश्य उपस्थित रहें और हारजीत का कुछ भाग राजा के लिये कर रूप में एकत्रित करें, साथ ही द्यूतकारों में विवाद हो जाने पर फ़ैसला करें। निर्णय न होने पर राजन्यायाधीश द्वारा निर्णय करावें। यदि जुये में धोखे बाज़ी हो अथवा राज्यका कर न दिया जावे, तो जुआरी वर्ग दण्डनीय हों। आज कल भी ऐसे ही नियमों की आवश्यकता है।

११—मनु—(i) भगवान् मनु का लिखा हुआ धर्म्म शास्त्र सर्व धर्म्म शास्त्रों में से अति माननीय तथा प्रसिद्ध है। केवल सम्पूर्ण हिन्दू जाति ही इस शास्त्रका मान नहीं करती (ii) बल्कि सारा पुरातन संसार मनु की प्रतिष्ठा करता है। मिश्री, यूनानी, यहूदी लोगों के प्रथम स्मृतिकार क्रमवार मिनो, मेनो, मोज़िज़ (मूसा) कहे जाते हैं जो मनु शब्द का अपभ्रंश हैं। फिर जर्मनी वासी मानते हैं कि हम मनुस् की सन्तान हैं। (iii) जकोलिये महाशय ने बड़ी योग्यता से सिद्ध किया है कि रोम का प्रसिद्ध जस्टीनियन वाला धर्म शास्त्र मानव शास्त्र का अधिकांश

में उलघा है। पुराणों में दी हुई वंशावलियों के आधार पर इक्ष्वाकु के पितामहा मनु का काल ३६०० ई० पूर्व निश्चित होता है किन्तु जिस रूप में अब स्मृति मिलती है उस में समय २ पर मिलावट होती रही हैं। यह विचार अशुद्ध नहीं है कि ईसा के ४०० वर्ष पश्चात् तक निरन्तर परिवर्तन होते रहे, तब से ही यह स्थिर रूप में आगई। स्पष्ट है कि आर्यों की सभ्यता और रीति नीति जो ४००० वर्ष तक भारत वर्ष में प्रचालित रहीं-उन का दर्शक मानव धर्म शास्त्र है। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्री, शूद्र के कर्तव्य जातपात, छूतछात, वहमों, सन्तानोत्पत्ति, प्रायश्चित्त, ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यासादि के विषयों पर मनु के वाक्य पढ़ने योग्य हैं, किन्तु यहां राज्य तथा व्यापार के सम्बन्ध में ही अधिकतर लिखा जावेगा॥

१२—राजा की योग्यता—ज्ञान, कर्म और उपासना का ज्ञाता, दण्ड नीति, न्याय विद्या और आत्म विद्या में पठित, वार्तालाप में चतुर, जितेन्द्रिय राजा हो। वह राजा ऐसा निष्पक्षपाती तथा धार्मिक हो कि प्रिय से प्रिय सम्बन्धी व मित्र को भी दण्ड देने विना न छोड़े। यदि राजा पाप करे तो उसे भी दण्ड मिल सकता है-जैसे ऐतरेय ब्राह्मण से पहिले ज्ञात हो चुका है या जैसे मनु ने कहा-दण्ड के चलाने वाला सत्यवादी, विचार पूर्वक काम करने वाला, महा बुद्धिमान, धर्म काम और अर्थ के तत्वों का ज्ञाता राजा वृद्धि को प्राप्त होता है परन्तु विपरीत गुण रखने

वाला राजा उसी दण्ड से मारा जाता है, धर्म से विचलते हुए राजा को बन्धु सहित दण्ड नाश कर देता है, जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन के बोलने वाला, न डाकू, न राजा की आज्ञा का भङ्ग करने वाला है—वह राजा उस आनन्द का भागी होता है जिसे 'शक्र' नामक सर्वोपरि राजा भोगता है ॥

जो राजा अज्ञान से, बिना विचार किये प्रजा को दुःख देता है वह शीघ्र ही राज्य,जीवन और बान्धवों से भ्रष्ट हो जाता है। जैसे शरीर के शोषण से प्राणियों के प्राण क्षीण होते हैं वैसे राजाओं के भी प्राण राष्ट्र की पीड़ा देने से क्षीण होते हैं। इस कारण शिकार, जुआ, दिन में सोना, अन्यों के दोषों का कथन स्त्री सम्भोग, मद्यपान, नाचना, बजाना, व्यर्थ भ्रमण, चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दूसरों के गुणों में दोष लगाना, द्रव्य हरण गाली देना, कठोरता, और विशेषतया लोभ का परित्याग करे। यदि आज कल के सब राजा और विशेषतया भारत वर्ष के देशी रजवाड़ों के अधिपति उक्त व्यसनों का परित्याग करें, तो संसार में सर्व दिशाओं में शान्ति ही शान्ति के दृश्य दृष्टिगोचर हों फिर प्रजाएं प्रजा तन्त्र राज्य का नाम भी न लें ॥

१३—मन्त्री सभा—"जब कि सुगम काम भी एक पुरुष से होना कठिन है,तो राज्य सम्बन्धी काम अकेले राजा

से कैसे हो सकता है ? अतः मूल से नौकरी किये हुए, शास्त्र और शस्त्र में निपुण, कुलीन और परीक्षोत्तीर्ण सात या आठ महा मन्त्री नियुक्त करे। उन मंत्रियों की पृथक् २ और सम्मिलित सम्मति लेकर स्वहितार्थ काम करे। दण्ड, कोश, पुर, राष्ट्र, सन्धिविग्रह (वैदेशिक नीति) व्यापार और कृषि की उन्नति, प्रजा की रक्षा, सुशिक्षा-यह आठ विभाग हैं जिन पर मन्त्रियों को नियत करना चाहिये" ।

१४-राज कर्मचारी—ग्राम और नगरी की रक्षा के लिये भिन्न होते थे. उनका कर्तव्य होता था कि गांव आदि के निवासियों की रक्षा करें और प्रजा के दोषों को अपने से ऊपर वाले अधिकारी को चुपके से सूचित करावें। एक ग्राम का अधिपति और १०।२०।१००।१००० गावों के उत्तरोत्तर अधिकारी कहे हैं। फिर नगराधिपति सब से श्रेष्ठ माना है उसके ऊपर दृष्टि रखने वाला आलस्य रहित राजा का प्रतिनिधि मन्त्री होना चाहिये। नगराधिपति की योग्यता हमें आज कल के डिपटी कमिश्नरों का ध्यान दिलाती है। प्रतिनगर में एक २ बड़े कुल का प्रधान, सेना आदि से भय देसकने वाला, शुक्र के समान तेजस्वी, कार्य्य का द्रष्टा नगराधिपति नियत कर, वह सर्वदा आप उन सब ग्रामाधिपतियों के ऊपर दौरा करे और राष्ट्र में उनके समाचारों को नियुक्त दूतों द्वारा जाने।

इस नगराधिपति को राज्य में सहायता देने के लिये नागरिक सभा और व्यापारिक समितियां हुआ करें, इस प्रकार मनु में कथित राज्य विधि बड़ी श्रेष्ठ है।

१५-कर (टैक्स) लेने के उच्च सिद्धांत-दो, तीन, पांच तथा सौ ग्रामों के बीच में कर संग्रह करने वाले पुरुषों का समूह राजा स्थापन करें। जो बेचना, खरीदना रास्ते का खर्च, रक्षादि का व्यय और बनियों के निर्वाह को देखकर व्यापार व व्यवसाय के करने वाली प्रजा तथा राजा दोनों को फल अच्छा हो-ऐसा विचार करके सदा राज्य में टैक्स लेना चाहिये। जैसे जोंक, बछड़ा और भौंरा धीरे २ अपने भोजन खींचते हैं, वैसे राजा भी थोड़ा २ करके राष्ट्र से वार्षिक टैक्स ग्रहण करे। प्रजा के प्रेम से कर न लेना अपना मूलोच्छेद और लालच से अधिक कर ग्रहण करना प्रजा का मूलोच्छेद है, यह दोनों काम राजा न करे।

मनु के अनुसार निम्न रीति से टैक्स लेना चाहिये।

१ मौसिम उपज का

२ पशु, मांस, मधु, घृत, गन्ध, रस, फल, मूल, शाक, तृण, चर्म, मिट्टी [illegible] या $\frac{1}{6}$ भाग

ऋण।

१०-१७

और पत्थर की वस्तुओं का $\frac{1}{6}$ भाग

की आय $\frac{1}{30}$ भाग

३ लोहार, बढ़ई, आदि से $\frac{1}{20}$ भाग

४ व्यापारियों से लाभका $\frac{1}{50}$ "

५ पशु और और सुवर्ण के लाभका १ पण

६ पुलों पर महसूल—गाड़ी $\frac{1}{2}$ "

बोझा उठाने वाला श्रमी $\frac{1}{4}$ "

गाय, बैल, पशु, स्त्री $\frac{1}{8}$ "

खाली आदमी

१६ मनु से कहे तौल और सिक्के।

८ त्रसरेणु = १ लिक्षा

३ लिक्षा = १ राई

३ राई = १ सरसों

६ सरसों = १ यव

३ यव = १ रत्ति

५ रत्ति = १ माश

१६ माश = १ सुवर्ण

४ सुवर्ण = १ पल और निष्क

१० पल = १ धरण

१० धरण (चांदीवाला) = १ शतमान

२ क्रिशणल (चांदी) = १ माशक (चांदी की)

१६ मापक = १ धरण (")

१७—ऋण—ज़मानत पर लिये हुए ऋण पर व्याज की मात्रा १५% कही है परन्तु विना ज़मानत के ऋण पर व्याज की मात्रा बहुत अधिक है और वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र के विचार से भिन्न २ कही है—जैसे, २, ३, ४, और ५ प्रति शतक

प्रतिमास। व्याज का यह क्रम केवल नाम मात्र का होगा। प्रत्येक ऋण देने वाला अपने अधमर्ण की योग्यता को देख कर सूद लेता होगा। और साठ रुपया अधिकतम सूद लेने की आज्ञा थी, समुद्र यात्रा करने वाले व्यापारियों से सूद की मात्रा और भी अधिक होती थी—ऐसी अवस्था होते हुए विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि प्रथम से ४०० शताब्दी ई० में उत्तरीय भारत का व्यापार बहुत वृद्ध नहीं हो सका क्योंकि उसी समय में दक्षिण भारत में ५ से ७½ तक वार्षिक सूद की मात्रा धर्म कार्य के लिये थी और देशी और विदेशी व्यापार भी खूब चमका हुआ था। क्षत्री तक को भी व्याज लेना निषिद्ध है, केवल यह आपद्धर्म है। आपत्ति काल में भी क्षत्री को यह कर्म नहीं करने चाहिए—जैसे 'रसें, पत्थर नमक, पालनीय पशु, रंगे हुए वस्त्र, सन, रेशम, ऊन के वस्त्र, फल मूल, औषधियां, शस्त्र, सोमवल्ली, सब प्रकार के गन्ध, दूध, मधु, दही, घी, तेल, गुड़, कुशा, नील, लाख का बेचना क्षत्रिय न करे'। तभी तो भारत में व्यापार और शिल्प की अवनति पौराणिक काल में हो गयी॥

१८—वैदेशिक नीति—राजा को सहायता देने वाला वैदेशिक विभाग का अध्यक्ष 'दूत' हो जो मेल और भेद में चतुर हो। हृदय के भाव, आकार चेष्टाओं को जानने वाला, वह अन्तःकरण का शुद्ध तथा चतुर और कुलीन हो। प्रीति वाला, शूर चित्त, चतुर, याद रखने वाला, देश काल का ज्ञाता, अच्छे

देह वाला, निडर और सुवक्ता दूत होना चाहिए सब से निकट के राजा को अपना शत्रु समझना चाहिए। और उस के उपरान्त के देश के राजा को मित्र। छः प्रकार की नीति का सदा आश्रय लेवे—मेल, लड़ाई, शत्रु पर धावा, उस का राह देखना, अपने दो भाग कर लेना और दूसरे राजा का आश्रय लेना॥

जब अपनी सेना हर्ष युक्त और पुष्ट प्रतीत हो और शत्रु की निर्बल, तब शत्रु का पीछा करे। जब युद्ध में राजा शत्रु को सर्वथा अति बलवान् समझे तब कुछ सेना के साथ दुर्ग का आश्रय करे और बाकी सेना मोरचों पर युद्धार्थ रखे। जब जय की कोई आशा न हो तो किसी धार्मिक बलवान् राजा की शरण लेवे। जिस नीति में मित्र उदासीन और शत्रु अपने को दबाने न पावें वैसे सब विधान करे॥

तीन प्रकार के मार्गों को शोधन करके और ६ प्रकार की सेना ले कर संग्राम कल्प की विधि से धीरे २ शत्रु के नगर को यात्रा करे। यहां तीन प्रकार का मार्ग जल स्थल और आकाश है और रथों, नावों और विमानों से सुसज्जित सेना होनी चाहिये। विमान के नाम से नाक भंवर नहीं चढ़ाना चाहिये, पूर्व देखा जा चुका है कि पुरातन आर्य्यों के पास विमान थे, अब मनुस्मृति में ही एक अन्यस्थान पर विमान का वर्णन किया है, १२-४८ में यह कहा है:—

'तपस्वी, यति, वेद पाठी,विमान के चलाने वाले, ज्योतिषी और दैत्य मनुष्यों की प्रथम सत्वगुण की गति हैं' ॥

उक्त श्लोक से ज्ञान होता है कि लेखक वैमानिकों से भली भान्ती परिचित था-जब विमान थे तो युद्धों में भी प्रयुक्त हो सकते हैं-जैसे आज कल हो रहे हैं ॥

सेना के छै भाग-छै प्रकार की सेना यह थी-रथारोही अश्वारोही, हस्त्यारोही, पैदल,कोश और यन्त्र रक्षक और सामग्री पहुंचाने वाले (कम्सरेट का मद) ॥

१९—युद्ध का धर्म—संग्राम के समय उस सेना के कई व्यूह बनाने को कहा है-जैसे दण्ड, शकट, वराह, मकर, सूची, गरुड़, पद्म और वज्र ॥

संग्राम के समय राजा को सर्वदा पद्म व्यूह में रहने को कहा है ॥

आज कल की न्याईं उस समय भी पंजाब के हृष्ट पुष्ट योद्धाओं को भारतवर्ष में सब से उत्तम सैनिक समझा जाता था-कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शूरसेन देशों के लोगों को सेना में भरती करना चाहिए तथा उन्हें ही राजा सेना के आगे करे ॥

जब कोई राजा अपने शत्रु को जीते, तो उस पराजित राजा के किसी सम्बन्धी को पराजित प्रजा की सम्मति के अनुसार गद्दी पर बैठाना चाहिये और उन के देश की रीतियें

और नियमों को मानना चाहिये, यह न्याय युक्त और दयालु नियम है जो कि हिन्दु विजयी राजाओं के योग्य है ॥

युद्ध में आर्य्यों की दया और न्याय का उदाहरण और भी अधिक मिलता है जब हम यह देखते हैं कि निम्न लिखित को युद्ध में नहीं मारना चाहिये-रथी जब भूमि पर स्थित हो, नपुंसक को, हाथ जोड़े हुए को सिर के बाल खोले हुए को, बैठे हुए को, 'मैं तुम्हारा हूं' ऐसा कहने वाले को, सोते को, कवच उतारे हुए को, नङ्गे और हथ्यार हीन को, घायल को, भागने वाले को, भीरु को और तमाशा दिखाने वाले को। विचित्रतर यह शब्द हैं कि शत्रुओं को कूट आयुधों से, न निकलने वाले अस्त्रों से, विषयुक्तबाणों और जलते हुए अस्त्रों से न मारे—महा भारत युद्ध में यह सब प्रकार के अस्त्र शस्त्र चलाये गये परन्तु ऐसी आज्ञाओं से युद्धविद्या में आर्य्यों की कुशलता जाती रही-दया के नियम प्राचीन काल से आधुनिक राजपूतों के युद्धों तक सावधानी से पालन किये गये और विदेशियों ने गांव के निवासियों को अपनी कृषि या व्यापार शान्तिपूर्वक करते देखा जब कि उन के सामने ही दो सेनाएं राज्य के लिये लड़ रही थीं। परन्तु मुसलमान इन नियमों के पालन करने वाले न थे—राजपूतों ने तब भी इन नियमों को पालन किया, सर्व त्याग होते हुए भी इस आज्ञा का परिणाम क्षत्री राज्य का क्षय और यवन राज्य का स्थापन इस पुण्य भूमि में हुआ ॥

कहता था कि एक माता सौ अध्यापकों के बराबर है परन्तु मनु के अनुसार योग्य माता १० लाख अध्यापकों के बराबर होती है "आचार्य्य का मान १० उपाध्यायों के तुल करना चाहिये, पिता का १०० आचार्य्यों के तुल, माता का १००० पिता के तुल क्योंकि वह सब से अधिक शिक्षा देने वाली भी है ॥

फिर देखिये मनु ने स्त्रियों के बारे में क्या अपूर्व वचन कहे हैं-"साध्वी स्त्रियों को सदा देवी की भान्ति पुरुष पूजा करें क्योंकि सती स्त्रियों के प्रसाद से ही तीन जगत् धारण होते हैं। जिस स्थान में स्त्रियां प्रसन्न रहती हैं वह सारा कुटुम्ब प्रसन्न रहता है। जहां उन्हें दुःखी किया जाता है वहां सारा कुटुम्ब दुःखी रहता है। जहां स्त्रियों की पूजा होती है वहां देवता आनन्द करते हैं। जहां उनकी पूजा नहीं होती वहां उत्तम से उत्तम क्रिया निष्फल हो जाती है। जिस घर में स्त्रियां निरादर होकर शाप देती हैं वह घर इस प्रकार नष्ट हो जाता है जैसा कि किसी ने सब को विष देकर मार डाला हो। अतः जो पुरुष समृद्धि की अभिलाषा रखते है उन्हें चाहिये कि नित्य प्रति संस्कारों और उत्सवों में भूषण, वस्त्र, खान पान आदि से स्त्रियों की पूजा करें" ॥

——:०:——

अध्याय ११

मगध की उन्नति।

१—मगध का प्राचीन इतिहास—जैसे ज्ञात है, मगध देश प्राचीन समय से ही इतिहास में प्रसिद्ध है। कौरव पाण्डवों के समय में एक जरासन्ध नामी महा पराक्रमी राजा वहां हो गया है। उस ने सैंकड़ों राजों को पादाक्रान्त करके अपने कारागृह में लाकर रक्खा था। पश्चात् श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के साथ ब्राह्मण का वेष बदल कर उस की यज्ञशाला में जाकर भीमसेन द्वारा उस को मल्लयुद्ध में परास्त किया था। जरासन्ध का पुत्र सहदेव कुरुक्षेत्र के युद्ध में कौरवों की ओर से लड़ता रहा। सहदेव के पीछे २१ पीढ़ी तक मगध देश का राज्य इस वंश में रहा, इस के अनन्तर प्रद्योत वंश के ५ राजाओं ने राज्य किया। फिर शिशुनाग वंश ने राज्य प्राप्त कर लिया, अर्थात् युधिष्ठिर से शिशुनागवंश तक २८ राजाओं ने राज्य किया, जिनका वृत्तान्त ज्ञात नहीं। फिर एक सहस्र वर्ष तक मगध का इतिहास सम्पूर्ण भारत का इतिहास है। इस समय में ६ वंशों ने राज्य किया-राजगृह, फिर पाटलि पुत्र (पटना) इन की राजधानी रही,

यहीं जैन तथा बौद्धमत का उद्भव हुआ और यहीं संसार प्रसिद्ध कतिपय राजा हुए। वे ६ वंश यह हैं:—

१. शिशुनाग वंश—६५०–३७० ई० पूर्व
२. नन्द वंश—३७०–३२१ ई० पूर्व।
३. मौर्य वंश—३२१–१८४ ई० पूर्व,
४. संग वंश – १८४–७२ ई० पूर्व।
५. कण्व वंश—७२–२७ ई० पूर्व,
६. गुप्त वंश—३२०–४८० ई० पश्चात

॥ शिशुनाग वंश ६५०–३७० ई० पूर्व ॥

२—शिशुनाग वंश प्रवर्त्तक—क्षत्रीय जाति का एक वीर पुरुष शिशुनाग स्वबाहु बल से मगध देश का राजा बन गया। छः ही ज़िले उस के राज्य में होने से उस की एक छोटी सी रियासत थी, गया के निकट राजगृह (राजगिर) नामी नगरी उस की राजधानी थी, इस वंश प्रवर्तक राजा और उस के तीन अन्य उत्तराधिकारियों के विषय में अधिक ज्ञात नहीं। वायु पुराण के अनुसार इन्हों ने १३६ वर्ष तक राज्य किया ॥

३—विजेता बीर बिम्बसार—इस वीर राजा ने अङ्गदेश (भागलपुर, मुंगेर) जीत कर स्वराज्य बढ़ाया, (२) पुरानी राजधानी को अपने वृद्ध राज्य की शान के अनुसार न देख कर नवीन 'राजगृह' बनाना आरम्भ किया ॥

(३) बौद्धदेव और जैन मत के पोषक 'महावीर' ने इसी के समय में स्वमत बलपूर्वक फैलाये और यह प्रजा समेत बौद्ध हो गया ॥

(४) राज्य की स्थिति बढ़ाने के लिये दो राजकुमारियों से विवाह किया:-अति पुरातन कोशल राज्य की कन्या से और वैशाली (तिर्हुत) राजकन्या से (५) वैशाली राजकुमारी से उत्पन्न पुत्र अजातशत्रु ने इसे वृद्धावस्था में [illegible] स्वयम् राज्य करना आरम्भ किया। इस प्रकार [illegible] [illegible] मगध की शक्ति को इस राजा ने बढ़ा दिया ॥

४—अजातशत्रु—(१) अपने पिता का घात करके जिस ने राज्य प्राप्त किया हो वह अपने नाना के राज्य छीनने में कब डर सकता था ? कोशल और वैशाली दोनों को एक एक करके [illegible] कर लिया और इस प्रकार स्वराज्य बहुत विस्तृत तथा स्थिर किया ॥

(२) पाटलिपुत्र—(पटना) का कोट बनाया। इस नगर को कुसुमपुर या पुष्पपुर भी कहते हैं। यह नगर इसके वंशियों की राजधानी बना ॥

(३) बुद्ध देव का परिनिर्वाण इस के समय में हुआ और बुद्ध की मृत्यु के कुछ वर्ष पूर्व ही कोशल राज्य के [illegible]

११-४

विरुधक ने शाक्यों पर आक्रमण कर के उन्हें सर्वथा नाश कर दिया ।

(४) दारा का आक्रमण—अजातशत्रु के पिता के समय या इसी के समय में ईरान के बादशाह 'दारा' ने ५०० ई० पूर्व के लगभग भारत पर आक्रमण किया, सिन्धु तक का सारा प्रान्त ईरान-शासन में मिला लिया गया, ईरान की २० प्रान्तों में से यह सेट्रपी (प्रान्त) सब से धनाढ्य समझी जाती थी, केवल इसी प्रान्त से सारे ईरानी राज्य की आधी आय होती थी। जिस की मात्रा आज कल के हिसाब से १॥ से २ क्रोड़ रुपये होती है। कब तक यह प्राप्त ईरानियों के आधीन रहा-ठीक नहीं कह सकते परन्तु इतना निश्चय है कि जब दो सौ वर्ष पश्चात यूनानियों ने हमला किया, तब यह प्रान्त भारतियों के शासन में था ॥

(५) इसी दारा के एक सेनापति 'स्काईलैक्स' ने किश्तियों का बेड़ा बना कर सारा सिन्धु पार किया और अरबी समुद्र से हो कर ईरान पहुंचा। किसी सेना की ओर से अरबी समुद्र में यह पहिली ज्ञात यात्रा थी ॥

(६) अजातशत्रु के पश्चात् अन्य ४ राजा हुए जिन्हों ने ३५० वर्ष ईसा पूर्व तक राज्य किया, इन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं परन्तु इतना अवश्य है कि वे मगध राज्य की सीमा तथा शक्ति को अति विस्तृत करते रहे ॥

नन्दवंश (३७०—३२१ ई० पूर्व)

४ — वायु पुराण के अनुसार यह वंश शूद्र राजाओं का था जो अति लोभी और प्रजा के दुःख दायी थे. इन में 'नव नंद' हुए। जिन का राज्यकाल केवल ४० वर्ष ही कह सकते हैं। यद्यपि राज्य में शीघ्र परिवर्तन आते रहे और प्रजा भी इन को घृणा की दृष्टि से देखती थी तथापि जब इन के समय में यूनानी सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया तो इन की शक्ति बढ़ी हुई थी॥

अन्तिम नन्द के पास २०००० घुड़ सवार, २००० रथ, ४००० हाथी, २ लाख पयादे थे और इन के धन तथा सैन्य शक्ति से सिकन्दरी सेना भी घबरा कर वापिस चली गई, परन्तु इस वंश के एक राज्य कुमार चन्द्र गुप्त ने अपने ब्राह्मण मन्त्री 'चाणक्य' की नीति निपुणतायुक्त सहायता से मगध राज्य प्राप्त किया।

अब सिकन्दर की सवारी का हाल लिखा जाता है।

महान् पुरुष सिकन्दर का आक्रमण ॥

(३२६—३२३ ई० पूर्व)

शत्रु को मगध में लाकर नन्दवंश का सर्वथा नाश करे, अन्य राजे तथा जातियां भी परस्पर युद्ध करती रहती थीं, ऐसी दशा में सिकन्दर के लिये विजय प्राप्त करना कठिन न था, इस कारण वह विजेता हिन्दू-कुश से सतलुज तथा सिन्धु के दहाने तक का सारा देश जीतता गया॥

८—तक्षशिला, मंगलौर, महावन—भिन्न भिन्न प्रकार शस्त्रों तथा फ़ौलाद के कवचों से सुसज्जित, घोर संग्रामों के विजेता, महानुभवी, धीर, वीर ५०००० सैनिकों को साथ ले कर सिकन्दर भारत में आया, बहुत से छोटे २ राजाओं ने युद्ध के बिना आधीनता स्वीकार कर ली, तक्षशिला (एसनधब्दाक) का राजा अट्टम्भी उन में से एक था। आर्य्यवर्त के इस कुपुत्र ने अपने शत्रु, जेहलमाधीश 'पोरस' के नाशार्थ सिकन्दर को सर्व प्रकार की सहायता देने को कहा और अपना दुष्ट प्रण पूरा किया। सिकन्दर ने स्वात नदी पर स्थित 'मंगलौर' और महावन के अजेय दुर्गों को जीत लिया, किन्तु आर्य्यों ने यहां पर जो वीरता दिखाई, उस से सिकन्दर को ज्ञात होगया कि भारत का जीतना कोई सुगम कार्य्य नहीं,

९—पोरस का-परास्त होना—देश की लाज रखने वाले मध्य पंजाब के वीर राजा, पोरस ने जेहलम की नदी पर सिकन्दर की सवारी को रोकने का साहस किया, वीरतर

सिकंदर घोर अंधकार,अति वर्षा तथा नदी की बाढ़ की परवाह न करके अर्ध रात्रि के समय जब पोरस की सेना अचेत थी पार हो गया और प्रातः काल ऐसी वीरता से लड़ा कि पोरस का पराजय हुआ और वह ६००० क्षत्रियों समेत पकड़ा हुआ सिकंदर के पास लाया गया। सिकन्दर ने उस से पूछा कि 'हे क्षत्रिय! तुम्हारे साथ कैसा वर्त्ताव किया जाये"। पोरस ने तुरन्त उत्तर दिया "जैसा राजा गण राजाओं के साथ किया करते हैं"। इस उत्तर से सिकंदर प्रसन्न होगया और पोरस को केवल उस का राज्य ही वापिस न दिया प्रत्युत यहां तक उदारता दिखाई कि जेहलम से रावी तक जिन चालीस नगरों ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की उन का अधिपत्य भी पोरस को दे दिया। उस से बढ़ कर, जब सिकन्दर वापिस जाने लगा तो सतलुज तक के इलाके का उसे राजा बना गया। इस इलाके में २००० बड़े नगर थे और ७ स्वतन्त्र जातियां राज्य करती थीं, देश में शान्ति रखने के लिये तक्षशिला के राजा अम्भी को सिन्ध और जेहलम का मध्यवर्त्ती इलाका दिया। फिर उन दोनों की परस्पर मित्रता भी करा दी॥

१०—सतलुज से लौटना—मध्यवर्त्ती देश स्वाधीन करता हुआ सिकंदर सतलुज तक बढ़ा और चन्द्रगुप्त की प्रेरणा से मगध में प्रवेश करता, परन्तु युनानी सेना ने आगे बढ़ने से

इन्कार किया क्योंकि आठ वर्षों से निरंतर देश के बाहर रह कर संग्रामों से सैनिकों का मन खट्टा होगया था, जब सिकंदर ने सेना की यह दशा देखी तो उसे बहुत शोक हुआ किन्तु क्या कर सकता था ? सतलुज के पार अपने स्मारक बना कर जेहलम नदी की ओर वापिस हुआ। वहां नौकाओं के बेड़े पर कुछ सेना चढ़ा कर सिंधु के दहाने की ओर चल पड़ा॥

(११)-पश्चिमी पंजाब का विजय-पंजाब में उस समय नदियों के मध्यवर्त्ती प्रान्तों में सिबोई, अगलासोई, मलोई आक्सीडाकोई आदि जातियां रहती थीं, वह परस्पर मिल कर सिकंदर का सामना करना चाहती थीं परंतु पहिली दो जातियों को सिकंदर ने अपनी बुद्धिमत्ता से न मिलने दिया और वारी २ दोनों को जीत लिया। अगलासोई जाति के २०००० वीर नर नारियों ने बालकों सहित अपने आप को अग्नि में जला दिया ताकि वे शत्रु के हाथ में न पड़ें। मलोई और आक्सीड्राकोई जातियां भी परस्पर न मिल सकीं क्योंकि संयुक्त सेना का सेनापति किस जाति का हो—इस बात पर झगड़ा हो गया। सिकंदर ने इस झगड़े से लाभ उठा कर मलोई का नाश किया यद्यपि उन्हें जीतते हुए सिकंदर को मुहलक घाव लगे और अवश्यमेव वहीं वह मर जाता यदि सेना उस की सहायता में न आ पहुंचती। हा ! आर्य्यवर्त की सुवर्ण भूमि को फूट ने सदैव

यवनों से लुटवाया और फिर भी आर्य्य संतान ने शिक्षा ग्रहण न की। यदि मलोई और आक्सीड्राकोई में ही फूट न होती तो दोनों जातियों के पास ६०००० पदाति और १०००० अश्वारोही और ७०० से ६०० तक रथ युद्धार्थ विद्यमान थे। उन वीरों का परास्त करना सिकंदर के लिये अति कठिन हो जाता ॥

१२—सिन्ध का विजय—सिकंदर के समय सिंध की राजधानी अरोर थी, वहां का 'मूसीकैनो' नामी राजा बड़ा शक्तिशाली और वीर योद्धा था, युद्ध के बिना सिकन्दर की आधीनता उस ने स्वीकार न की। यूनानियों को सिन्धी आर्य्यों के रीति रिवाज अति आश्चर्य दायक प्रतीत हुए और २२०० वर्षों के बीतने पर हमें भी आश्चर्य दायक प्रतीत होते हैं क्यों कि (१) मित भोजी होने से १३० वर्षों तक जीते रहते थे (२) सोना चांदी की आधिक्यता होते हुए भी वे उन्हें प्रयुक्त न करते थे क्योंकि यह धातुयें दुःख का हेतु तथा असमान धन लाने वाली समझी जाती थीं। (३) वहां दासत्व की प्रथा न थी। (४) ग्रामों तथा नगरों के लोग एक स्थान पर मिल कर भोजन करते थे, प्रायः खाद्य पदार्थ शिकार से प्राप्त किये होते थे। (५) वैद्यक के अतिरिक्त वे किसी विद्या का उपार्जन न करते थे। (६) वहां न्यायालय न थे क्योंकि परस्पर

विवाद न होते थे। लोग उस समानवाद में पूर्णतया रहते थे जिस की ओर वर्तमान संसार जाना चाहता है ॥

१३—सिकन्दर की सेना का जल और स्थल से लौटना—इस प्रकार सिन्ध जीत कर सिकन्दर लौटने को तय्यार हुआ। नियार्कस को आरवी समुद्र के मार्ग से ईरान पहुंचने की आज्ञा दी। वलोचिस्तान के जंगलों में से होता हुआ सहस्रों कष्ट उठा कर सिकन्दर ईरान पहुंचा। यह कष्ट नवीन विजयों से शीघ्र ही दूर हो जाते यदि ३२३ ई० पूर्व में सिकन्दर की अकाल मृत्यु न हो जाती ॥

१४—सिकन्दर के विजय का प्रभाव—याद रखना चाहिये कि यद्यपि सिकन्दर अत्यन्त वीर, नीतिज्ञ, निडर, स्वभावतः नृसिंह था तथापि उस समय के भारतीय भीरू न थे, केवल फूट से भारत पतित हो रहा था। फिर भी भारतीयों ने जिस अद्भुत वीरता के साथ स्थान २ पर सिकन्दर का सामना किया वह किसी अन्य जाति ने न किया था, हिन्दूकुश से सिन्ध तक पहुंचने में विद्युत के समान चलने वाले सिकन्दर को केवल १० मास लगे और पुनः सिन्ध और सतलुज के मध्यवर्ती देश को जीतने के लिये १९ मास व्यतीत हुए। इस थोड़े समय में यूनानी लोग अपनी सभ्यता का कोई चिन्ह न छोड़ सकते थे। यदि सिकन्दर जीता रहता और यूनानी सेना

तो शूरवीर, बुद्धिमान, नीतिज्ञ, देशहितैशी चंद्रगुप्त ने इस देश को यवन रहित करने के लिये बहुत सेना एकत्रित की और पञ्जाब से यवनों को निकाल कर स्वयं निष्कण्टक राज्य करने लगा, फिर महापद्म को प्रजा अप्रिय देख कर कुटिलमति चाणाक्य मंत्री की सहायता से ३२१ ई० पूर्व में मगध का राज्य प्राप्त कर लिया।

३—चन्द्रगुप्त का कार्य्य—यूनानियों को पञ्जाब से निकाल दिया।

२— अपना राज्य सारे उत्तरीय भारत में विहार से ले कर हिन्दुकुश तक फैलाया॥

३—सिन्ध नदी के उस पार का देश यूनानियों से छीन लिया, वलिक जब पश्चिमीय एशिया के अधिपति, सिकन्दर के उत्तराधिकारी सैल्यूकस ने सिकन्दर की भांति विजय करने के लिये भारत पर ३०५ ई० पू० आक्रमण किया तो चन्द्रगुप्त ने उसे पराजित कर के उस का कुछ प्रान्त स्वाधीन किया, फिर दोनों ने सन्धि कर ली, सैल्यूकस ने स्वपुत्री चन्द्रगुप्त को दी और राजा ने ५०० हाथी यवन को दिये तथा एक यूनानी दूत अपने दर्बार में रखना मान लिया॥

४—चन्द्रगुप्त के पास ७ लाख से अधिक जल तथा स्थल सेना थी जिस का अत्युत्तम प्रबन्ध था॥

मनुष्य होते हैं। उन पञ्चायतों के काम शिल्प निरीक्षण, विदेशियों का सत्कार, वाणिज्य व्यापार की वृद्धि, देश के माल की रक्षा, वस्तुओं पर कर लगाना, जन संख्या करना आदि है"॥

५—जन संख्या—जन संख्या केवल कर लगाने के लिये ही नहीं की जाती थी प्रत्युत इस लिये भी होती थी कि प्रजा के जन्म तथा मृत्यु की संख्या से राज्य परिचित हो। चन्द्रगुप्त के समय में जन संख्या लेने की रीति अत्यन्त अद्भुत है। पाश्चात्य लोग इस पर विश्वास भी नहीं कर सकते, क्योंकि योरुप में थोड़े से वर्षों से ही इस रीति का प्रचार हुआ है और उस में भी अभी तक अनेक त्रुटियां हैं। उस समय के सभ्य देशों में कहीं भी यह रीति प्रचलित न थी। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के राज्य की महिमा प्रकट होती है।

६—सेना प्रबन्ध—सेना प्रबन्ध की उत्तमता को देख कर बहुत ही आश्चर्य होता है। जल और स्थल सेना के तीस पदाधिकारी छः उपसभाओं में विभक्त होते थे!

I जंगी जहाज़ों के सेनापति के सहायतार्थ एक उपसभा॥

II सेना की सामग्री को ख़रीदने का निरीक्षण करने तथा युद्ध क्षेत्र में सामग्री पहुंचाने के लिये जो प्रधान अध्यक्ष होता था उस की सहायता के लिये दूसरी उपसभा। प्रबन्ध का यह

विभाग भी आश्चर्यदायक है। इस विभाग के न होने से ही हिन्दु राजाओं को विदेशियों से परास्त होना पड़ा। परंतु नीतिज्ञ बुद्धिमान् चन्द्रगुप्त के समय इस का पूर्ण प्रबन्ध था। आज कल आंगल प्रबंधकर्त्री सभा में भी इस विभाग का एक सचिव है॥

III पैदल सिपाहियों के सब प्रकार के प्रबन्धार्थ तीसरी उपसभा॥

IV अश्वारोहियों के प्रबंधार्थ उपसभा।

V रथारोहियों के प्रबंधार्थ उपसभा।

VI गजारोहियों के प्रबंधार्थ उपसभा।

७ – नगरों तथा सेनाओं के प्रबन्धकर्ताओं के अतिरिक्त तीसरी प्रकार के पदाधिकारी भी होते थे जो कृषि का, जलसेचन का, जंगलों तथा देहातों का प्रबंध करते थे। भूमि को नापते थे और नहरों द्वारा खेतों को पानी देते थे। शिकार खेलने के नियम बनाते थे और आध २ कोस पर मार्ग परिमाण दिखाने वाले पत्थर लगवाते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि चंद्रगुप्त के समय की सभ्यता उच्चश्रेणी की थी। ऐसी सभ्यता तक पहुंचने के लिये सहस्रों वर्षों की आवश्यकता है और चूंकि चंद्रगुप्त से सहस्रों वर्ष पूर्व भी एक अनुपम सभ्यता के चिन्ह संस्कृत साहित्य में समुपलब्ध होते हैं अतः हमें मानना पड़ेगा कि भारत वासियों ने स्वयम् उस विलक्षण तथा अद्वितीय सभ्यता का

विकास किया होगा न कि मिश्रयों वा युनानियों से उसे सीखा था ॥

८—आर्यों का आचार तथा सभ्यता:— भारत के शान्ति प्रिय तथा न्याय प्रिय निवासियों का मैगस्थनीज़ जो वर्णन करता है उसे प्रत्येक हिन्दू अभिमान से पढ़ सकता है "वे बड़े सुख से रहते हैं और सरल तथा मितव्ययी होते हैं। वे यज्ञों को छोड़ कर कभी मद्यपान नहीं करते। उन का मद्य यव (जौ) के स्थान में चावल से बनाया जाता है। उन का सीधापन और प्रतिज्ञा पालन इसी से स्पष्ट है कि वे बहुत ही कम न्यायालय में जाते हैं। गिरवी रखने तथा अमानत के विषय में कभी दावा ही नहीं होता और न उन्हें राजमुद्रा (स्टाम्प) वा साक्षी की ही आवश्यक्ता होती है। वे अमानत रख देते हैं और दूसरे पर विश्वास रखते हैं। वे अपने गृहों वा सम्पत्ति को अरक्षित छोड़ जाते हैं। इस से उन के स्वभाव में धीरता विदित होती है। वे सत्यता और धर्म्म को समान दृष्टि से देखते हैं इसी लिये वे वृद्धों को यदि विशेष बुद्धिमान् न हों तो विशेष अधिकार नहीं देते। इस के अतिरिक्त आर्य्य लोग दूसरों को दास नहीं बनाते, स्वदेशियों को भला वे दास कब बनाने लगे हैं? उन में चोरी कभी २ ही सुनी जाती है" ॥

९—शिल्पकारी:—

यह दर्शाया जा चुका है कि भारती शिल्प की उत्तम

वस्तुएं ईसा के एक सहस्र वर्ष पूर्व फ़िनिशिया के व्यापारियों को और पश्चिमीय एशिया तथा मिश्र के बाज़ारों में परिचित थीं। मैगस्थनीज़ कहता है कि भारतवासी शिल्प में बड़े ही चतुर थे जैसा कि स्वच्छ वायु में रहने वाले और अति उत्तम जल पीने वाले लोगों से आशा की जा सकती है। उन के कपड़ों पर सुनहरी काम होता है और उन में रत्न जड़े जाते हैं, वे सर्वोत्तम मलमल के फूलदार कपड़े भी पहिनते हैं। उन के पीछे नौकर लोग उन पर छाता लगा कर चलते हैं क्योंकि वे लोग सुन्दरता पर बहुत ही ध्यान रखते हैं और अपनी सुन्दरता बढ़ाने के लिये सर्व प्रकार के उपाय करते हैं॥

१०—विदेशी व्यापार—दार्शनिक काल में व्यापार की उच्चता दिखाई जा चुकी है। यद्यपि यूनान और रोम उत्तरोत्तर सभ्य होते हैं तथापि भारत के समान अच्छे शिल्प पदार्थों के बनाने में चतुर नहीं हुए। हाथी दान्त, नील, टीन, शक्कर, रेशमी वस्त्र और तरह २ के मसाले यूनान में भारत वर्ष से ही जाते थे। परन्तु रोम में पूर्वोक्त पदार्थों के अतिरिक्त मलमल, छींट, लट्ठा, औषधियां, सुगन्धित पदार्थ, लाख, फ़ौलाद, लाल, हीरे, नीलम और अन्य भिन्न भिन्न प्रकार के रत्न तथा मोती भारत वर्ष से जा कर बिकते थे। भारतीय रेशमी वस्त्र जिन में ज़री और पच्चीकारी के काम होते थे,

अति प्रसिद्ध थे। रोम के समस्त नर नारी ऐसे शौक से इन वस्त्रों को पहिनते थे कि सोने के भाव पर वे वस्त्र बिका करते थे। ऐतिहासिक प्लिनी कहता है कि रोम का असंख्य धन भारत वर्ष में जाया करता था। कम से कम उस समय चालीस लाख पौंउण्ड रोम वाले भारत वर्ष में भेजा करते थे। एक बार इस व्यापार से रोम को ऐसा धक्का लगा कि वहां का वणिज्य व्यापार बिलकुल डूबने लगा था। तब वहां वालों ने नियम (कानून) बना कर भारतवर्ष के माल का बहिष्कार कर दिया। इस अत्युन्नत व्यापार के करने के लिये आर्यों के अपने बड़े भारी जहाज़ थे और उन के रक्षार्थ सामुद्रिक सेना थी—यह हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। जहां सामुद्रिक मार्ग से व्यापार होता था, वहां स्थलीय मार्ग से भी व्यापार नहीं छूटा था। योरुप तथा चीन के साथ स्थलीय मार्ग से भी व्यापार था। काबुल, बलख़, काशगर, गोबी, खोतान से होते हुए अढ़ाई हज़ार मीलों की यात्रा कर के व्यापारी गण चीन की राज्यधानी पीकन में पहुंचते थे और चीनी यात्री इन्हीं मार्गों से भारतवर्ष में आते थे॥

११—आर्थिक सभ्यता—परन्तु स्ट्रेबो ने जिस धूम धाम की यात्रा का वर्णन किया है वह बड़ा ही मनोरञ्जक है और ऐसी धूम धाम मैगस्थनीज़ ने भी पाटलिपुत्र की गलियों में अवश्य देखी होगी। ह्यूनसांग ने भी सप्तम शताब्दी ईस्वी में यही साक्षि दी है। " त्योहारों में उन के जो यात्रा प्रसंग

निकलते हैं उन में सुवर्ण और चान्दी के आभूषणों से सज्जित बहुत हाथियों की पांक्ति होती है। बहुत सी गाड़ीयां होती हैं जिन में चार २ घोड़े अथवा कई जोड़े बैल जुते रहते हैं। उस के उपरान्त पूरे पहनावे में बहुत से नौकर चाकर रहते हैं जिन के हाथों में सुवर्ण के बड़े बड़े बर्तन, कटोर, मेज़, ताम्र के प्याले और नाना विध पात्र जिन में से बहुतों में पन्ने, फिरोज़, लाल इत्यादि रत्न जड़े रहते हैं, सुन्दर २ कामदार वस्त्र, जंगली जानवर तथा भैंसे, चीते, पालतू सिंह और अनेक प्रकार के परों वाले और मधुर गीत गाने वाले पत्ती रहते हैं" ॥

१२—पाटलिपुत्र—महाराज चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र नौ मील लम्बी और १॥ मील चौड़ी थी उस के चतुर्दिक् अत्यन्त दृढ़ लकड़ी का ऊंचा परकोटा था और आने जाने के लिये उस में ६४ फाटक थे और परकोटे पर ५७० बुर्ज नगर रक्षार्थ बने हुए थे। शोण (सोन) नदी के जल से भरी जाने वाली एक खाई परकोटे के बाहर अत्यन्त लम्बी चौड़ी थी। राजभवन यद्यपि लकड़ी का बना हुआ था तथापि सौंदर्य की अवधि था, उस समय के सभ्यदेशों–ईरान तथा यूनान में ऐसा उत्तम भवन नहीं मिल सकता था। महल के स्तम्भों पर सोने के पत्र चढ़े थे और उन पर अंगूरों की लताओं के चित्र और चित्र विचित्र अत्यन्त मनोहर चांदी के पक्षिगण खुदे हुए थे।

पूर्वोक्त भवन एक बड़े उद्योन में था जिस में सुन्दर वृक्ष और लतायें लहलहाती हुई अपूर्व शोभा बढ़ा रही थीं। नाना विध रङ्ग की मछलियां तथा अनेक प्रकार के जलचर सरोवरों की शोभा बढ़ा रहे थे ॥

१३—चन्द्र गुप्त का दर्बार—दर्बार की छवि भी अपूर्व थी, छैः २ फुट के चौड़े चित्रकारी युक्त सुवर्ण पात्र, मनोहर चित्रकारी वाली कुर्सियां ओर मेज़ें, अनेक प्रकार के निरतिशय सुन्दर रत्नों से जटित ताम्र के पात्र और पच्चेकारी सिलमे सितारे वाले विविध वर्णों के अनेक वस्त्र दर्बार की शोभा को बढ़ाते थे। राजा सोने की पालकी पर चढ़ कर आते थे जिस में मोतियों की लाड़ियां लटकती थीं। महाराज अत्यन्त महीन मलमल जिस पर सुवर्ण तथा चांदी की ज़री का काम किया होता था, पहिना करते थे और कभी २ मनुष्य तथा पशुओं की लड़ाइयां तथा घुड़दौड़ें भी देखा करते थे। पुर्वोक्त वर्णन एक विदेशी ऐतिहासिक की लेखनी से लिखा गया है। यदि इस का मुकाबला लंका, अयोध्या तथा पाण्डवों के दर्बारों से किया जावे तो पुरातन कवियों के वर्णन में कोई अत्युक्ति प्रतीत नहीं होती। इस वर्णन से पूर्ण विश्वास होता है कि इस से सहस्रों वर्ष पूर्व ऐसी अथवा इस से भी अधिक अच्छी सभ्यता तथा उन्नति भारतवर्ष में विद्यमान थी ॥

१४—विंदुसार—चन्द्रगुप्त के पश्चात् उस का पुत्र विन्दुसार २५ वर्षों तक राज्य करता रहा (१) उस ने जहां अपने पिता के जीते हुए देशों में शांति का राज्य रखा वहां साथ ही मद्रास तक दक्षिण का प्रान्त विजय कर लिया (२) २८० ई० पूर्व सैल्यूकस का भी देहान्त हो गया। उस का पुत्र आन्टियोकस सार्टर पश्चिमी एशिया का महाराज बना, उस ने अपने पिता की नीति स्थिर रखी और अपना दूत विन्दुसार के दर्बार में भेजा, इन दोनों महाराजों में परस्पर मित्रता थी। विन्दुसार ने सार्टर से अंगूरी शराब और हंजीरें और एक प्रोफ़ेसर भी मंगाया (३) मिश्र का बादशाह उस समय टालमी फ़िलेडेलफ़स था उस ने भी विन्दुसार के साथ मित्रता की और अपना दूत डियानीसियस भारतीय दर्बार में भेजा, इस प्रसिद्धि और यत्न से २७२ ई० पू० तक राज्य किया ॥

अशोक २७२-२३२ ई० पूर्व ॥

१५—अशोक की कीर्ति का रहस्य—अशोक महाराज का नाम इतिहास में सुवर्णाक्षरों से अंकित है। इस का कारण केवल उस का पराक्रम अथवा राज्य विस्तार ही नहीं है परन्तु अपने पैत्रिक धर्म को भूल कर अपनी प्रजा को एक नवीन धर्म पथ पर लाने, उस की उन्नति के लिये परिश्रम करने, उस की स्वतः धर्म निष्ठा व धर्म श्रद्धा के होने और स्वतः स्वार्थ त्याग

का एक उत्कृष्ट उदाहरण होने और ऐसे ही अनेक प्रकार के उत्तम कर्म करने से उस की कीर्ति नाद आज दो सहस्त्र वर्षों से प्रतिध्वनित हो रहा है। भारत वर्ष के किसी सम्राट् का यहां तक कि महाराजा विक्रमादित्य का भी नाम ऐसा विख्यात नहीं है। उत्तरीय रूस से लेकर लंका तक उस का नाम गृह गृह में पूजित होता है। ऐसा क्यों न हो जब कि अन्य किसी सम्राट् ने सत्य, पुण्य तथा धर्म के उत्साह के साथ संसार के इतिहास पर ऐसा प्रभाव नहीं डाला॥

१६—जीवनी—यह प्रतापी राजा एक ब्राह्मणी रानी सुभद्राङ्गी से उत्पन्न हुआ था। युवावस्था में यह अति क्रूर और उपद्रवी था। पिता ने रुष्ट हो कर उस को तक्षशिला के विद्रोह को शान्त करने के लिये भेज दिया। जब वहां यह कृत कृत्य हुआ तो उज्जयनी में प्रान्तिक अधिकारी (गवर्नर) हो कर रहा। पिता का देहान्त होने पर राज्य गद्दी पर बैठा और यह सर्वथा असत्य है कि उस ने अपने भाइयों को मार कर राज्य प्राप्त किया। राज्याभिषेक के नवम वर्ष और कलिङ्ग देश के विजय करने के उपरान्त ही बौद्ध धर्म को उस ने ग्रहण किया। कलिङ्ग युद्ध की निर्दयिता, घात तथा दासत्व ही थे जिन्हों ने कि इसे वास्तविक दयालु बना दिया और गौतम बुद्ध के दया पूर्ण सात्विक धर्म का ग्रहण करने के लिये उत्साहित किया

तथा "चण्ड" उपनाम के स्थान पर "देवानाम् प्रियः" की उपाधि प्राप्त कराई॥

१७--कलिङ्ग का विजय--२६१ ई० पू० जिस विजय के पश्चात् अशोक बौद्ध बना उस का संक्षिप्त वृत्तान्त यह है: महानदी और गोदावरी के मध्यवर्ती प्रान्त का नाम कलिङ्ग देश था। आज कल इसे उत्तरीय सर्कार कहते हैं॥

कलिङ्ग-राजा के पास ६०००० शूरवीर पदाति, १००० अश्वारोही, ७०० हाथी होते हुए भी मगधाधीश के मुकाबले में वह अति निर्बल था। बलवान् अशोक ने उस के राज्य पर आक्रमण किया। बहुत घोर संग्राम हुए जिन में प्रतापी अशोक का विजय हुआ। इस युद्ध में एक लाख मनुष्यों का वध हुआ। डेढ़ लाख मनुष्यों को दासत्व में पकड़ा गया, फिर युद्ध से ऐसा दुष्काल तथा अनेक प्रकार के ऐसे रोग भी उत्पन्न हुए कि लाखों मनुष्य मृत्यु के भेट हो गए। इस असीम दुःख से अशोक का हृदय पिघल गया, उसे अत्यन्त शोक, पश्चात्ताप तथा ग्लानि हुई, दया की लहरें उस के हृदय में उठने लगीं। तब उस ने देश का विजय सर्वथा त्याग देने की प्रतिज्ञा करली और बौद्ध हो कर मनुष्यों के हृदयों का विजय सत्य, प्रेम तथा धर्म द्वारा करना चाहा। इसी दया धर्म के कारण उस का नाम संसार में अमर हो गया है॥

१८—अशोक का राज्य विस्तार–(क) अशोक के समय में राज्य का जितना विस्तार था उतना भारतवर्ष के ज्ञात इतिहास में अन्य किसी महाराज के समय प्रतीत नहीं होता, जैसे: पश्चिमोत्तर में हिन्दूकुश तक और पूर्व में बङ्गाल, कामरूप, कलिङ्ग तक और दक्षिण में कृष्णा और गोदावरी के मध्यवर्त्ती अन्ध्र राज्य तक और पश्चिम में काठियावाड़ सिन्ध बलोचिस्तान तक। इस प्रकार अफ़गानिस्तान का बहुत सा भाग, काश्मीर, (प्रसिद्ध राजधानी श्री नगर को उसी ने बसाया था) सवात, नैपाल, आसाम आदि देशों से ले कर कृष्णा नदी तक का सारा भारत वर्ष उस के आधीन था॥

(ख) कई स्वतंत्र जातियां जैसे चोल, पाण्ड्य और केरल-पुत्र उस का सम्राज्य मानती थीं॥

(ग) पांच प्रसिद्ध यवन राजाओं के साथ भी उस की मित्रता थी जिन के देशों में उस ने अपने उपदेशक भेज कर बौद्ध धर्म का प्रचार किया॥

१९—राज्य व्यवस्था—अशोक ने अपने राज्य में नीति प्रचारार्थ कुछ विशेष योजना की थी, ऐसा उस के पांचवें तथा छठें आदेश से विदित होता है (१) "आज तक अधिकारियों ने बहुत अनीति चलाई" इस बात को न सह कर उस ने लोगों की नीति पर कड़ी दृष्टि रखने के लिए "धर्म महा मात्रा" नामक अधिकारी नियत किए। उन्हों ने सब प्रकार के नीच ऊंच

श्रेनी के लोगों में भेद भाव न रखते हुए उन के सदाचार पर दृष्टी दी और धर्म उपदेशों से सत्य मार्ग में लाने का प्रयत्न किया॥

(२+३) इस के अतिरिक्त व्रचभूमिक और रज्जुक नामी दो पदावियों के कुछ अधिकारी थे जो लोगों के चाल चलन की देख भाल करते थे (४) रज्जुकों की एक सभा भी हुआ करती थी जिस में धार्मिक विषयों पर विचार हुआ करता था। (५) अशोक ने अपने प्रत्येक प्रान्त में एक एक अधिकारी नियत किया जिस का नाम प्रादेशिक था (६) प्रादेशिक के कार्य्य की मीमांसा करने के लिए महामात्त अमात्य नियत किया गया। अत्यावश्यक कार्य्यों को यह अधिकारी देखता था। (७) सीमा प्रान्त के लड़ाई झगड़े निपटाने के लिए तथा उस के संरक्षणार्थ "अन्तमहामात्रा" नामक आधिकारी नियत था (८) अन्तः पुर की व्यवस्था देखने के लिए खास अधिकारी स्वतंत्र रहते थे। उन को 'इतिहृयक महामात्रा' कहते थे। अशोक की राज्य व्यवस्था विषयक वर्णन इस से अधिक नहीं मिलता, यह दुःख की बात है क्योंकि दो सहस्र वर्ष पूर्व हमारे प्रभु किस प्रकार राज्य करते थे--यह बात जानने का एक उत्तम साधन हमें मिल जाता, साथ ही वर्तमान समय की राज्य व्यवस्था से तुलना करने का भी अवसर मिलता॥

२०—भिन्न भिन्न स्थानों में बौद्ध धर्म—अशोक के समय में भिक्षुकों की एक सभा हुई। जिस में बौद्ध धर्म का संशोधन हो कर एक मत स्थित हुआ वहीं अब तक सिंहलद्वीप में प्रचलित है | अशोक के पीछे जैसे राज्य की बुरी अवस्था हुई वैसे ही बौद्ध धर्म में भी बखेड़े उत्पन्न हो कर नाना पन्थ और भिन्न २ विचार उपस्थित हो गये। बौद्ध धर्म का यह विकृत स्वरूप अब तक चीन, जापान, तिब्बत इत्यादि देशों में दीख पड़ता है। धर्म शसात्रों के संशोधन के आतिरिक्त, धर्म प्रचार का उपाय भी उस सभा ने निश्चित किया, वह यह था कि देशान्तरों में उपदेशक भेज कर धर्म प्रचार किया जाए, महाराज ने उपदेशकों के भेजने में महा प्रेम दिखाया हिमालय के देश--नैपाल और काश्मीर से लंका तक, ब्रह्मदेश से महाराष्ट्र तक और पश्चिम में ईरान, सीरिया, यूनान, मिश्र तक प्रचारक भेजे गये । यह तो एक तुच्छ साधन प्रतीत होता है जब हम उन महा साधनों को देखते हैं जो बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अशोक ने उपयुक्त किये। वे संक्षेप से यह हैं :—

(१) अपने परिवार सहित भिक्षुक हो कर देश देशांतरों में भ्रमन करते हुए स्वयं धर्म प्रचार किया ।

(२) प्रजा को धर्म परायण करने के लिये भिन्न २ प्रकार के कर्म चारियों को नियत किया ।

कथायें भी इसी मत से ग्रहण की हैं। इंगलैण्ड में ड्रूइड्ज़ नामी पुरोहित बौद्ध थे, इस प्रकार ईसा से कुछ वर्ष पहिले इंग्लैण्ड में भी बौद्ध मत का प्रचार हुआ। उत्साही बौद्ध प्रचारकों ने पाताल देश में भी यह सात्विक धर्म प्रचार करना अच्छा समझा और अवश्य उन के दल के दल वहां गये होंगे क्योंकि मैकसीको देश में बौद्धों के खण्डरात और मूर्तियां मिली हैं। अशोक को रोम के महाराज कान्स्टैन्टाइन से उपमा दी जाती है क्योंकि जैसे योरुप में कान्सन्टैन्टाइन ने ईसाई धर्म को राज धर्म कर के प्रचलित किया, वैसे ही अशोक ने भी ४०० वर्ष पहिले बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। परंतु जिस प्रकार अशोक ने अपने पुत्र, पुत्री तथा भाइयों को भिक्षुक बना कर और स्वयं भिक्षुक हो कर उस धर्म का प्रचार किया उस का कोई उदाहरण आज तक संसार में नहीं मिलता॥

२१—अशोक की सूचनाएँ—अशोक की चौदह प्रसिद्ध सूचनाएं हैं जिन के द्वारा उस ने (१) पशुओं के वध का निषेध किया (२) मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सा का प्रबन्ध किया (३) पांचवें वर्ष एक धार्मिक उत्सव किए जाने की आज्ञा दी (४) धर्म की शोभा प्रगट की (५) धर्म्म महामात्रों और उपदेशकों को नियत किया (६) सर्व साधारण के सामाजिक और गृह सम्बंधी जीवन के आचरणों के सुधार के लिये आचार

शिक्षक नियत किए (७) सब के लिए धार्मिक अप्रतिरोध प्रगट किया (८) प्राचीन समय के हिंसक कार्यों के स्थान पर धार्मिक सुखों की प्रशंसा की (९) धार्मिक शिष्य और सदुपदेश देने की महिमा लिखी (१०) सत्य धर्म के प्रचार करने की कीर्ति और सत्य वीरता की प्रशंसा की (११) सब प्रकार के दानों में धार्मिक शिक्षा के दान को सर्वोत्तम कहा (१२) सार्वजनिक सम्मति के सम्मान और अचार के प्रभाव सम्बंधी सिद्धान्तों पर अन्य धर्म के लोगों को अपने मत में लेने की इच्छा प्रगट की (१३) कलिंग के विजय का उल्लेख किया और उन पांच यूनानी राजाओं तथा भारत वर्ष के राज्यों के नाम लिखे जहां कि धर्मोपदेशक भेजे गये थे और अन्त में (१४) उपरोक्त शिला लेखों का सारांश दिया और सूचनाओं को खोदवाने के विषय में कुछ वाक्य लिखे ॥

२२—अशोक के वंशजः—अशोक की अंत्येष्टि क्रिया होने के पश्चात् महा मंत्री राधा गुप्त ने सब को एकत्रित कर के कहा कि 'महाराज ने शत कोटि सुवर्ण मुद्रा दान करने को संकल्प किया था, उस में से ९६ कोटि तो दे दिया गया परंतु वृद्ध महाराज की अवशिष्ट इच्छा युवराज से पूर्ण न होगा, ऐसा विचार कर के महाराज ने सारी पृथ्वी दान कर दी थी, अब हम सब को एक काम करना चाहिये जो यह है कि ४ कोटि सुवर्ण मुद्रा संघ को देकर उस से राज्य छुड़ा लेवें अर्थात् चार

कोटि सुवर्ण मुद्रा से पुनः राज्य को मोल लें'। राधा गुप्त का यह विचार सब को शुभ प्रतीत हुआ। शीघ्र ही संघ से राज्य छुड़ा लिया गया तब युवराज "सम्पदि" सिंहासन पर बैठा। तदनंतर उस के पुत्र "वृहस्पति" ने राज्य कार्य चलाया। वृहस्पति के पीछे "वृषसेन" "सूर्य वर्मन्" और "पुष्प मित्र" ये राजे हुए। विष्णु पुराण में लिखा है कि अशोक वा सम्पादि के पीछे मगध देश की गद्दी पर मौर्य वंश के ६ राजाओं ने राज्य किया जिन के नाम ये हैं: सुयश, दशरथ, संगत, शालिशुक, सोमशर्मन और वृहद्रथ। वृहद्रथ को उस के सेनापति पुष्प मित्र ने मार कर राज्य किया (१८४ ई० पू०) यद्यपि पुष्प मित्र के हाथ में राज्य चला गया, मौर्य राजे सीमन्तों के तौर पर मगध में ८०० वर्षों तक राज्य करते रहे क्योंकि पूर्णवर्मन नामी राजा को ह्युनसांग ने देखा। इसी प्रकार आठवीं शताब्दी तक मौर्य वंश की एक शाखा भारत वर्ष के पश्चिमी भागों जैसे कोंकण आदि में राज्य करती रही॥

२३—सङ्ग वंश १८४ से ७२ ई० पूर्व।

(क) मौर्य वंश के अन्तिम राजा वृहद्रथ को पुष्प मित्र ने मार कर अपने संग वंश की नींव डाली। ११२ वर्ष तक उस के १० वंशजों ने राज्य किया परन्तु केवल प्रथम दो राजा ही

प्रसिद्ध हुए, अन्यों ने अपना जीवन भोग विलास ही में व्यतीत किया जिस से प्रान्तिक राजा स्वतन्त्र हो गये और अन्त में राजा देवभूति को कण्ववंश के वसूदेव नामक मंत्री ने मार कर अपने वंश की नींव डाली॥

(ख) पुष्प मित्र का राज्य नर्मदा से पञ्जाब तक विस्तृत था उस समय काबुल तथा पंजाब के अधिपति यूनानी राजा यूक्रेटाईडस के आधीन उस के एक सम्बन्धी अति प्रसिद्ध मीनान्दर ने पुष्पमित्र के राज्य पर हमला कर के मथुरा, चित्तौर तथा अयोध्या को काबू कर लिया। पाटली पुत्र राजधानी पर भी हमला करने को तैय्यार हुआ परन्तु पुष्प मित्र के पोते वसुमित्र ने सिन्धु नदी के पास ही मीनांदर को परास्त किया, तभी से १५०२ तक किसी योरुपीय का हमला भारत वर्ष पर नहीं हुआ॥

(ग) अश्वमेध तथा पतञ्जलि ऋषि—इस विजय के स्मरणार्थ अश्वमेध यज्ञ किया गया। किन्तु यज्ञारम्भ के पूर्व पुष्प मित्र का कलिंग के जैनी राजा खारावेल से संग्राम हुआ जिस में दोनों बराबर रहे। इस युद्ध का कारण पुष्प मित्र का ब्राह्मण मत सम्बंधी पुनरुद्धार करना था। यह ब्राह्मण मत का पुनरुद्धार पतञ्जिली ऋषी की शिक्षा द्वारा ही प्रारम्भ हुआ मालूम होता है। पतञ्जिली अधिकतर इसी पुष्प मित्र के समय

में हुये क्योंकि (i) वे अपने लोक मान्य महाभाष्य में पुष्पमित्र तथा चन्द्रगुप्त की सभाओं का वर्णन करते हैं (ii) 'पुष्पमित्रं याजयामहे'—पुष्पमित्र का हम यज्ञ अश्वमेध करवाते हैं यह शब्द आये हैं (iii) मौर्य्य शब्द आया है (iv) मौर्य्यों के सिक्के विषयक आर्च शब्द मिलता है (v) बारंबार वह पाटलीपुत्र का अति प्रधान नगर के तौर पर वर्णन करते हैं। पाटलीपुत्र मौर्य्यों के शासन में राजधानी बनी और उस की उसी समय अधिकतम प्रसिद्धी हुई। पुष्पमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने केवल आठ ही वर्ष राज्य किया। किन्तु उस के और उस के उत्तराधिकारियों के विषय में कुछ ज्ञात नहीं। केवल इतना कह सकते हैं कि देश में अशान्ति फैली हुई थी। कविवर कालि दास ने मालविकाग्निमित्र में अग्नि मित्र को अमर कर दिया है॥

२४—कराववंश ७२ से २७ ई० पूर्व

कराववंश के चार ब्राह्मण राजाओं, वसुदेव, भूमित्र, नारायण और सुशर्मन ने मगध की राजधानी पाटली पुत्र में केवल ४५ वर्ष तक नाम मात्र का राज्य किया, मगध राज्य का केवल छोटा सा इलाका उन के पास था, सब ओर से अशांति छाई हुई थी, निदान दक्षिण के अन्ध्र राजा सीमुक ने कण्वों से २७ वर्ष ई० पूर्व में मगध राज्य छीन लिया॥

——:०:——

अध्याय १२

भारतवर्ष में विदेशी राज्य

I यूनानी राजा

१—सैल्यूकस तथा उस के उत्तराधिकारी सिकन्दर की मृत्यु पर अफगानिस्तान, ईरान और लघुएशिया का कुछ इलाका सैल्यूकस के पास था पर उस के पुत्र के शासनकाल में (२५० ई पूर्व में) बलख और पार्थिया की रियासतें स्वतन्त्र हो गयीं। उस समय बलख की रियासत बहुत सभ्य थी उस में लग भग एक सहस्र बड़े नगर थे। २५० से १२० ई० पू० तक वहां यूनानियों का राज्य रहा जबकि शक जाति ने उन्हें बलख से निकाल दिया। फिर बहुत से छोटे छोटे युनानी राजा पंजाब और अफगानिस्तान में ५० ई० तक राज्य करते रहे, इन के अन्तिम शासक हरमाओ का कुशान जाति के राजा कैड़फाइसिज़ ने पराजित कर लिया, इस प्रकार २५० वर्षों तक पंजाब यूनानियों के आधीन रहा। इन के सिक्के पंजाब के कई स्थानों में भूमि में दबे हुए मिले हैं॥

२—२५० से १२० ई० पूर्व तक राज्य करने वाले यूनानियों में से डिमेट्रियस, यूक्रातिदास और मीनादर नामी बादशाह

अतीव प्रसिद्ध हैं। मीनान्दर आक्रान्ता को अग्निमित्र संग ने पराजित किया। यह यवन काबुल में राज करता था, वहां बौद्धमत्त धारण किया, 'मलिंदा के प्रश्न' नामी पुस्तक में इसका नाम अमर हो गया है। (देखो ११-२३ ख)

३-भारतवर्ष पर यूनानियों का प्रभाव-कहा गया है कि पंजाब में २५० वर्षों तक यूनानियों का राज्य रहा। इस पर स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या भारत वासियों ने उस समय यूनानियों की सभ्यता सीखी अथवा नहीं ? ऐतिहासिक स्मिथ साहब की सम्मति है कि भारत वर्ष पर यूनानियों का प्रभाव न होने के समान ही हुआ। क्योंकि (१) सिकन्दर के विजय का जो कुछ प्रभाव हो सकता था उसे चन्द्रगुप्त ने शीघ्र ही धूल में मिला दिया। (२) क्या सेल्यूकस के हमले का कुछ प्रभाव भारत पर पड़ सकता था जिस अभागे को अपना कुछ इलाका तथा पुत्री तक भी महाराज चन्द्रगुप्त को भेट करनी पड़ी ? (३) मीनान्दर आदि ने जो हमले किये उन का भी कुछ प्रभाव न हुआ क्योंकि उन से कुछ सीखने की अपेक्षा उन्हें घृणित तथा अपवित्र यवन कह कर ब्राह्मणों ने धुतकारा।

(४) पंजाब में यूनानी पादशाहों के केवल सिक्के रह गये और उन का प्रभाव पड़ने के विपरीत उन्हीं पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन में से कतिपय राजा जैसे मीनान्दर आदि बौद्ध

तथा हिंदु मतानुयायी होगये। यहां की भाषा, रीति रिवाज तथा धर्म को ग्रहण करके पराजित हुए। भारत वासियों ने उन्हें अपना बना लिया॥

(५) भवन निर्माण, पाषाणशिल्प, नीति, नाटक आदि कलाओं में भी आर्य्यों ने यूनानियों से कुछ नहीं सीखा और इस से पहिले हम दिखला चुके हैं कि यूनानियों ने आर्य्यों से बहुत कुछ सीखा॥

II शक १००ई. पू. से ४०० ई. तक=५०० वर्ष

४-जिहुं और सिहूं नदियों के तटों पर एक फिरंदर जाति का वास था जिसे हम शक कहते हैं, मध्य एशिया की एक फिरंदर यूची नामी जाति ने शकों को १६० ई० पू० में अपने देश से निकाल दिया तब शकों ने प्रस्थान किया और बलख देश को आधीन कर लिया। किन्तु यूची जाति ने भी कुछ काल के पश्चात् उन का पीछा किया, तब शक भी पूर्व और दक्षिण की ओर बढ़े॥

(i) उन के एक दल ने अफ़ग़ानिस्तान के दक्षिण में अपना राज्य स्थापित किया और उस को शकस्थान (सीस्तान) प्रसिद्ध कर दिया। (ii) दूसरे दल ने काबुल और खैबर से गुज़र कर तक्षशिला में अपना राज्य स्थापित किया। (iii) तीसरा दल पंजाब से गुज़रता हुआ यमुना तक आ पहुंचा और

१०० वर्षों तक मथुरा में राज्य करता रहा (iv) चौथा दल हाला पर्वत से गुज़र कर सिंध और सुराष्ट्र में पहुंच कर चिर काल तक राज्य करता रहा, इसे संसार प्रसिद्ध विक्रमादित्य ने ४०० ई० में स्वदेश से निकाला ॥

५-उत्तरीय क्षत्रप-मथुरा और तक्षशिला के शक राजा उत्तरीय क्षत्रप (शासक) कहलाते थे। यह बौद्ध मतानुयायी थे। इन का राज्य वृतांत ज्ञात नहीं, ईसा की द्वितीय शताब्दी में कुशान राजा कैड़फाईसिज़ २य ने इन को परास्त किया ॥

६-पश्चमीय क्षत्रप-जो शक सिन्ध, कच्छ, काठियावाड़ गुजरात, कोंकण, मालवा में आबाद थे उनको पश्चिमीय क्षत्रप कहते थे, उन्हों ने बहुत कुछ पौराणिक धर्म का परिपालन किया। रुद्ररूप में शिवजी की पूजा इन से ही शुरू हुई। ब्राह्मण धर्म के उद्धार में इन्हों ने बहुत कुछ सहायता की जैसा कि इन के संस्कृत नामों से प्रतीत होता है। दक्षिण के अन्ध्र वंश से कभी इन की लड़ाई और कभी मित्रता रहती थी, नाहपान शक को अन्ध्र राजा विलीवाय ने परास्त करके मार डाला ॥

७-रुद्र दामन-परन्तु उसके पोते रुद्रदामन नामी ने यद्यपि अन्ध्र राजा पुलुमायी को अपनी पुत्री दी थी अपने जामाता पर आक्रमण किया और १४५ ई० में

डाला। उस विजेता ने कोंकण, सिन्ध और सारे गुजरात का इलाका अपने मालवा देश के साथ मिला लिया। २५० वर्षों तक वे क्षत्रिप राज्य करते रहे, निदान गुप्त राजाओं के सूर्य्य विक्रमादित्य ने उन्हें मालवा देश से निकाला। रुद्र दामन का शिलालेख जूनागढ़ की पहाड़ी पर संस्कृत में लिखा हुआ है, उस से पता लगता है कि जिस झील को चन्द्रगुप्त और अशोक ने कृषी की उन्नित के लिये बनवाया था उस के किनारे टूट जाने पर रुद्रदामन ने फिर बनवाया॥

III. कुशान (तुर्क) राजे ४५ से २५० ई० तक।

८-यूची के स्थान पर कुशान नाम--जिस यूची जाति ने शकों को अपने देश से निकाला था उस को एक दूसरी यूची जाति ने उस के नवीन घर से निकाल दिया। उन्हों ने आगे बढ़ कर बलख़ देश को विजय करके शांति पूर्वक १०० वर्षों तक वहां राज्य किया। बलख़ जैसे सभ्य देशों में वह भी सभ्य हो गए। उन की एक कुशान नाम की उपजाति थी जिस के सरदार कैड्फाईसिज़ ने अपने आप को सारी उपजातियों का सरदार बना लिया तब उस जाति का नाम यूची के स्थान पर कुशान प्रसिद्ध हो गया, इस कैड्फाईसिज़ ने ईरान, काबुल और काशमीर को जीत लिया और राज्य को सर्वथा स्थिर करके अस्सी वर्षों की आयु में परलोक सिधारा॥

कैड्फ़ाइसिज़ २य--८५ से १२५ ई० तक—कैड्फाइसिज़ द्वितीय योग्य पिता का योग्य पुत्र था, बड़ा ही उत्साही और लोभी था, चीन महाराज की पुत्री से विवाह करने के लिये उस ने अपने दूत भेजे। दूतों को अपमानित कर के चीनियों ने वापिस भेजा। इस पर ७०००० सैनिक ले कर चीन देश पर कैड्फाइसिज़ ने आक्रमण किया, पर हार कर अन्त में उसे चीन की आधीनता माननी पड़ी। भारत वर्ष में विजय करना सुसाध्य था अतः कैड्फाइसिज़ ने पंजाब के यूनानी और शक राजाओं को एक एक करके जीतना आरम्भ किया: १०० ई० तक बनारस तक का सम्पूर्ण उत्तरीय भारत वर्ष उस ने वश में कर लिया परन्तु इस विजेता को भारत वासियों ने पराजित किया क्योंकि इस को शिव का पुजारी बना दिया, इस ने रोमन महाराज त्राजन के पास स्वप्रसिद्धि के लिये दूत भेजे॥

६--कनिष्क १२५ से १५५ तक-कनिष्क महा शक्ति शाली और योग्य राजा था, इस के नाम की चीन, तिब्बत मंगोलिया आदि देशों में सहस्रों कथायें प्रसिद्ध हैं। अशोक के समान यह दूसरा राजा था जिस ने देशांतरों में भी बौद्ध धर्म का प्रचार किया और जिस का नाम बुद्ध देव की भांति ही घर घर में पूजित हुआ। परन्तु इस का बौद्ध धर्म बुद्ध का प्राचीन धर्म न था प्रत्युत महायान नामक नवीन बौद्ध मत था जिस

के सिद्धान्तों का निश्चय १४० में होने वाली चतुर्थ सभा में किया गया (ii) कनिष्क ने भारत वर्ष का सम्पूर्ण उत्तरीय भाग अपने आधीन कर लिया था अर्थात् सिन्ध और काश्मीर को इस ने जीत लिया था और (iii) यद्यपि इस का पूर्वाधिकारी चीन देश से हार गया था पर महावीर कनिष्क ने चीन देश से काशगर, यारकंद,खोतान के प्रांत जीत लिये और चीनी युवराज कनिष्क के दरबार में ज़मानत (प्रतिनिधि) के तौर पर रहे। (iv) इन विजयों से भी सन्तुष्ट न होकर कनिष्क उत्तर में अधिक विजय करना चाहता था। प्रजा तथा सैनिक युद्धों से तंग हो रहे थे अतः समय पा कर उन्हों ने राजा को मार डाला (v) चीन से इसी के समय में नाशपाती और आड़ू के पौदे लाये गये थे॥

१०—हुविष्क १५५ से १८५ तक—कनिष्क के पश्चात् हुविष्क ने ३० वर्ष तक राज्य किया। इस के सिक्कों पर यूनानी, इरानी और भारतीय देवताओं के चित्र मिलते हैं। इस के राज्य के विषय में अधिक ज्ञात नहीं। वासुदेव १८५-२२६ ई०-उसके नाम से पता लगता है कि कुशान राजा अब हिन्दु हो गए थे। इस का राज्य काल अशान्तिमय था,विचित्र है कि कुशान राज्य उस समय समाप्त हुआ, जब दक्षिण में अन्ध्र राज्य की समाप्ति हुई और ईरान में पार्थियन राज्य का भी तभी अन्त हुआ। यह

तीन दुर्घटनाएं सम्बद्ध हैं या नहीं—इस के विषय में इतिहास न मिलने के कारण कुछ नहीं कह सकते। इस के उपरान्त छोटे छोटे कुशान राजा काबुल में राज्य करते रहे, जिन्हें हूणों ने परास्त किया॥

११-१०० वर्ष की अराजकता--१०० वर्षों तक सारे भारत वर्ष पर छोटे छोटे राजा जो परस्पर लड़ते रहते थे राज्य करते रहे। अशान्ति और अराजकता का राज्य सारे भारत वर्ष में फैला हुआ था। पश्चिमोत्तर की सीमा अरक्षित थी। अंध्रों का राज्य मगध में २७ ई० पूर्व में अन्त हुआ। उस के पश्चात् सम्भवतः अन्ध्र वंश के कतिपय युवराज मगध में शासन करते रहे, फिर चिर काल तक वहां भी अराजकता रही। परन्तु शुभ दिन आने वाले थे क्योंकि मगध में पुरातन शक्ति शाली राज्यों की भांति गुप्त वंश का नया राज्य स्थापित होने वाला था॥

१२-बौद्ध इमारत--बौद्ध मतानुयायी महानुभावों ने भारत वर्ष के प्रत्येक विभाग में पेशावर और कशमीर से कन्या कुमारी तक ४०० ई० पूर्व से ४०० ईस्वी तक और कुछ स्तूप तथा विहार ८०० ईस्वी तक भी बनाए। २३०० वर्ष बीतने पर भी आज सैकड़ों बौद्ध इमारतें विद्यमान हैं। उन की चित्रकारी पूर्णतया उत्तम दशा को प्राप्त हो चुकी थी। इन जैसी चित्रकारियों के अपूर्व तथा अनुपम दृश्य अन्य देशों में बहुत कम

मिलते हैं। इस को देख कर यूरोपीय चित्रकार भी चकाचौंध हो जाते हैं, भारतीय शिल्पियों को ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था, पर शोक है कि आज उन्हीं की सन्तानों में से वे कलाएं सर्वथा लुप्त हो गई हैं॥

बौद्ध इमारतों के विभाग	अति प्रसिद्ध स्थानों के नाम
लाटः—पत्थर के मीनार जिन पर बौद्ध धर्म के नियम और सिद्धान्त खुदे हुए हैं लाटों के सिरों पर शेरों और हाथियों की मूर्तीयां खुदी थीं। सब लाटें बहुत ही अद्भुत हैं॥	प्रयाग, देहली, कार्ली (बम्बई और पूना के बीच)
स्तूपः—जिन में बुद्ध के मृत शरीर का कुछ भाग दबा हुआ समझा जाता था। गुम्बज़ की भांति बनी हुई बौद्ध मत की इमारतों का विशेष चिन्ह स्तूप हैं॥	मनिकाल, भिलसा, सांची, सारनाथ, अम रावती, बुद्ध गया।
जङ्गले—स्तूपों के चारों ओर अद्भुत नकाशी से युक्त पत्थर के जंगले बनाये जाते थे। जब हिन्दुओं के पत्थर के काम को पहिले बुद्ध	भिरुत, सांची और अमरावती

बौद्ध इमारतों के विभाग	अति प्रसिद्ध स्थानों के नाम
गया और भिरुत के जंगलों में देखते हैं तो उसे पूर्णतया भारत वर्ष का पाते हैं जिस में विदेशियों के प्रभाव का कोई चिन्ह नहीं है इस से बढ़ कर अन्य कोई काम कदाचित् किसी देश में नहीं पाया गया ॥	
चैत्य-गुहाओं में मन्दिर बने हुये हैं ॥	राजग्रह, गया, पेदसोर, नासिक, कार्लो, एलोरा, अजन्टा, कन्हेरी।
विहार-बौद्ध भिक्षुओं के रहने के लिये आश्रम होते थे ॥	नासिक, एलोरा, अजन्टा और नालन्दा

अध्याय १३

गुप्त वंश ३२० से ४८० ई० तक

१-गुप्त वंश की प्रसिद्धि (i) बौद्ध काल में जिस प्रकार मौर्य वंश अति शक्ति शाली प्रसिद्ध था वैसे ही पौराणिक काल में यह गुप्त वंश प्रसिद्ध हुआ (ii) जैसे अशोक ने बौद्ध मत को राज्य मत स्थिर किया वैसे ही गुप्त वंश के तृतीय राजा विक्रमादित्य ने पौराणिक मत को राज्य मत बना दिया उन के सिक्कों पर लक्ष्मी की मूर्ति अंकित है। बौद्ध मत के चिन्ह बहुत ही थोड़े हैं। (iii) गुप्तों का काल पौराणिक मत के लिये स्वर्णयुग था-संस्कृत विद्या का अधिक प्रचार हुआ, राज्य दरबार में कवियों का आदर होने लगा, विदेशी आक्रमण देश में नहीं हुये और प्रजा भी शक्ति शाली महाराजों के आधीन सुख पूर्वक रही ॥

२-चन्द्रगुप्त-३२० से ३२६ तक-यद्यपि लिच्छवी जाति के राजा अजातशत्रु के समय से ८०० वर्षों तक उस जाति की व्यवस्था इतिहास न होने के कारण हम कुछ नहीं जानते तथापि यह जाति जीवित जाग्रित रही। उस जाति की एक राज कुमारी कुमार देवी मगध के एक सीमन्त राजा चन्द्रगुप्त

से विवाहित हुई। दोनों जातियों के मेल से चन्द्रगुप्त की शक्ति बढ़ गई और उस ने पाटलिपुत्र जीत कर बिहार, अवध और तिरहुत के इलाके वश में कर लिये॥

गुप्त सम्वत्–३२० ईस्वी में चन्द्र गुप्त ने अपना राज्य अभिषेक करवाया। इसी वर्ष से गुप्त सम्वत् का आरम्भ हुआ॥

३–समुद्र गुप्त ३२६ से ३७५–चन्द्रगुप्त का पुत्र समुद्र गुप्त इस वंश का अत्यन्त शक्ति शाली राजा हुआ है। इस का नाम एतिहासिकों ने भारतीय नैपोलियन रखा है इस का प्रताप इस बात से विदित होगा कि इस ने लग भग सारे भारत वर्ष को स्वाधीन किया। राजपुताना तथा बुन्देल खण्ड के जंगली राजाओं को आधीन कर लिया। दक्षिण के पल्लवों राष्ट्रकूटों, कालिंगों, कोशलों, महाराष्ट्रों को कावेरी नदी तक जीत लिया। नैपाल, कामरूप और बंगाल भी इस के आधीन थे और पश्चिमी भारत वर्ष की भी सब जातियां इस की प्रजा थीं। काबुल और लंका के राजाओं ने भी उस के साथ मित्रता कर ली थी। ३००० मीलों का विजय चक्र लगा कर उस ने अश्वमेध यज्ञ किया। समुद्रगुप्त स्वयं कहता है कि यह यज्ञ चिरकाल से लुप्त था। वस्तुतः हिन्दु धर्म के आरंभ का यह यज्ञ प्रधान चिन्ह हुआ। उक्त विजय का वृत्तांत हरिसेन कवि ने संस्कृत

१३-४

भाषा में अशोक की प्रयाग वाली लाट पर लिखा है जो लाट अब तक वहां स्थित है। सिक्कों पर पौराणिक देवताओं के चिन्ह, अश्वमेध यज्ञ का करना और संस्कृत का विशेष प्रचार कराना इस बात के साक्षी हैं कि समुद्रगुप्त पौराणिक मत के उद्धार में अत्यन्त सहायक हुआ ॥

४—चन्द्र गुप्त २य—विक्रमादित्य ३७५ से ४१३ तकः—पुराणों और काव्यों में अति प्रसिद्ध, विक्रम का सूर्य्य और सहस्र हिन्दू गाथाओं का केन्द्र उज्जैन का यही राजा विक्रमादित्य था। पश्चिमीय शक क्षत्रियों को इस के पिता ने यद्यपि आधीन कर लिया था तथापि इस ने १२ वर्षों तक उन के साथ निरन्तर घोर संग्राम करके विजय प्राप्त की। शकों के पूर्ण दमन के लिये उज्जन में ही कतिपय वर्ष तक राजधानी बना कर रहा और शकारि (शकों का शत्रु) की उपाधि प्राप्त की। मनोरथ के सिद्ध होने पर श्री राम की अति प्रसिद्ध राजधानी अयोध्या में ब्राह्मण धर्म के उद्धारार्थ राजधानी बनाई। इसी प्रकार पाटलीपुत्र बहुत दिनों तक बड़ा नगर रहा, पर शनैः २ अवनत होता गया और १२०० वर्षों तक इतिहास में लुप्त रहा, अन्त में शेरशाह ने वहां पटना नामी नगर बनाया। विक्रमादित्य के दरबार में विद्वानों का दल रहा करता था उन में निम्न लिखित नव रत्न प्रसिद्ध हुये हैं उन में भी कविवर कालिदास जिस को कि भारत

वर्ष का शेक्सपीयर कहते हैं अपनी साहित्य की विलक्षणता से अमर हो गया है और भारत के भाग्य को भी चमका गया है॥

धन्वन्तरी क्षपणकाऽमर सिंह शंकु वेतालभट्ट घटकर्पर कालि-दासाः ख्यातो वराह मिहिरो नृपतेः सभायाम् रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य। विक्रम के दरबार में जो नवरत्न रहते थे उन के नाम यह हैं:—धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेताल भट्ट, घटकर्पर, कालीदास, वराह मिहिर और वररुचि॥

५—कुमार गुप्त ४१३ से ४५५ तक—इस के विषय में केवल यही है कि इस ने अपने दीर्घ राज्य काल में योग्यता से देश का शासन किया, कुछ नवीन प्रांत भी स्वाधीन किये और बड़े समारोह से अश्वमेध यज्ञ रचाया॥

६—स्कन्द गुप्त ४५५ से ४८० तक-अभी राज्य ग्रहण किये हुवे इसे थोड़ा ही काल हुआ था कि क्रूर हूणों ने इस के राज्य पर आक्रमण किया, परन्तु इस ने बड़ी वीरता से उन को पराजित किया। तब १२ वर्ष तक इस के राज्य में बड़ी शांति रही। इस की राजधानी आयोध्यापुरी थी। ब्राह्मणों और बौद्धों के साथ इस ने बहुत अच्छा बर्ताव किया। जूनागढ़ की झील को इस ने फिर बनवाया। परन्तु ४७० ई० में हूणों ने पुनः आक्रमण कर के इस को परास्त किया। राज्य का अधिकांश

खोया गया। निरुत्साहित स्कन्द गुप्त ४८० में मर गया- इस के साथ २ गुप्त राज्य का भी साम्राज्य नष्ट हो गया, केवल इस वंश की एक शाखा ६०० ई० तक मगध में और दूसरी शाखा ५०० ई० तक मालवा में राज्य करती रही॥

७ प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहीन का भारत की दशा पर कथन। फाहीन ४०० ई० में भारत में बौद्ध मत की दशा देखने आया और लगभग १२ वर्षों तक यहां रहा। उस का दिया हुआ वृत्तान्त प्रत्येक भारत वासी अभिमान से पढ़ सकता है॥

(क) राजव्यवस्था-मथुरा के लोग बहुत अच्छी अवस्था में हैं उन्हें राज्य कर नहीं देना पड़ता, राज्य की ओर से उन्हें कोई रोक टोक नहीं, केवल जो लोग राज्य की भूमि जोतते हैं, उन्हें भूमि की उपज का कुछ अंश देना पड़ता है। वे जहां जाना चाहें जा सकते हैं तथा जहां रहना चाहें रह सकते हैं। राजा शारीरिक दण्ड नहीं देता। अपराधियों को उन की दशा के अनुसार हलका व भारी जुर्माना कर सकता है। यदि वे कई बार राज्य द्रोह करें तो भी उन का केवल दाहिना हाथ काट लिया जाता है॥

(ख) आचार-सारे देश में केवल चाण्डालों को छोड़

कर कोई पुरुष प्याज़ वा लशुन नहीं खाता। कोई किसी जीव को नहीं मारता और मदिरा नहीं पीता। बाज़ार में मदिरा की दूकानें नहीं होतीं। बेचने में लोग कौड़ियों को काम में लाते हैं। केवल चाण्डाल लोग हत्या कर के मांस बेचते हैं। अहो! यह कैसा सत्युग का समय होगा!

(ग) भारतवासी अवनत हो रहे थे—पाटलिपुत्र में अशोक के भवन के विषय में फ़ाहीन यह लिखता है कि उसे अशोक ने देवों से पत्थर इकट्ठे करवा कर बनवाया था। इस की दीवार, द्वार और पत्थर की नकाशी मनुष्य की बनाई हुई नहीं है। इस कथन से स्पष्ट है कि आर्य लोग शिल्प में क्रमशः अवनत हो रहे थे न कि उन्नत॥

(घ) नगर कीर्त्तन—इसी नगर में फ़ाहीन ने बौद्धों का एक धूम धाम वाला नगरकीर्तन देखा। इस अवसर पर लोग चार पहिये का एक रथ बनाते हैं जो इतना लम्बा चौड़ा और ऊंचा होता है कि मन्दिर की नाई दीख पड़ता है। फिर उसे वे श्वेत मलमल से ढकते हैं और फिर उस मलमल को भड़कीले रङ्गों से रंगते हैं। फिर देवों की मूर्त्तियां बना कर और उन्हें सोने चांदी के आभूषणों से आभूषित कर के कामदार रेशमी चन्दुवे के नीचे बैठाते हैं। ऐसे २ लगभग २० रथ बनाए जाते हैं और भिन्न भिन्न प्रकार से सुसज्जित भी किये जाते हैं॥

(ङ) चिकित्सालय—सारे देश के ग़रीब लोगों के लिये चिकित्सालय होते थे। रोग के अनुसार उन के खाने पीने तथा औषधि और सब आराम की वस्तुएं वितरण की जाती थीं। बौद्ध मत भारत वर्ष में अवश्य प्रचलित था यद्यपि थोड़ी बहुत गिरावट आरम्भ हो गई थी। ताम्रलिप्ति से चौदह दिनों में फ़ाहीन लंका देश में पहुंचा। वहां उस ने ४१६ फ़ीट ऊंचा एक बड़ा गुम्बज़ देखा। एक संघाराम में ५००० भिक्षुकों को रहते हुये देखा और २२ फ़ीट ऊंची रत्न जड़ित बुद्ध देव की एक मूर्त्ति देखी। वहां से एक जहाज़ में सवार हो कर चीन की ओर प्रस्थित हुवा–उस में २०० यात्री थे जिन में अधिकतर ब्राह्मण व्यापारी थ। कोई दिग्दर्शन यन्त्र उन के पास न था अर्थात् किश्तियों की नांई वायु से चलने वाले बड़े २ जहाज़ थे। १७२ दिनों तक समुद्र में भटकने के पश्चात् विचारा फ़ाहीन चीन में पहुंचा। इस प्रकार भारत की धार्मिक, राष्ट्रिक, आर्थिक दशाओं की एक सत्य साक्षि मिलती है जो उस समय के सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवनों को अति सुखदायक बताती है।

अध्याय १४

पौराणिक काल

I पुराण

१ पुराण के अर्थ—पुराण का अर्थ पुरानी पुस्तक है, इस किस्म के वस्तुतः बहुत पुराण पाये जाते हैं, भारत वर्ष के प्रत्येक प्रसिद्ध स्थान का अपना पुराण है। किन्तु अठारह पुराण संसार प्रसिद्ध हैं जिन में प्रायः पांच विषय पाये जाते हैं:- (१) आदि सृष्टि वा जगत् की उत्पत्ति (२) उपसृष्टि वा संसार का नाश और पुनरुत्पत्ति जिस में समय निरूपण भी सम्मिलित है (३) देवताओं तथा आचार्यों की वंशावली (४) मनु के राज्य वा मन्वन्तर (५) सूर्य्य और चन्द्र वंशी राजाओं तथा उन की आधुनिक सन्तानों का इतिहास ॥

२—पुराणों की संख्या तथा श्लोक—ब्रह्मा, विष्णु और शिव से सम्बन्ध रखने के कारण पुराण तीन प्रकार के हैं उन के नाम तथा श्लोकों की संख्या निम्न लिखित हैं :—

पुराण नाम	श्लोक संख्या	पुराण नाम	श्लोक संख्या	पुराण नाम	श्लोक संख्या
ब्राह्म		वैश्णव		शैव	
ब्रह्मांड	१२०००	विष्णु	२३०००	मत्सय	१४०००

ब्रह्मवैवर्त	१८०००	नारदीय	२५०००	कूर्म	१७०००
मारकण्डेय	६००	भागवत	१८०००	लिंग	११०००
भविष्य	१४५००	गरूड	१६०००	वायु	२४०००
वामन	१००००	पद्म	५५०००	स्कंद	८११००
ब्रह्मा	१००००	वाराह	२४०००	अग्नि	१५४००

३–पुराण कब बने ?–अन्य बहुत से हिन्दु शास्त्रों की न्याईं पुराण अपने प्राचीन रूप में लिखे हुये नहीं थे बल्कि परम्परा से स्मृति में चल आते थे। पौराणिक काल में प्राचीन कथाओं, इतिहासों और वार्ताओं को इन अठारह पुराणों में संकलित किया गया और नवीन काल के धार्मिक विचारों और पूजा की रीतियों को वहा वर्णित किया गया-वायु पुराण ३५० ईस्वी, मत्स्य ४०० ई०, विष्णु ५०० ई० के लगभग बनाये गये। ग्यारहवीं शताब्दी में जब प्रसिद्ध यात्री अलबरूनी आया तो उस ने अठारह पुराणों को देखा, अतः उस समय तक यह पुराण बन चुके थे किन्तु पीछे भी उन में मिलावटें की गईं ॥

४–पुराण क्यों बनाये गये ?–(१) ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामी नवीन देवताओं की पूजा सिखाने के लिये उन का निर्माण हुआ। सर्व साधारण लोगों विशेषतया शूद्रों और वैश्यों

को, जो वेदों से अनभिज्ञ थे--सरल भाषा में कथाओं द्वारा धर्म सिखलाने के लिये बनाये गये। (२) उस समय की शासक जातियों को बौद्ध धर्म से हटा कर अपने धर्म में लाने के लिये ब्राह्मणों ने यह साधन सोचा कि इन सब की उत्पत्ति सूर्य और चन्द्र नामी अति प्राचीन वंशों से दिखलाई जावे। (३) बौद्ध धर्म का नाम मिटाने के लिये इन के द्वारा यत्न किया गया, क्योंकि ऐतिहासिक भाग में बौद्ध राजाओं का कोई वर्णन नहीं किया, यहां तक कि महाराजा अशोक को भी छोड़ दिया है॥

५-उपपुराण-उपपुराण निस्सन्देह पुराणों की अपेक्षा बहुत अर्वाचीन काल के हैं और सम्भवतः वे सब मुसलमानों की विजय के उपरान्त बने होंगे। उपपुराणों में सब से प्रसिद्ध कालि का पुराण है जिस में शिव की पत्नी की पूजा का वर्णन है और वह मुख्यतः शाक्तग्रन्थ है॥

६-दश अवतार-इन पुराणों में संसार के आदि से अन्त तक दश अवतार माने गये हैं। उन अवतारों को मनुष्य रूप में स्वयं परमात्मा माना जाता है और उन का उद्देश दुष्टों को दण्ड देना, महात्माओं की रक्षा, धर्म की वृद्धि और अधर्म का क्षय करना है॥

(१) मत्स्य अवतार-दक्षिण के अन्त में द्राविड़ देशीय भद्रावती के किनारे सत्युग में उत्पन्न हुए, ताकि संसार

को जलप्लव से बचायें। शतपथ ब्राह्मण वाली मनु और मछली की कथा याद करो॥

(२) कूर्म अवतार—देवताओं को क्षीर समुद्र के मन्थन में सहायता देने के लिये जन्म हुआ॥

(३) वराह अवतार—ब्रह्मवर्त्त नगर में नीमखर (अवध में) के पास जन्म लिया ताकि हरिनाक्षस् का घात करें॥

(४) नरसिंह अवतार—आगरे के पास करणा पुर में प्रह्लाद भगत के पिता हरिण्यकश्यप को मारने के लिये शरीर धारण किया—कईयों का मत है कि मुलतान में यह अवतार हुआ—इस कारण उसे अब नरसिंह पुरी कहा जाता है॥

(५) वामन अवतार—नर्मदा नदी के तट पर दिति के अत्याचारों से इस पृथिवी को छुड़ाया॥

(६) परशुराम अवतार—आगरे के पास रंगता में इस नाम से ईश्वर ने शरीर धारण किया और दुराचारी क्षत्रियों का २२ बार क्षय किया, फिर कोन्कन के महेन्द्र पर्वत पर तपस्या की, जहां अभी तक वह जीवित समझे जाते हैं॥

(७) रामावतार—मर्यादा पुरुषोत्तम राम चन्द्र को भी

अवतार मान लिया है, गर्वित रावण को मारने के लिये शरीर धारी हुए ॥

(८) कृष्णावतार-पापी, देश हत्यारे दुर्योधन तथा उस के दुराचारी संबन्धियों का नाश करने के लिये कृष्ण पैदा हुए।

(९) बुद्धावतार-भगवान गौतम बुद्ध को भी अवतार मान लिया है ताकि बौद्ध भी पौराणिक धर्म को मान लें ॥

(१०) कल्की अवतार-सम्भल नगर में ब्राह्मण विष्णुदत्त के घर कलियुग के अन्त में कल्की नाम से भगवान् स्वयम् उत्पन्न होंगे। इस कारण उस नगर के हरमण्डल नामी मन्दिर में सहस्रों हिन्दु पूजा करने जाते हैं ॥

॥ भारत वर्ष का अन्तिम सम्राट्
हर्ष वर्धन (६०६-६४८)

७-शिलादित्य-गुप्तों के साम्रजय के छिन्न भिन्न होने पर, ५५० ईस्वी में शिलादित्य प्रतापशील उत्तरीय भारत वर्ष का राजा हुआ। उस की सभा में मनोरथ के शिष्य वसुबन्धु कवि का बहुत सत्कार किया जाता था ॥

८-प्रभाकर वर्धन-शिलादित्य का उत्तराधिकारी लग भग ५८० ईस्वी में प्रभाकर वर्धन हुआ। (i) यह राजा सूर्य का पुजारी था, (ii) उस की माता गुप्त वंश में से थीं, (iii) उस की राजधानी स्थानेश्वर (थानेसर) थी, (iv) उत्तरीय पञ्जाब के हूणों को उस ने पराजित किया, (v) गुजरात के गुर्जर राज्य को जिस की राजधानी भीनमाल थी, परास्त किया॥

९-राज्य वर्धन-मालवा के लोगों से इस राजा के युद्ध होते रहे। निदान मालवा अधीश मारा गया। लग भग ६१० ई० में बंगाल के शशांक नामी राजा ने राज्य वर्धन को पराजित करके मार डाला॥

१०-हर्ष वर्धन--राज वर्धन का छोटा भाई शिलादित्य वा हर्ष वर्धन राज गद्दी पर बैठा। वह अति पराक्रमी, प्रतापी और धर्मानुरागी राजा था। विक्रम के पश्चात् यही भारत वर्ष का सम्राट हुआ। शोक है कि इस के उपरान्त भारत वर्ष में खिलाबिली मच गई और पृथ्वी राज तक कोई सम्राट् न हुआ। इस के शासन काल की प्रसिद्ध घटनाएं यह हैं:—

(१) उस के पास बड़ी भारी सेना थी, ५०,००० पदाति, २०,००० अश्वारोही, १२,००० हाथी थे।

(२) छः वर्षों में उस ने पांचों खण्डों को जीत लिया और निरन्तर ३० वर्षों तक लड़ कर उत्तरीय भारत वर्ष का सम्राट् बना। गुजरात का वलभी राजा और कामरूप (आसाम) का कुमार राज नामी राजा उस के आधीन थे।

(३) कश्मीर और पञ्जाब को वह स्वाधीन न कर सका॥

(४) दक्षिण के पुलिकेशी नामी राजा ने हर्ष वर्धन को जब उस ने दक्षिण पर हमला किया, पराजित कर के वापिस किया॥

(५) हर्ष वर्धन की राजधानी कान्यकुब्ज (कनौज) थी। यहीं पांचवें वर्ष धर्म सम्बन्धी त्यौहार करने के लिये राजाओं और सर्व साधारण का एक बड़ा समूह एकत्रित होता था। इस उत्सव को चीनी यात्री ह्युनसाग ने भी देखा।

(६) हर्ष वर्धन दृढ़ बौद्ध था, किन्तु वह ब्राह्मणों का भी आदर सत्कार करता था।

(७) हर्ष वर्धन के दर्बार में बहुत से विद्वान् रहा

वाक्पति तथा राजेश्वरी नामी ग्रन्थकार भी यशोवर्मन् की सभा में रहते थे।

१२—कनौज में भट्ट वंश—यशोवर्मन के पश्चात् का इतिहास ज्ञात नहीं, सम्भवतः हिन्दु और बौद्धों में परस्पर विवाद होते रहे, स्थान २ पर छोटे २ राजा राज्य करने लगे और कनौज में युद्ध कुल के राजा राज्य करते रहे। ८७० ई० में चक्र युद्ध को गर्जर जाति के परिहार कुलोत्पन्न नाग भट्ट ने पराजित किया, वहां उस के वंशज २०० वर्षों तक राज्य करते रहे।

मिहिर भोज (८४०–९०)—नागभट्ट का यह पौत्र अतीव प्रतापी तथा प्रसिद्ध महाराज हुआ, उस के आधीन राजपूताना, मालवा, गुजरात, युक्त प्रान्त, पञ्जाब के देश थे—इन में उस के जो सिक्के पाए जाते हैं उन पर शुक्र का चिन्ह है राष्ट्रकूटों व राठोरों के साथ उस के बहुत संग्राम होते रहे। उस का पुत्र महेन्द्रपाल (८९०–९०८) भी अतीव शक्ति शाली था—उस की सभा में प्रसिद्ध कवि राजशेखर रहता था। उस के उत्तराधिकारी महीपाल (९१०-४०) को राठोरों ने पराजित कर के कनौज पर स्वत्व कर लिया किन्तु थोड़े काल में ही उन को वापिस जाना पड़ा। देवपाल, विजयपाल, राज्यपाल नामी राजा १०१९

तक राज्य करते रहे, किन्तु इन निर्बल राजाओं के समय में आधीन देश स्वतन्त्र हो गए, विजेता महमूद गज़नवी ने राज्यपाल से ही मित्रता की थी, १०६० में राठौरों का राज्य कनौज में हो गया जिन का वृत्तान्त आगे दिया जावेगा ॥

ह्यूनसांग की यात्रा

१३—हर्ष वर्धन के समय में चीन का प्रसिद्ध यात्री ह्यूनसांग आया उस के लेखों से भारत वर्ष का सच्चा इतिहास प्रकट होता है। ६३० से ६४५ तक इस देश में रह कर उस ने बहुत कुछ देखा। काबुल, काश्मीर, पंजाब से होता हुआ उत्तरीय भारत के प्रसिद्ध स्थानों को देखा, फिर उड़ीसा, कलिंग, दक्षिण के अन्तिम भाग तक गया और महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, तथा सिन्ध के मार्ग से वापिस हुआ। सर्वत्र पौराणिक धर्म की वृद्धि हो रही थी और बौद्ध धर्म के अनुयायी अधिकतर काश्मीर, कामरूप, उड़ीसा और दक्षिण में पाए जाते थे।

महाराज हर्ष वर्धन तथा पुलिकेशी के राज्या के वृतान्त जो यात्री ने दिये हैं वे अत्यन्त रोचक हैं किन्तु यहां पर देश की साधारण सभ्यता के वाक्य लिखे जाते हैं ॥

१४—भारत वासियों का आचार—सर्वत्र प्रजा बहुत सुखी थी—धन की कहीं कमी न थी, लोग सीधे साधे

तथा सत्य परायण थे। वह कहता है कि 'वे स्वभावतः ओछे हृदय के नहीं हैं, वे सच्चे और आदरणीय हैं। धन सम्बन्धी बातों में वे निष्कपट और न्याय करने में गम्भीर हैं वे लोग दूसरे जन्म में प्रति फल पाने से डरते हैं और इस संसार की वस्तुओं को तुच्छ समझते हैं। वे लोग धोखा देने वाले अथवा छली नहीं हैं और अपनी शपथ अथवा प्रतिज्ञा के सच्चे हैं'॥

१५—कई राजधानियों का वर्णन ह्यून सांग ने यूं किया हैः (i) जलालाबाद की राजधानी नगरहार, हरिद्वार, मथुरा और थानेश्वर के नगरों के घेरे चार २ मील थे। (ii) श्री नगर (काश्मीर में) अढ़ाई मील लम्बा और १ मील चौड़ा था। (iii) सतलुज राज की राजधानी ३॥ मील घेरे मे थी। इस देश में अन्न, फल, सोना, चांदी और रत्न बहुतायत से थे। यहा के लोग चमकीले रेशम के बहु मूल्य और सुन्दर वस्त्र पहिनते थे उन के आचरण नम्र और प्रसन्न करने वाले थे (iv) उड़ीसा तथा कालिङ्ग देशों की राजधानियों का घेरा ४ मील, अन्ध्र और बरार देशों की राजधानिया का आठ २ मील घेरा था। (v) कनौज तथा बनारस नगर चार मील लम्बे और एक मील चौड़े थे॥

१६--कनौज के विषय में यात्री के यह शब्द हैं: " नगर के चारों ओर एक खाई थी, आमने सामने दृढ़ और ऊंचे बुर्ज थे। चारों ओर कुंज और फूल, झील और तालाब दर्पण की नांई चमकते हुये देख पड़ते थे। यहां वाणिज्य की बहु मूल्य वस्तुओं के ढेर एकत्रित किये जाते थे। लोग सुखी और संतुष्ट थे। घर, धनसंपन्न और सुदृढ़ थे। लोग सच्चे और निष्कपट थे। वे देखने में सज्जन और कुलीन जान पड़ते थे, पहिनने के लिये वे कामदार और चमकीले वस्त्र काम में लाते थे, वे विद्याध्ययन में अधिक लगे रहते थे॥

१६--ह्यूनसांग इलाहाबाद के उस बड़े वृक्ष का वर्णन करता है जोकि आज तक भी यात्रीयों को अक्षयवट के नाम से दिखाया जाता है॥

"दोनों नदियों के संगम पर प्रति दिन सैकड़ों मनुष्य स्नान करके मरते हैं। इस देश के लोग समझते हैं कि जो मनुष्य स्वर्ग में जन्म लेना चाहे उसे एक दाने चावल पर उपवास रखना चाहिये और तब अपने को जल में डुबा देना चाहिये"॥

१८--बनारस--के गृहस्थ लोग धनाढ्य थे और उन के यहां बड़ी २ अमूल्य वस्तुएं थीं। यहां के लोग कोमल और दयालु थे और वे विद्याध्ययन में लगे रहते थे। उस में महेश्वर की एक

तारे की मूर्ति १०० फ़ीट ऊंची थी। "उस का रूप गंभीर और तेज पूर्ण है और वह सच मुच जीवित सी जान पड़ती है" ॥

१९-दक्षिण पश्चिम की ओर चरित्र नाम का एक बड़ा बन्दरगाह था। "यहां से व्यापारी लोग दूर दूर देशों के लिये यात्रा करते हैं और विदेशी लोग आया जाया करते हैं और अपनी यात्रा में टिकते हैं। नगर की दीवार दृढ़ और ऊंची है। यहां सब प्रकार की अपूर्व और बहुमूल्य वस्तुएं मिलती हैं" ॥

२०-मालवा के विषय में यात्री का कथन है कि "दो देश अपने निवासियों का बड़ी विद्या के लिये प्रसिद्ध हैं अर्थात् दक्षिण-पश्चिम में मालवा और उत्तर-पूरब में मगध" ॥

२१-गुजरात-यहां की भूमि जल वायू और लोग मालवा राज्य की न्याईं हैं, बस्ती घनी है और धन बहुतायत से है। यहा कोई एक सौ घर करोड़ पतियों के हैं ॥

अध्याय १५

प्राचीन काल का अन्त

१-हिन्दु इतिहास का अन्तिम काल।

मुसलमानी विजय के पहिले, हिन्दु इतिहास के अन्तिम काल के दो भाग हैं: ग्यारहवीं वा बारहवीं शताब्दी के दिल्ली और अजमेर के राजपूतों की चाल व्यवहार आधुनिक काल की है; विक्रमादित्य और शिलादित्य के समय की सामाजिक सभ्यता प्राचीनों से अधिक मिलती जुलती है। प्राचीन और आधुनिक कालों को पृथक करने वाला नवमी और दशमी शताब्दियों का अन्धकार मय समय है॥

छठी और सातवीं शताब्दी में हिन्दुओं की सभ्यता।

२-स्त्रियों का परदा नहीं था—यथा (क) शकुन्तला और मल्यावती के सन्मुख जब दुष्यन्त जीमूतवाहन जैसे अपरिचित लोग उपस्थित हुए तो वे परदे में नहीं चली गईं (ख) पूरी युवावस्था में एक त्यौहार के दिन हाथी पर सवार हो कर मालती मंदिर को गई (ग)। कात्यायन की माता अपरचित ब्राह्मणों का बिना किसी परदे के सत्कार करती रही। (घ) मृच्छकटिक में चारुदत्त की स्त्री अपने पति के मित्र के साथ

वार्त्तालाप बिना परदे के करती हैं। (ङ) कथा सरित्सागर, कादम्बरी, नागानन्द, रत्नावली तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में परदे की रीति का अभाव दिखाई देता है॥

३—उस समय विवाह युवावस्था में किया जाता था। मालविका, मालती, मल्यावती, रत्नावली, युवा होते हुए भी कुमारी थीं, इसी प्रकार श कुन्तला का विवाह युवावस्था में ही हुआ। विवाह की रीति वैसी ही थी जैसे कि प्राचीन समय में थी और जैसी कि आज कल विद्यमान् है॥

४- कन्याओं को लिखना और पढ़ना सिखाया जाता था और प्राचीन ग्रन्थों में उन के चिट्ठियों के लिखने और पढ़ने के असंख्य उदाहरण हैं। स्त्रियों का गान विद्या में निपुण होने का बहुधा उल्लेख किया गया है और नाचने गाने तथा शिल्पकारी की विद्या में निपुणता प्राप्त करने के बहुत उदाहरण मिलते हैं॥

५—उस समय विधवा विवाह का निषेध नहीं था और न ही सती की रसम का प्रचार था। शोक है कि उस समय वेश्यायें भी हुआ करती थीं, कई वेश्याओं का बड़े ठाट बाट से रहने का उदाहरण मिलता है॥

६- राजा लोग बहु स्त्री विवाह प्रायः किया करते थे और इन में जाति पाति का कुछ विचार नहीं करते थे।

जिन नीच जाति की स्त्रियों को वह अपने महल्लों में ले लेते थे उन के भाईयों और सम्बन्धियों को नगर के प्रबन्ध करने में उच्च पद दिये जाते थे, कालिदास तथा अन्य कवियों ने अनेक स्थानों पर ऐसे पुरुषों का वर्णन किया है, उन से विदित होता है कि यह लोग समाज के नाशक बने हुये थे, वे भले मनुष्यों के द्वेषी और छोटे तथा नीच लोगों को दुःख देने वाले थे ॥

७—उस समय दासत्व की घृणित रीति भी प्रचलित थी ॥

८—मृच्छकटिक में उज्जैनी नगर का अद्भुत वर्णन आया है जिस का अति संक्षिप्त वृत्तांत यह है: श्रेष्ठी चत्वर नामी बाज़ार में शान्त व्योपारी और महाजन लोग रहते थे, वे रेशम, रत्न और बहुमूल्य वस्तुओं का बड़ा भारी व्योपार करते थे और उन के कार्यालय की शाखाएं उत्तरी भारत वर्ष के सब बड़े २ नगरों में सम्भवतः थीं, समय २ पर राजा लोग इन से धन उधार लेते थे और यह दान पुण्य में बहुत सा रुपया लगाते थे ॥

व्योपारियों के पास जौहरी और शिल्पकार बहुतायत से थे । 'निपुण कारीगर मोती, पुखराज, नीलम, पन्ना, लाल, मूंगा तथा अन्य रत्नों की परीक्षा करते हैं, कोई स्वर्ण में लाल जड़ते हैं

कोई रङ्गीन जोड़ों से स्वर्ण के आभूषण गूंथते हैं, कोई मोती गूंथते हैं कोई अन्य रत्नों को सान पर चढ़ाते हैं, कोई सीप काटते हैं और कोई मूंगा काटते हैं। गंधी लोग केशर के थैले हिलाते हैं, चंदन का तेल निकालते हैं और मिलावट की सुगन्ध बनाते हैं। इन शिल्पकारों की वस्तुएं उस समय के सब विदित संसार में बिकती थीं और इन की कारीगरी की वस्तुओं की बग़दाद में हारुन-उलरशीद के दरबार में कदर की गई थी और उन्हों ने प्रतापी शार्लेमान और उस के असभ्य दर्बारियों को आश्चर्य्यित किया था। एक अंग्रेज़ी कवि लिखता है कि वे लोग अपनी आंख फाड़ कर बड़े आश्चर्य से रेशमी और कारचोबी के वस्त्र तथा रत्नों को देखते थे जो कि पूरब के दूर देश से युरोप के नवीन बाज़ारों में आये थे॥

जूआ खेलने के घर राजा की आज्ञा से स्थापित थे। नगर में मदिरा की दुकानें थीं जिन में बहुत ही नीच जाति के लोग जाते थे किन्तु अन्य लोग भी मदिरा का पीना बुरा नहीं समझते थे, कृषि, वाणिज्य और परिश्रम करने वाले लोग प्रायः मदिरा नहीं पीते थे। संध्या के समय राज्यमार्ग दुराचारियों, गला काटने वालों, दर्बारियों और वेश्याओं से भरा रहता था धनाढ्य लोग बड़े ठाठ बाठ से सात आंगनों वाले महल्लों में रहते थे जिन में फुलवारियां लगी होती थीं और जिन में आर्य

कोई रङ्गीन जोड़ों से स्वर्ण के आभूषण गूंथते हैं, कोई मोती गूंथते हैं कोई अन्य रत्नों को सान पर चढ़ाते हैं, कोई सीप काटते हैं और कोई मूंगा काटते हैं। गंधी लोग केशर के थैले हिलाते हैं, चंदन का तेल निकालते हैं और मिलावट की सुगन्ध बनाते हैं'। इन शिल्पकारों की वस्तुएं उस समय के सब विदित संसार में बिकती थीं और इन की कारीगरी की वस्तुओं की बग़दाद में हारून-उलरशीद के दरबार में क़दर की गई थी और इन्हों ने प्रतापी शार्लमान और उस के असभ्य दरबारियों को आश्चर्यित किया था। एक अंग्रेज़ी कवि लिखता है कि वे लोग अपनी आंख फाड़ फाड़ कर बड़े आश्चर्य से रेशमी और कारचोबी के वस्त्र तथा रत्नों को देखते थे जो कि पूरब के दूर देश से यूरोप के नवीन बाज़ारों में आये थे॥

जूआ खेलने के घर राजा की आज्ञा से स्थापित थे। नगर में मदिरा की दुकानें थीं जिन में बहुत ही नीच जाति के लोग जाते थे किन्तु अन्य लोग भी मदिरा का पीना बुरा नहीं समझते थे, कृषि, वाणिज्य और परिश्रम करने वाले लोग प्रायः मदिरा नहीं पीते थे। संध्या के समय राजमार्ग दुराचारियों, गला काटने वालों, दर्बारियों और वेश्याओं से भरा रहता था। धनाढ्य लोग बड़े ठाट बाट से सात आंगनों वाले महलों में रहते थे जिन में फुलवारियां लगी होती थीं और जिन के [illegible]

स्त्रियां मन बहलाव करती थीं जैसे शकुन्तला अपने वृक्षों को स्वयं पानी देती थी। इस प्रकार के अन्य रोचक दृश्य तात्कालिक कामों और नाटकों में दीख पड़ते हैं किन्तु यहां स्थानाभाव से नहीं लिखे जाते।

अगले प्रकरण में कतिपय विद्याओं की उन्नति की साक्षियां दी जाती हैं जो अधिक उन्नति प्राप्त करतीं यदि भारत वर्ष यवनों के आधीन न हो जाता॥

वैद्यक

१. वैद्यक के लेखक—वीबर साहब कहते हैं कि हिन्दुओं के वैद्यक ग्रन्थ असाधारणतया अधिक संख्या में हैं। वस्तुतः अति प्राचीन काल में आर्य्यों ने आयुर्वेद नामी उपवेद बनाया और समय समय पर नवीन ग्रन्थ बनते रहे। कतिपय लेखकों के नाम यह हैं:—ऐतरेय, अग्निवेश, चरक, धन्वन्तरि, सुश्रुत, भारद्वाज कापिस्थल, भेला, लेट्की, पाराशर, वागभट्ट (२०० ई० पू०), माधव (१२०० ई०), भवामिश्र (१५५०), शृंगधर, भट्ट मोरेश्वर (१६२७), लोलिम्बराज (१६३३), वापदेव (१६७०), विद्यापति, आदि।

१०. भारतीय वैद्यक की महिमा—

ऐलाफिन्स्टन का कथन है कि आर्य्यों की शस्त्र चिकित्सा (सर्जरी) तथा वैद्यक अपूर्व हैं। वीवर की सम्मति है कि शस्त्र चिकित्सा में विशेष निपुणता भारतियों ने प्राप्त की है। युरुपीय सर्जन अभी तक उन से बहुत बातें सीख सकते हैं। हन्टर साहब कहते हैं कि 'हिन्दुओं ने धातुओं, वनस्पतियों और पशुओं से ऐसी औषधियां निकालीं जिन्हें युरुपीय लोग अब प्रयुक्त कर रहे हैं।' वस्तुतः भारत वर्ष ने ही संसार में पहिले पहल वैद्यक की उन्नति की और इसी देश से ही अन्य सब देशों ने यह विद्या सीखी ॥

११. विदेश में भारतीय वैद्यक के प्रचार के प्रमाण—

(i) सिकन्दर के सेनापति नियार्कस से विदित होता है कि यूनानी वैद्य सांप के काटने की औषधि नहीं जानते थे। किन्तु भारत वासी इस में बड़े निपुण थे। (ii) एरियन कहता है कि जब यूनानी लोग बीमार होते थे तो ब्राह्मणों की दवा करते थे। (iii) डिआस्कोराइज [१०० ई० पू०] ने प्राचीन हिन्दु वैद्यक शास्त्रों के आधार पर स्वग्रन्थ बनाया है। (iv) हिपोक्रेटीस जो यूनानी वैद्यक शास्त्र का जन्म दाता है वह स्वयम् अपनी औषधि शास्त्र को हिन्दुओं से

उद्धृत किया हुआ मानता है। (v) मध्यम काल में यूनानियों
ने औषधि विद्या अरब वालों से सीखी और अरब वालों ने
भारत वर्ष से (vi) नौशेरवां (५३१-५७२) के समय में एक
ईरानी विद्या प्राप्त करने के लिये भारत वर्ष में आया।
(vii) अलमनसूर ७५३-७१५ ने चरक और सुश्रुत का फ़ारसी
में उल्था कराया। (viii) रेज़ीज़ तथा अबुअलिसिना ने
चरक और सुश्रुत के आधार पर अपने ग्रन्थ लिखे। (ix)
ख़लीफ़ा हारूनरशीद ने मनका और सलेह नामी आर्य्य वैद्यों
को अपने रोग के दूर करने के लिये बुलाया। इस प्रकार स्पष्ट
है कि यूनानियों, अर्बियों तथा ईरानियों ने भारत वर्ष से यह
विद्या सीखी॥

१२—सर्जरी की उन्नति

अब शस्त्र चिकित्सा की ओर ध्यान देने से हमें निस्संदेह
आश्चर्य होगा। (i) शैली साहिब कहते हैं "इन प्राचीन
शस्त्र चिकित्सकों को पथरी निकालने तथा पेट से गर्भ निका-
लने की क्रिया विदित थी और (ii) उन के ग्रन्थों में पूरे १२७
शस्त्रों का वर्णन किया हुआ है" (iii) शस्त्र चिकित्सा इन
भागों में बटी हुई है—छेदन, भेदन, लेखन, व्याधन,
एषण, अहेर्य्य, विश्रवण और सेवन (iv) ये सब कार्य्य बहुत
प्रकार के शस्त्रों से किये जाते थे जिन्हें कि डाक्टर विल्सन
साहिब निम्न लिखित भागों में बांटते हैं। अर्थात्, यन्त्र, शस्त्र
क्षार, अग्नि वा दागना, शलाका, शृंग वा सींग, खून निकालने

के लिये तुम्बी और जलौक वा जोंक [v] इन के सिवाय अनेक प्रकार के संकोचक और कोमलकारी लेप भी मिलते हैं ॥

(vi) यह कहा गया है कि शस्त्र सब धातुओं के होने चाहियें ॥

(vii) वे सदा उज्जवल सुंदर पौलिश किये हुए और चोखे होने चाहियें जो बाल को खड़े बल चीर सकें और अभ्यास करने वाले युवकों को इन शस्त्रों का अभ्यास केवल वनस्पतियों पर ही नहीं वरन पशुओं की ताज़ी खाल और मरे हुए पशुओं की नसों पर करके निपुणता प्राप्त करनी चाहिये ॥

[viii] हमारे पाठकों का यह जानना मनोरञ्जक होगा कि हमारे पूर्वजों को सम्मोहनी (क्लोरोफार्म) तथा संजीवनी नामी औषधियां ज्ञात थीं। आजकल के युरुप निवासियों को कोई संजीवनी औषधि ज्ञात नहीं।

[ix] फिर आर्य वैद्य नये कान और नाक लगा सकते थे, सिर की खाल उतार कर रोगी के रोग को दूर कर के फिर खाल लगा देते थे। जहां २२०० वर्ष पहिले सिकन्दर ने अपने यहां इन लोगों की चिकित्सा के लिये हिन्दू वैद्यों को रखा

था जिन की चिकित्सा कि युनानी नहीं कर सके थे और ११०० वर्ष हुए कि बग़दाद के हारुनउलरशीद ने अपने यहां दो हिन्दु वैद्य रखे थे जोकि अरबी ग्रन्थों में मनका और सलेह के नाम से विख्यात हैं, वहां आज कल सम्पूर्ण भारत वर्ष में विदेशियों से चिकित्सा कराई जा रही है ॥

१३—वैद्यक की अवनति के कारण:—

(क) भारती वैद्यक की अवनति का प्रधान कारण यह था कि ब्राह्मणों ने सम्पूर्ण विद्या पर एकाधिकार जमा लिया था. जब अन्य वर्णों को विद्या हीन रखा गया तो वे वैद्यक के विज्ञान और व्यवहार को भूलते गये । (ख) ब्राह्मण लोग मृतक शरीर को छूना नहीं चाहते थे, रक्त, पीव, राद तथा अन्य दुर्गंधित पदार्थों को भी वह हाथ नहीं लगाना चाहते थे। इस कारण शस्त्र चिकित्सा अवनत होगई । (ग) सातवीं शताब्दी से बारहवीं तक भारत में छोटे २ राजा रहे जिन में परस्पर युद्ध होने के कारण देश मे अशान्ति थी। इस लिये वैद्यक अवनत होता गया। (घ) जब भारत में मुसलमानी राज हुआ तो यवन लोग अपने हकीम लाये। राज की सहायता न होने के कारण वैद्यक की अवनति हुई (ङ) मरहट्टा राज में वैद्यक की उन्नति होने लगी किन्तु आंग्लों का राज हो जाने से फिर से अवनति आरम्भ हो गई ।

१४. रेखा गणित, बीज गणित, अंक गणित

मैकडानल्ड, मानियर विलियमज़, वीवर, विलसन, हन्टर, वैलेस, ऐलफ़िन्सटन, कोलब्रुक, मैनिंग आदि लेखकों ने मुक्त कंठ से कहा है कि उक्त विद्याओं में प्राचीन भारत वर्ष में बड़ी उन्नति हो चुकी थी। मानियर विलियमज़ कहते हैं :- बीज गणित तथा रेखा गणित का आविष्कार और ज्योतिष में उन का प्रयोग करना हिन्दुओं के ही द्वारा हुआ। (क) वस्तुतः भारत वासियों ने पहिले ही पहिल दश अंकों का आविष्कार किया। (ख) गणित शास्त्र में उन्हों ने उस दशमलव का प्रणाली को निकाला जिसेकि अरबी लोगों ने उन से उद्धृत करके योरप में सिखलाया और जोकि आज कल मनुष्य जाति की सम्पत्ति हो गई है, (ग) त्रिकोनामीति (Trignometry) में भी आर्य लोग प्राचीन संसार के गुरु हैं। (घ) ज्यामीति (Geometry) में भी आर्यों ने बड़ी उन्नति की थी, यूक्लिड की पुस्तक के प्रथम अध्याय के ४७वें साध्य के विषय में कहा जाता है कि इसे यूनानी पिथागोरस ने प्रगट किया था किन्तु इस यूनानी महाशय के जन्म से २०० वर्ष पूर्व प्रचलित सुल्व सूत्र में वह साध्य पाया जाता था, जो ये हैं:-

(१) किसी वर्ग (Square) के कर्ण (Diagonal) पर

जो वर्ग बनाया जाता है, वह उस वर्ग से द्विगुण होता है ॥

(२) एक आयत (Oblong) के कर्ण [Diagonal) पर का वर्ग उस आयत के दो असमान बाहुओं (sides) पर के वर्गों के बराबर होता है ॥

(ङ) बीज गणित ने निस्संदेह भारत वर्ष में एक अद्भुत उन्नति प्राप्त की थी । बीज गणित की ज्योतिष सम्बन्धी खोज और रेखा गणित सम्बन्धी प्रमाणों में प्रयोग करना हिन्दूओं का विशेष अविष्कार है और जिस रीति से वे उस का प्रयोग करते थे-उस ने आज कल के योरुप के गणितज्ञों की प्रशंसा प्राप्त की है ॥

(च) लैथब्रिज साहब कहते हैं :- भास्कराचार्य ने गणित की कोई ऐसी विधि निकाली जो आज कल के चलनकलन (differential Calculus) से बहुत मिलती थी ॥

(छ) भारत वर्ष से गणित सम्बन्धी सब विद्यायें अरब वालों ने सीखीं, वहां से यूनानियों ने ज्ञान प्राप्त किया, तब सारे योरुप में उक्त विद्याओं का प्रचार होने लगा, इस कारण मैकडानल साहब सत्य कहते हैं कि विज्ञान (Science) में भारत वर्ष की ओर योरुप का ऋण अति महत् है ॥

—:०:—

भाष्य" उच्च कोटि का ग्रन्थ है। लोग कहते हैं कि इन का जन्म सन् ७८८ ई० में और देहान्त सन् ८२० ई० में-३२ वर्ष की अवस्था में हुआ। मिस्टर तैलङ्ग और डाक्टर भराडारकर शंकर का होना छठवीं या सातवीं शताब्दी में मानते हैं। इन्होंने बौद्धों का मतध्वंस कर के वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया था। शंकराचार्य्य अपनी विद्वित्ता के लिये संसार में सुप्रसिद्ध हैं। भारत वर्ष के यह गौरव हैं, इन का नाम पश्चिम में भी सन्मान से लिया जाता है। इन के अनुयाइयों को समार्त कहते हैं क्योंकि वे स्मृतियों की शिक्षा के मानने वाले हैं। श्री शंकर ने स्वधर्म के प्रचारार्थ भारत वर्ष के भिन्न स्थानों में चार मठ चलाये जो अब तक प्रसिद्ध हैं। (१) दक्षिण में शृङ्गेरी नामी पर्वत पर जगतगुरू नामी स्वामी रहते हैं। (२) हिन्दुओं के अति प्रसिद्ध तीर्थ बद्रीनाथ में एक दूसरे शंकराचार्य्य रहते हैं। (३) कृष्ण के प्रसिद्ध स्थान द्वारका में तीसरा मठ है और जगन्नाथपुरी में चौथा मठ स्थापित है। इस प्रकार सारे भारत वर्ष में शंकर के अद्वैत वेदान्त का प्रचार किया जाता है॥

१८—श्री रामानुज—विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रचारकों में यह सर्वाग्रणीय हैं। इन्हों ने भारत वर्ष में जैनियों और

मायावादियों का प्रभाव हटाने में प्राणपण से प्रयत्न किया था और अपने प्रयत्न में सफल भी हुए थे। मैसूर का जैन हयशाल राजा उन का अनुयायी हो गया. उस ने फिर जैनियों पर बहुत अत्याचार किये। मेलकोट पर श्री रामानुज ने एक मठ बनाया जहां अब तक प्रकालस्वामी के नाम से एक गुरु रहते हैं। किन्तु इस सम्प्रदाय का महागुरु काजीवरम में रहता है। रामानुज के मतावलम्बियों को श्री वैष्णव कहते हैं क्योंकि गुरु रामानुज ने विष्णु रूप में परमात्मा को संसार का कर्ता माना॥

"स्मृतिकालतरङ्ग" में इन का प्रागट्य शाकाब्द १०४९ अर्थात् सन ११२७ ई० बतलाया गया है. किन्तु कोई कोई इन का जन्म सन १००८ ई० में मानते हैं। इन के बनाए मुख्य ग्रन्थ ये हैं:—१. वेदान्त सूत्र पर श्री भाष्य, २. वेदान्तदीप, ३. वेदान्तसार, ४. वेदान्त संग्रह, ५. गीता भाष्य, ६. गद्यत्रय।

१९—माधवाचार्य—यह संसार विख्यात गुरु दक्षिण कार्णाटिक में उडीपी नगर के समीप ११८९ में उत्पन्न हुए उन का पिता श्री शंकर का अनुयायी शैव था। २५ वर्षों में वेद और वेदांत पढ़ कर श्री माधव पूर्ण विद्वान् होगये। फिर सन्यासी बन कर धर्म का प्रचार करने लगे। उडीपी में एक मठ बनाया और श्री शंकर के अद्वैत सिद्धान्त से असन्तुष्ट होकर स्वमत

१४-१८

चलाया जिस में बौद्ध धर्म, वेदान्त और शिव की पूजा के विरुद्ध प्रचार किया। शृंगेरी के जगत् गुरु को परास्त करके वह उत्तरी भारत में आगये—बनारस, हरिद्वारादि स्थानों में रहे। यहीं उन्हों ने वेदांत सूत्रों, ब्रह्मसूत्रों, तथा भगवद्गीता पर टीकाएं लिखीं। श्री माधव ने द्वैत सिद्धान्त चलाया अर्थात् जीव, परमात्मा, तथा प्रकृति भिन्न हैं—वे एक नहीं और प्रकृति माया नहीं। परमात्मा को विष्णु रूप में पूजते थे। इन के धर्मावलंबी लोग अपने कन्धों पर प्रायः विष्णु की मूर्ति बनवाते हैं और कृष्णावतार को मानते हैं ?

१—१०० वर्षों के उपरान्त एक अन्य प्रसिद्ध माधव भी हुये हैं जो विजय नगर की रियासत के संस्थापक राजा के मन्त्री थे—यह सायनाचार्य के भ्राता थे,—उन के साथ माधव संप्रदाय के संस्थापक श्री माधव को नहीं मिलाना चाहिये।

पूर्वोक्त कुलों में से अधिकांश का वृत्तान्त क्रम वार दिया जावेगा और साथ ही बङ्गाल में पाल तथा सेन, उड़ीसा में केसरी तथा गंग, काश्मीर में कर्कोट, उत्पाल तथा लोहार और दक्षिण में पल्लव होयशाल व राष्ट्रकूट वंशी राजपूत राजाओं का वर्णन भी किया जावेगा ॥

४. राजपूतों का आचार—राजपूत लोग पौराणिक धर्म के प्रेमी, पराक्रमी, रणपंडित, वीर, योद्धा, देश हितैषी, आराम-त्यागी, धर्म और देश के लिये प्राण तक न्यौछावर करने वाले, स्वभाव में सीधे साधे थे, छल, कपट, नीति तो उनके पास कभी फटके नहीं थे, हां वीरता उन में कूट कूट कर भरी हुई थी। इसी वीरता के रत्नों से यवनी काल में भारत का इतिहास प्रकाशित वा प्रज्वालित होता रहा है और उन से ज्ञात होता है के संसार में राजपूतों जैसी वीर जाति कहीं पैदा नहीं हुई। किन्तु उन को मुसलमानों ने छल कपट वा नीति के द्वारा पराजित किया। जब चारों ओर अधर्म, छल, कपट का राज्य हो तो राजा राणों का नीति से उदासीन रहना स्वघात करना है। सब सद्गुणों के होते हुए भी निष्कपटी और भोले भाले राजपूतों ने कपटी मुसलमानों से पराजित होकर इस देश को शताब्दियों के लिये यवनों के हाथों में सौंप दिया ॥

उदय सिंह ने उदयपुर नामी नगर बसाया, वही अब तक इस कुल की राजधानी है। इस प्रकार उदयपुर के महाराना सूर्यवंशी हैं और अपनी अद्भुत वीरता तथा रक्त पवित्रता के कारण हिन्दुओं के वे सूर्य हैं। सब हिन्दू महाराजों में शिरोमणि होने के कारण राजपूत राजागण को उदयपुराधीश ही राज्य। तिलक देते हैं॥

६—देहली में तोमार—

पाण्डु वंश में उत्पन्न राजा सहस्रों वर्षों तक इन्द्र प्रस्थ (देहली) में राज्य करते रहे। लगभग ईसा जन्म से ले कर ८०० वर्षों तक देहली में इस वंश के राज्य का अभाव रहा, फिर अनङ्गपाल नामी राजपुत्र ने ७९२ में वहीं राज्य स्थापित करके इन्द्रप्रस्थ के नष्ट गौरव को उज्वल किया। उस के वंशज बीस राजाओं ने ३८० वर्षों तक राज्य किया। अन्तिम राजा अनंगपाल ने अपुत्रक होने के कारण अपने दौहित्र पृथ्वीराज चौहान को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दिया।

७—अजमेर तथा देहली में चौहान वा चाहुमान।

यह अग्निकुलोत्पन्न राजपूत वीरता, प्रतिष्ठा और गौरव में किसी कुल से न्यून नहीं थे। प्रथम राजा अनाहिल से

लेकर अन्तिम पृथ्वी राज तक २६ राजा हुए। इस कुल के राजा अजयपाल ने अजमेर का नगर बसाया, वहीं चौहान अति प्रातिष्ठित हुए। फिर वीरतम मानकराए ने मुसलमानी आक्रान्ता महम्मद क़ासिम के बढ़ते हुए दल को पराजित करके वापिस भेजा जिस से ३०० वर्षों तक कोई आक्रमण न हुआ। किन्तु वीशलदेव तथा पृथवी राज ही इस कुल के सूर्य हुए हैं महाराजा वीशल देव ने उत्तरी भारत में स्वविजय का डंका बजाया, मुसलमानो को पंजाब से निकाला और ११५१ ई० में देहली के राजा अनंगपाल को बाधित किया कि वह स्वपुत्री का विवाह सोमेश्वर के साथ करे और सोमेश्वर के पुत्र को देहली का राज्य देवे। इस कारण ११७० ई० में अनंगपाल की मृत्यु पर वीशलदेव का पौत्र पृथ्वीराज जो सम्भर तथा अजमेर का अधिपति था—देहली का राजा भी बन गया। यह भारत वर्ष का अन्तिम महाराजाधिराज था। इस का पूर्ण वृतांत चन्द्र वर्दई कवि ने पृथ्वी राज रासो में दिया है। कन्नौज के राजा जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता से उस का विवाह प्रसिद्ध है। इसी ने महम्मद गौरी को तौड़ी के स्थान पर पराजित किया और दूसरे वर्ष ११६२ में उस यवन से थानेश्वर के संग्राम में पराजित होकर मारा गया। इस महाराज के मरण के

साथ २ चौहानों के विक्रम और बल का लोप हो गया। आज कल चौहान वंशी राजा सिरोही, कोटा तथा बून्दी की रियासतों में राज्य करते हैं॥

८—कनौज तथा जोधपुर में राठौर।

राठौरों की उत्पत्ति पर अज्ञान का पर्दा पड़ा है—कई इन्हें सूर्य वंशी, कई चन्द्र वंशी कहते हैं, और कई इन्हें दक्षिण के राष्ट्रकूटों से मिला कर यादव वंशी बताते हैं। इन की एक गहरवार नामी शाखा के नेता चन्द्र देव ने १०८० में कनौज में जिसे गाधीपुर, महोदय, कुसुमपुर व कल्यान भी कहते थे—राज्य स्थापित किया। इस के वंशज ११९३ ई० तक राज्य करते रहे। अन्तिम राजा स्वदेश द्रोही, [illegible] पापी जय चन्द्र था। उस ने चक्रवर्ती राज्य प्राप्त करने के लिये अन्य आर्य राजाओं से युद्ध किये, पृथ्वी राज से विशेष शत्रुता थी—इस का बदला लेने के लिये महम्मद गोरी यवन से जा मिला। किन्तु इस देश विद्रोह का बदला उसे स्वराज्य, धन, गौरव, कुल के नाश तथा स्वमृत्यु से मिला क्योंकि गोरी ने जय चन्द्र पर ११९२ में विजय प्राप्त की। जय चन्द्र का पुत्र शिव अपने साथियों समेत मारवाड़ के मरु व जङ्गल

स्थान में आ कर आवाद हुआ। एकान्त में रहने के कारण शिव की सन्तति ने शनैः २ बड़ी उन्नति की, निदान राजपुत्री जोधा वाई का विवाह अकवर से किया, तब से उन की कीर्ति वहुत बढ़ गई। कइ वार राठौर वीरों ने अपना हृदय रुधिर वहा कर भारत के मुग़ल वादशाहों को सहायता दी। मारवाड़ वा जोधपुर का अधिक इतिहास दूसरे भाग में दिया है। वीकानेर की रियासत के नरेश भी राठौर कुलोत्पन्न हैं॥

६— जयपुर में कछवाहे (कुशावाह)—यह कुल श्री राम के पुत्र कुश से अपनी उत्पत्ति बताता है। इन्हों ने लाहौर तथा नरवर नामी नगरों में सहस्रों वर्षों तक राज्य किया। निदान व्रज़ दामन ने कनौज के राजा से गवालियर का देश छीन लिया। ११५० में इन्हों ने अम्बर का देश प्राप्त किया- इस कारण इन्हें 'अम्बर के राना' ही कहते हैं, सवाए जय सिंह ने १७२८ ई० में जयपुर नामी नगर वसा कर उसी को राजधानी वनाया। तव से वे महाराना जयपुराधीश कहलाते हैं। इन की विशेष प्रसिद्धि अकवर के समय से हुई जव कि राजा विहारीमल ने स्वपुत्री का विवाह अकवर से कर दिया

और राजा भगवानदास तथा राजा मानसिंह ने अकबर की सभा में मुग़ल राजपुत्रों के तुल्य सन्मान पाया। इसी प्रकार मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने शाहजहान तथा औरंगज़ेब के समय में मुसलमानी राज्य की सेवा की। जयपुर का नगर अब तक सुन्दरता में बहुत प्रसिद्ध है। इस सूर्यवंशी कुशाह कुल के राजा अलवर की प्रसिद्ध रियासत में भी आजकल राज्य करते हैं॥

१०—मालवा में पंवार वा प्रमार—

सोलंकी, पुरिहार और चौहान कुलों के समान पंवार राजपूत अग्नि कुलोत्पन्न हैं। इन्हों ने ही अग्नि कुलों में से सब से पहिले राज्य प्राप्त किया और सुभाग्य तथा महा पराक्रम से भारत के पश्चिमी भाग को स्वाधीन कर लिया। माहिष्मती (महेश्वर), धार, माराडु उज्जन, महो, मैदन, पर्मावती, अमरकोट, बेरवर और पटन के नगर उन की राजधानियां रही हैं—इस कुल की २५ शाखायें उक्त स्थानों में राज्य करती थीं। दूसरी शताब्दी में उन का राज्य गुजरात में था। अन्तिम वल्लभी राजा शिलादित्य की रानी और गुहलोट की माता पुष्पवती प्रमार कुलोत्पन्न थी, फिर महिष्मती में इन

का राज्य रहा। निदान सातवीं शताब्दी में महाराज हर्ष वर्धन के राज्य की चतिपर विन्धय के शिखर पर धारा तथा माराडु नामी नगर बसा कर प्रमार राजा मालवा में राज्य करने लगे ॥

राम ७१४ में—राम पंवार ने तैलंग (तलंगाना) देश में स्वतन्त्र राज स्थापित किया और फिर बहुत से स्वतन्त्र राजपूत राजाओं को स्वाधीन किया। किन्तु मुन्ज नामी महाराज इस वंश में अति प्रसिद्ध है-यह महा पराक्रमी, विद्यानुरागी तथा स्वयम् महा कवि था। कहते हैं कि तैलप चालुक्य ने १५ वार मालवा पर आक्रमण किया और प्रत्येक वार मुंज ने उसे पराजित करके वापिस भेजा। किन्तु जब मुंज ने बृहत् सेना सहित चालुक्य राज्य पर आक्रमण किया तो ६६५ में परास्त हो कर मारा गया॥

भोज मालवा में राज्य करने वाले भोज नामक तीन राजा हुये। ५७५, ६६५, १०४४ ई० में उन का राज्य आरम्भ हुआ यह तीनों विशेष विद्यानुरागी तथा महापराक्रमी थे किन्तु तीसरा भोज (१०४४-१०८८) अपने पराक्रम, विद्या, प्रेम, राजसभा के ठाठ, और संस्कृत की उन्नित के लिये महाराज विक्रमादित्य

(विक्रमाजीत) के समान प्रसिद्ध है। उस ने ज्योतिष, भवन निर्माण तथा राज प्रबन्ध पर कई पुस्तकें लिखीं। वह स्वयम् कवि था और कवियों तथा विद्वानों की बड़ी प्रतिष्ठा करता था। उस की सभा में भी ९ प्रसिद्ध पण्डित थे। धारा में उस ने संस्कृत विद्या के विस्तार के लिये एक विरच विद्यालय खोला हुआ था. भोजपाल के निकट उस ने भोजपुर नामी झील बनवाई जो १५वीं शताब्दी तक ठीक रही। दक्षिणी चालुक्यों, गुजरात और चेदी के राजाओं से उस के युद्ध होते रहे किन्तु दुर्भाग्य से एक संग्राम में चेदीराज कर्णदेव ने भोज महाराज को मार डाला। उस के पश्चात् निर्बल राजा हुए जो मुसलमानों का धीरता पूर्वक मुकाबला न कर सके। निदान अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा को पूर्णतया विजय किया। तब से यवनों के आधीन होकर उज्जैन का पूर्व गौरव नष्ट होगया॥

११ चालुक्य वा सोलंकीः—

अग्निकुल का यह दूसरा वंश अतीव प्रसिद्ध हुआ क्योंकि इस का राज्य भारत के दूर २ देशों में रहा॥

(i) दक्षिण में इन राजपूतों का राज्य बादामी, कल्यान और वेंगी में रहा, इन का संक्षिप्त वृत्तान्त दक्षिण के इतिहास में देखना चाहिये॥

(ii) चालुक्य कुल की तीन शाखाओं ने गुजरात के भिन्न २ भागों में राज्य स्थापित किया । दक्षिण के राजा पुलीकेशी २ य के भाई जय सिंह ने गुजरात में जागीर प्राप्त कर के चालुक्य राज्य का आरंभ किया, उसके वंशजों का राज्य ७३९ तक रहा फिर छोटे २ राजा राज्य करते रहे किन्तु इन २६० वर्षों तक गुजरात के इतिहास पर पर्दा पड़ा हुआ है। इस काल के व्यतीत होने पर प्रतीत होता है कि गुजरात के पश्चिम दक्षिण में चूड़ासम राजपूत राजाओं का ८०० से १४३२ ई० तक राज्य रहा और उत्तरी गुजरात में चावदास वंशी सात राजा ७४६ से ९३५ तक राज करते रहे। इन के प्रथम राजा वनराज ने अन्हिलवाड़ा पटन का नगर वसाया जो वल्लभीपुर के स्थान पर गुजरात का अतीव प्रसिद्ध नगर हुआ ॥

(ii) वहां ९४१ ई० में मूलराज चालुक्य ने स्वराज स्थापित किया। १२९८ तक उस के वंशज राज करते रहे, जब कि अलाउद्दीन खिलजी ने इस वंश का सर्व नाश कर दिया, मूलराज ने ५८ वर्षों के शासन काल में राज्य की प्रचुर उन्नति की। किन्तु उसके पुत्र भीम राजा के समय में भारत के भक्षक महमूद गज़नवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया और संपूर्ण

गुजरात को घर २ कन्या दिया। (दूसरा भाग-अध्याय १,७)। आक्रान्ता के जाने पर चालुक्यों का राज्य फिर चमकने लगा। सातवें राजा सिद्धराज [१०१४-११४४ ई०] के समय इस वंश की विशेष ख्याति हुई। कर्नाटक तथा हिमाचल के बीच में स्थित बीस राज्य, उस राजा की छत्रछाया में थे किन्तु उस के वंशधर पृथ्वी राज चौहान से पराजित हुए और कुमारपाल चौहान को सोलंकी बनाकर राज दिया गया। मुहम्मद गोरी और कुतबुद्दीन ने गुजरात में महा उपद्रव मचा दिया—इस से कुमारपाल के अन्तिम वर्ष अन्धकार गुप्त हो गये। उस के पुत्र का राज भी १२४२ ई० तक रहा किन्तु फिर सोलंकी कुल की एक बघेल नामी शाखा में उत्पन्न हुए विशालदेव (जिस के पूर्वज ढोलक पुर में स्वतन्त्र राज्य करते थे) ने राज्य पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार अन्हिलवाड़ा में बघेलों का राज्य आरम्भ हुआ॥

विशाल देव बघेल ने यवनों से पीड़ित तथा नष्ट गुजरात को अपने सुशासन से आनन्दित किया किन्तु शोक है कि यह आनन्द चिरस्थाई न हुआ क्योंकि १२४२ से १२६८ तक चार बघेल राजा अन्हिलवाड़ा के सिंहासन पर बैठे जब कि अन्तिम राजा कर्णदेव नृप को अलाउद्दीन रूपी प्रचण्ड

अग्नि न विध्वंस कर दिया । (दूसरा भाग, अध्याय ३) इन बघेलों की एक शाखा ने प्राचीन चेदी राज्य के रीवह नगर पर १२वीं शताब्दी में अधिकार कर लिया और उस का नाम बघेलखराड रख लिया, तब से यही नाम प्रसिद्ध है।

१२ —पुरिहार—यह चौथा अग्निकुल कुछ अप्रतिष्ठित सा है क्योंकि यह राजपूत कभी स्वतन्त्र राज्य को नहीं भोग सके और न ही उन के राज्य का कभी विस्तार हुआ । पहिले इन का राज्य बुन्देलखण्ड में रहा। तब महोबा और कालंजर उन के पास थे। फिर इन्हों ने मारवाड़ की प्राचीन नगरी मन्दाद्रि [मराडवार जो आधुनिक जोधपुर से तीन कोस की दूरी पर बसा हुआ है) में राज स्थापित किया । जयचन्द्र का पुत्र शिव राठौर पहिले पहिल इसी नगर में शरणागत हुआ था । किन्तु शिव के वंशज चराड ने यह राजधानी पुरिहारों से कपट से छीन ली। कुछ काल के पश्चात् उन के मोकल नामी राजा को राहुप गिहलोट ने पराजित करके उस के राज का अन्त किया और उन की राना उपाधि स्वयम् धारण की। आज कल इस कुल के राज्य का कोई चिन्ह नहीं मिलता ॥

१३. बंगाल में राजपूतों का राज ।

अङ्ग तथा वङ्ग देशों में निवास करने वाले लोगों का

महाभारत में म्लेच्छ और ऐतरेय ब्राह्मण में पौन्ड्र व पुलिन्द कहा गया है, क्योंकि ये आर्य्य जाति के न थे। बंगाल के इतिहास पर घोर अन्धकार का परदा पड़ा हुआ है, वह परदा हर्षवर्धन के राज्य काल में ही उठता है जब बंगाल के राजा शशांक ने राज वर्धन को मार डाला ॥ (अध्याय ६)

आठवीं शताब्दी में पालवंशीय राजपूतों का राज्य बंगाल में आरम्भ हुआ।

कहा जाता है कि १७ राजाओं ने आठवीं से ११६० तक बिहार (मगध) में राज किया किन्तु कुछ काल तक वे और बंगाल के अधिपति थे। वे बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। नालन्दा, बनारस और उदन्तपुर में (बिहार में) बौद्धों के धाराम थे जो १२वीं शताब्दी के अन्त तक विद्यमान [illegible] ॥

१४. प्रसिद्ध पालवंशी राजा:—गोपाल, धर्मपाल, देवपाल, विग्रहपाल, नारायनपाल, राज्यपाल महिपाल, और नयपाल नामी राजा प्रसिद्ध थे।

गोपाल पालवंश का संस्थापक था—इसी ने मगध को विजय किया। धर्मपाल बहुत शक्ति शाली राजा था; देहली [illegible]

बताता है और रणादित्य के राज्य का समय ३०० वर्ष रखता है, किन्तु दुर्लभ वर्धन राजा से उस की दी हुई तिथियां शुद्ध प्रतीत होती हैं। मातृगुप्त के समय से कलहन तक साठ राजाओं ने काश्मीर में राज किया, इस प्रकार प्रत्येक राजा ने केवल ६½ वर्षों तक ही राज किया।

१७—मातृगुप्त—कहा जाता है कि मातृगुप्त कवि को प्रतापी विक्रमादित्य ने काश्मीर का राजा बनाया, स्वामी के मरने पर मातृगुप्त ने राज्य त्याग दिया और सन्यासी हो कर बनारस चला गया।

१८—तीन वंशों ने काश्मीर में ५२७ से ११२८ तक राज्य किया :—(i) करकोट वंश, ५९८-८५५। (ii) उत्पाल वंश ८५५-१००३। (iii) लोहार वंश १००३-११२८।

१९—दुर्लभ वर्धन—करकोट वंश प्रवर्तक नाग जाति का कहा जाता है। ह्यूनसांग ने इस के राज की शान्ति और समृद्धि की शादि दी है। तक्षशिला और उत्तरीय पंजाब का राज भी उस के पास था। यह राजा बौद्धधर्म का प्रेमी था किंतु पौराणिक धर्म का भी पर्य्याप्त प्रचार था।

२०—ललितादित्य—७३३ में इस के राज्य का

आरम्भ हुआ। छत्तीस वर्षों तक शासन कर के इस ने बहुत प्रसिद्धी प्राप्त की। इस ने तिब्बतियों, भूटियों और तुर्कों को पराजित किया। उस ने कन्नौज के राजा यशोवर्मन् को परास्त किया और प्रसिद्ध नाटककार भवभूति को अपने साथ ले गया। कहा जाता है कि उस ने कलिंग, पूर्वीय बंगाल और कर्नाटक को भी छीन लिया। उसने बहुत से इमारतें बनाईं जिन में से मार्तण्डय का मंदिर अब तक देखने योग्य है। कहा जाता है कि अज्ञात उत्तरी देशों को विजय करने के निमित्त हिमालय को पार करने के यत्न में उस ने अपना जीवन खोया।

२१—अवन्तिवर्म्मन्—ने सन् ८५५ ई० में एक नए वंश को स्थापित किया और सन् ८८३ तक राज किया। उस के राज में बड़ी बड़ी बाढ़ों ने बहुत हानि पहुंचाई और कहा जाता है कि सुय्यु नामक एक देश हितैषी ने वितष्टा नदी के के लिये मार्ग साफ़ किया और नदी के अधिक जल को निकालने के लिये नहरें भी खुदवाईं। अवन्ति वर्मन् पहिला वैष्णव राजा देखने में आता है।

२२—शंकर वर्मन—पूर्व राजा का उत्तराधिकारी [illegible] बड़ा विजयी हुआ। उस ने जेहलम और [illegible] के मध्य में वास करने वाले गुर्जरों (जिन के नाम से [illegible] प्रसिद्ध है) और भोजों को पराजित किया

अत्याचारी राजा था और उस के उपरान्त बहुत से अयोग्य, दुराचारी और निर्लज्ज राजाओं ने प्रजा को बहुत पीड़ित किया।

२३—दिद्दा—यह रानी लोहर जाति की कन्या थी। इस ने पचास वर्षों तक काश्मीर की प्रजा को अतीव पीड़ित किया उस के समय महमूद ग़ज़नवी ने अपना पहिला आक्रमण किया था॥

२४—कलाश—यह काश्मीर के सब राजाओं में से अतीव क्रूर और अत्याचारी था। इस ने स्व माता पिता का सारा राज कोश तथा निज धन छीन लिया और उन के महल को आग लगा दी। जब उस के प्राण दाता ऐसे दुःख से मर रहे थे, तो वह आनंद से नाच रहा था॥

२५-अन्य कोई राजा प्रसिद्ध नहीं हुआ। एकान्त स्थिति के कारण शताब्दियों तक काश्मीर ने स्वतन्त्रता स्थिर रखी। निदान १३३९ में शाहमीर नामी मुसलमान ने तत्कालिक रानी को राज से च्युत कर के स्वराज्य स्थापित किया और फिर अकबर ने उसे अपने राज्य में मिला लिया॥

२६—काबुल पंजाब और सिंध—

काबुल और पंजाब का इतिहास दूसरे भाग के प्रथम अध्याय के ६ अंक में देखना चाहिये।

में दास के तौर पर पकड़ा। वह चिर काल तक भारत वर्ष में रहा और हिन्दुओं की अच्छी व बुरी दोनों बातों का उसने उल्लेख किया॥

२६—प्रसिद्ध स्थान—अलबरूनी ने कई मुख्य स्थानों का वर्णन किया है-जैसे कनौज, मथुरा, प्रयाग, वाराणासी, पाटलिपुत्र, मुंगेर, गंगोतरी, उज्जैनी, काश्मीर, मुलतान, लाहौर, रामेश्वरम, मालद्वीप (मालदीप) और लक्षद्वीप (लकादीप)।

३०—वर्णाश्रम की अधोगति—

वैश्य लोग उस समय शूद्रों के साथ मिल रहे थे, बल्कि वैश्यों और शूद्रों में बहुत भेद नहीं था। धार्मिक विद्या प्राप्त करने का अधिकार उन से छीन लिया गया था। उन्हें वेद का पाठ करना तो पृथक् रहा, उस का उच्चारण करना भी वर्जित था। राज नियम यह था कि यदि किसी शूद्र वा वैश्य का वेद पाठ करना प्रमाणित हो जाय तो उस की जीभ काट ली जाय। शनैः २ क्षत्रिय जाति से भी वेद पढ़ने का अधिकार ले लिया गया-जिस से कि ब्राह्मणों के सिवाय और सब शूद्र होगये। यज्ञ करने और वेद पढ़ने से वर्जित होने के कारण उक्त तीनों वर्ण अविद्या के सागर में शनैः २ डूबते गये और फिर ब्राह्मण भी उन सरीखे बन गये।

३१ विवाह की रीति—

अलबरूनी का कथन है "कि हिन्दु लोग बहुत छोटी अवस्था में विवाह करते हैं और यदि किसी स्त्री का पति मर जाय तो वह दूसरे पुरुष से विवाह नहीं कर सकती। वह केवल सारा जीवन विधवा रह सकती है व पति के साथ सती हो सकती है। इसी प्रकार यह प्राचीन रीति भी उठ गई कि एक उच्च जाति का मनुष्य अपने से नीच जाति की कन्या से विवाह कर सके॥

३२—सर्व साधारण में मूर्ति पूजा— भारत वर्ष में मूर्तियां और मन्दिर बहुतायत से पाये जाते थे। वहां असंख्य यात्री समय २ पर जाया करते थे। अति प्रसिद्ध स्थान यह थे: मुलतान में सूर्य का मंदिर, हरेश्वर में विष्णु का मन्दिर, काश्मीर मे सारदा की काठ की मूर्ति, सोमनाथ का मन्दिर, बनारस पुष्कर, थानेश्वर, मथुरा आदि अन्य भी कई स्थान थे। इन में विशेषतया ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा की जाती थी। अलबरूनी हमें बार बार कहता है कि सब असंख्य देवता केवल साधारण लोगों के लिये है. शिक्षित हिंदु लोग केवल ऐसे ईश्वर मे विश्वास करते है जो एक, नित्य, अनादि, अनंत सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, सर्व बुद्धिमान, जीवित, जीव देने वाले,

ईश्वर और पोषक है, प्राचीन आर्य लोग कभी देवी देवताओं की पूजा नहीं किया करते थे। शोक है कि आठवीं और नवमी शताब्दियों के अन्धकार मय समय में ऐसा परिवर्तन आया कि आर्यों का शुद्ध, पवित्र, शांति, आनन्द और जीवन देने वाला धर्म नष्ट हो गया। उस धर्म की अमृत मय धारा के स्थान पर विष की नदियां बहने लगीं॥

३३-भवन निर्माण:-

'तालावों के बनवाने में हिंदुओं ने बड़ी निपुणता प्राप्त कर ली है यहां तक कि जब हमारी जाति के लोग उन्हें देखते हैं तो उन को आश्चर्य होता है और वे उन का वर्णन करने में भी असमर्थ होते हैं, उन के सदृश तालाव बनवाना तो दूर रहा। इस काल में जो भवन बनवाये गये उन का ब्योरा पुस्तक के अन्त में दिया गया है॥

३४ सामाजिक रीति रिवाज-

शूद्रों के सिवाय और कोई मद्य नहीं पीता था, मद्य का बेचना भी निषिद्ध था। ब्राह्मण और धार्मिक जनों के अतिरिक्त लोग मांस खाते थे किन्तु पूर्व काल में मांस का निषेध था। जन्म से जात पात का बंधन हो गया था। मुसलमान विजेता जिन आर्यों को बंदी करके ले जाते थे यदि वह बंदी से निकल आवें

तो उन्हें जाति में वापिस नहीं लिया जाता था। शूद्रों के अति-
रिक्त अन्य वर्ण ब्याज पर धन नहीं ले सकते थे। कई रिवाज
बड़े विचित्र प्रतीत होते हैं जैसे शरीर के बाल नहीं काटे जाते
थे, ऐसे चौड़े पाजामे पहिनते थे कि उन के पैर छिप जाते थे,
पीछे से बटन लगा हुआ पटका बांधते थे, पुरुष भी कान की
बालियों, कंगनों, हाथ और पैर के भूषणों का प्रयोग करते थे।
जब एक दूसरे को मिलते थे तो हाथ मिलाते थे किन्तु हाथ
की हथेलियां मिलाने के स्थान पर हाथ की पीठ मिलाते थे।
साधारण जन घोड़ों पर ज़ीनों के बिना चढ़ते थे किन्तु धनी
लोग ज़ीनें रखते थे। चौपड़ खेलने का उन्हें बड़ा चाह था, भूतों
प्रेतों को मानते थे। पुत्रीयों की अपेक्षा पुत्रों से अधिक प्रेम करते
थे उन में बहुत सी विद्याओं का प्रचार था, भूर्ज तथा ताल पत्रों पर
पुस्तकें लिखी जाती थीं। सारांश यह है कि अलबरूनी ने भारतीयों
को सुख और चैन का जीवन व्यतीत करते देखा, स्थान २ पर उन
की प्रशंसा की किन्तु साथ ही उन में जो बुराइयां आगई थीं-उन का
भी उल्लेख किया। यवनों के राजाधीन होने से आर्यों की
गिरावट बढ़ती गई, अन्ततः वे अतीव अनुन्नति प्रिय होगये। आज
कल संसार के प्रत्येक देश में जाग्रति हो रही है, उन के देखा
देखी और अपने प्राचीन बुज़ुर्गों का अनुकरण करते हुए भारत
वासियों को उन्नति करनी चाहिये॥

——:०:——

दक्षिण का इतिहास

१—इतिहास का लोप—दक्खन देश को हमारे पूर्वज दक्षिण वा दक्षिणापथ के नाम से पुकारते थे। महाभारत तथा पुराणों से पता नहीं लगता कि विन्धयाचल के नीचे कहां तक दक्षिण का देश था, पर आज कन्याकुमारी तक का इलाक़ा दक्षिण में शामिल है। अंध, पल्लव, राष्ट्रकूट, चोल, पाण्डयकेरलपुत्र, सतीयपुत्र, चेर की रयासतें पुरातन समय में पाई जाती थीं। जब इन का वृत्तान्त भी अब नहीं मिलता, तो अति प्राचीन इतिहास के लुप्त हो जाने के कारण दक्षिण का प्राचीन इतिहास कैसे दिया जावे? ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में दक्षिण का ज्ञात वृत्तान्त बताया जा चुका है। श्री राम के समय विन्ध्याचल के निकटवर्ती वनों में कतिपय ऋषियों और महर्षियों न अपनी पर्णकुटियां बनाई हुई थीं।

भगवान् अगस्त्य—सब से प्रथम भगवान् अगस्त्य ने विन्ध्याचल के पार होकर अपनी पर्णशाला बनाई और जो देश जल से ढके रहने के कारण मनुष्यों के वास योग्य न थे, उन्हें मनुष्यों के निवासोचित बनाया। सम्भव है कि इसी कारण से उन का नाम "समुद्र शोषी" पड़ा हो॥

२--दण्डकारण्य—श्री राम के समय महाराष्ट्र का प्रान्त सर्वथा जंगलों से आच्छादित दण्डकारण्य नाम से प्रसिद्ध था, इस में राजीव लोचन आनन्द कन्द दशरथ नन्दन भगवान् रामचन्द्र ने भ्रमण किया था और यहीं निरन्तर वेद ध्वनि तथा यज्ञ की परम सुगन्धित वायु हरिणों के भी अन्तःकरण को शान्ति प्रदान करती थी। परन्तु श्री राम के समय ही नासिक (पंचवटी) और विदर्भ (बरार) के इलाके आर्यों ने थोड़े बहुत बसा लिये थे। किसी अज्ञात काल में इसी विदर्भ (बरार, बेदर) की प्रसिद्ध रानी दमयन्ती हुई है जिस का वृत्तान्त नीचे लिखा जायगा॥

३--आर्यों का दक्षिण पर प्रभाव— बहुत सा काल व्यतीत होने पर दण्डकारण्य में आर्यों की बस्तियां बस गईं और असली देश निवासी असभ्यों को पर्वतों तथा वनों में निकाल दिया, अथवा अपना दास बना लिया। महाराष्ट्रीय तथा पुरानी पाली और प्राकृत भाषायें स्पष्ट रूप से बतलाती हैं कि वह संस्कृत की पुत्रियां हैं। दक्षिण के दक्षिणी भाग में भी यद्यपि आर्यों ने निवास स्थान बनाये और सम्भव है कि वहां राज्य भी किया हो, तथापि वहां के असली देश निवासियों ने अपनी मातृ भाषा का त्याग नहीं किया–यही कारण है कि

'किनारी' 'तलेगु' 'तामिल' तथा अन्यान्य दक्षिणी भाषायें कदापि संस्कृत की पुत्रियां कहलाने का सौभाग्य नहीं रख सकतीं। जो भाषायें दाक्षिणी लोग बोलते थे, वही कुछ परिवर्तनों सहित आज भी बोलते हैं। श्री राम के समय में अन्ध्र, चोल, पाण्ड्य, केरलपुत्र की रियासतों का वर्णन रामायण में आता है, पर वह वर्णन पीछे की मिलावट है। इन में पाण्ड्य राज्य सुप्रसिद्ध था-उस की राजधानी के द्वार सुवर्ण तथा मणियों से जटित थे। अर्थात् अच्छी सभ्यता होने के कारण वे दाक्षिणी लोग अपनी हस्ती आर्य्यों के आधीन होते हुए भी रख सके-जैसे आंगल लोग नार्मन्ज़ के आधीन रख सके थे।

४—मौर्य वंश तक दाक्षिणी इतिहास—श्री राम के पश्चात् उत्तर का दक्षिण से जो सम्बन्ध रहा वह ज्ञात नहीं। महाभारत कालीन वृत्तान्त से कुछ पता अवश्य मिलता है जैसे सहदेव ने पाण्ड्य, द्रावीड़, उड़, केरल, अन्ध्र, किष्किन्धा (हाम्पी), सुपरक (सुपरा), दण्डक, करहाटक (करहाड़) को जीता परन्तु महाराष्ट्र का नाम रामायण तथा महाभारत दोनों में नहीं आता, अपितु इस का प्रचार केवल दो सौ वर्ष ईसा के पीछे हुआ ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु महाभारत में मिलावट होने के कारण वास्तविक निश्चय नहीं हो सकता क्योंकि पाणिनि ऋषि जो कि ६ वीं शताब्दी ई० पूर्व

हुए उन्हें दक्षिण की केवल कोशला, करूश और कालिङ्ग रियासतों का पता था—यदि अन्य देशों के नाम भी ज्ञात होते तो अवश्य उन की उत्पत्ति का वर्णन करते जैसा कि सम्पूर्ण उत्तरीय भारत तथा उपरोक्त तीन दाक्षिणी रियासतों की उत्पत्ति की है। 'अष्टाध्यायी पर 'वार्तिक' लिखने वाले कात्यायन (वररुचि) ऋषि को पाराड्य, चोल, केरल, माहिष्मन (महाराष्ट्र) इत्यादि देश ज्ञात थे क्योंकि उस के समय में दाक्षिण से विशेष सम्बन्ध हो जाने से अथवा दाक्षिण के पूर्वोक्त देशों में आर्य्यों के राज हो जाने के कारण उन देशों की उत्तरीय विभाग में भी प्रसिद्धि हो गई होगी। अशोक के समय में उक्त रियासतें स्वतन्त्र राज कर रही थीं। ६ शताब्दी ई० पूर्व होने वाले कात्यायन (वररुचि) से गिनी हुई रियासतों से अशोक के समय की रियासतें अधिक थीं। अर्थात् कालान्तर होने से दाक्षिण में रियासतें बढ़ती गईं परन्तु इन का राष्ट्र वृत्तान्त कुछ भी ज्ञात नहीं। मौर्य वंश के नाश के पश्चात् शनैः शनैः दाक्षिणी राजा बलवान् होते गए। तभी से जो कुछ थोड़ा बहुत इतिहास ज्ञात है वह संक्षेपतः आगे लिखा गया है।

'किनारी' 'तलेगु' 'तामिल' तथा अन्यान्य दक्षिणी भाषायें कदापि संस्कृत की पुत्रियां कहलाने का सौभाग्य नहीं रख सकतीं। जो भाषायें दाक्षिणी लोग बोलते थे, वही कुछ परिवर्तनों सहित आज भी बोलते हैं। श्री राम के समय में अन्ध्र, चोल, पाण्ड्य, केरलपुत्र की रियासतों का वर्णन रामायण में आता है, पर वह वर्णन पीछे की मिलावट है। इन में पाण्ड्य राज्य सुप्रसिद्ध था-उस की राजधानी के द्वार सुवर्ण तथा मणियों से जटित थे। अर्थात् अच्छी सभ्यता होने के कारण वे दाक्षिणी लोग अपनी हस्ती आर्य्यों के आधीन होते हुए भी रख सके-जैसे आंगल लोग नार्मन्ज़ के आधीन रख सके थे।

४—मौर्य वंश तक दाक्षिणी इतिहास—श्री राम के पश्चात् उत्तर का दक्षिण से जो सम्बन्ध रहा वह ज्ञात नहीं। महाभारत कालीन वृत्तान्त से कुछ पता अवश्य मिलता है जैसे सहदेव ने पाण्ड्य, द्रावीड़, उड्, केरल, अन्ध्र, किष्किन्धा (हाम्पी), सुपरक (सुपरा), दण्डक, करहाटक (करहाड़) को जीता परन्तु महाराष्ट्र का नाम रामायण तथा महाभारत दोनों में नहीं आता, अपितु इस का प्रचार केवल दो सौ वर्ष ईसा के पीछे हुआ ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु महाभारत में मिलावट होने के कारण वास्तविक निश्चय नहीं हो सकता क्योंकि पाणिनि ऋषि जो कि ९ वीं शताब्दी ई० पूर्व

हुए उन्हें दक्षिण की केवल कोशला, करूश और कालिङ्ग रियासतों का पता था—यदि अन्य देशों के नाम भी ज्ञात होते तो अवश्य उन की उत्पत्ति का वर्णन करते जैसा कि सम्पूर्ण उत्तरीय भारत तथा उपरोक्त तीन दाक्षिणी रियासतों की उत्पत्ति की है। 'अष्टाध्यायी पर 'वार्तिक' लिखने वाले कात्यायन (वररुचि) ऋषि को पाण्ड्य, चोल, केरल, महिष्मन (महाराष्ट्र) इत्यादि देश ज्ञात थे क्योंकि उस के समय में दाक्षिण से विशेष सम्बन्ध हो जाने से अथवा दाक्षिण के पूर्वोक्त देशों में आर्य्यों के राज हो जाने के कारण उन देशों की उत्तरीय विभाग में भी प्रसिद्धि हो गई होगी। अशोक के समय में उक्त रियासतें स्वतन्त्र राज कर रही थीं। ६ शताब्दी ई० पूर्व होने वाले कात्यायन (वररुचि) से गिनी हुई रियासतों से अशोक के समय की रियासतें अधिक थीं। अर्थात् कालान्तर होने से दाक्षिण में रियासतें बढ़ती गईं परन्तु इन का राष्ट्र वृत्तान्त कुछ भी ज्ञात नहीं। मौर्य वंश के नाश के पश्चात् शनैः शनैः दाक्षिणी राजा बलवान् होते गए। तभी से जो कुछ थोड़ा बहुत इतिहास ज्ञात है वह संक्षेपतः आगे लिखा गया है।

५—राजा नल और दमयन्ती

निषध देश के राजा वीरसेन का ज्येष्ठ पुत्र राजा नल था। वह बुद्धिमत्ता, चातुर्य्य, वीरता, सहनशीलता, तथा राज नीति में अद्वितीय था। किन्तु उसे जूआ खेलने का बहुत बुरा व्यसन था। उसी समय विदर्भ देश के राजा भीम की एक अतीव रूपवती और सद्गुणी पुत्री दमयन्ती थी। एक दूसरे के गुणों की चिर काल तक चर्चा सुन कर नल और दमयन्ती में परस्पर प्रेम हो गया। राजा भीम ने प्राचीन रीति के अनुसार स्वयम्बर किया, जिस में बहुत से देशों के राजपुत्र एकत्रित हुए। किन्तु दमयन्ती ने अपने प्रियतम नल को ही वहां स्वीकार किया, दोनों अतीव सुख पूर्वक रहने लगे, किन्तु अभाग्य से बुरे दिनों का सामना करना पड़ा। नल के एक कपटी मित्र पुष्कर ने नल के राज्य तथा दमयन्ती को लेने की इच्छा से नल को जूआ खेलने पर प्रेरित किया। युधिष्ठर की न्याईं अपना सारा धन दौलत बल्कि राज्य तक नल ने जूए में हार दिया, पुष्कर ने दमयन्ती को पासे में लगाने के लिये कहा किन्तु नल ने न माना।

राजपाट पुष्कर को देकर राजा नल तथा दमयन्ती भिक्षुकों की न्याईं वस्त्र धारण करके वनों में चले गए। थोड़े ही दिन वह दोनो इकट्ठे रहे जब कि नल दमयन्ती को छोड़ कर सहस्र प्रकार के कष्ट वनों में उठाता हुआ अयोध्या में पहुंचा और वहां के राजा ऋतुपर्ण का सारथी बना। वहां इस ने चिरकाल तक रह कर अपने को जूआ खेलने में अति निपुण कर लिया॥

अकेली दमयन्ती पर निर्जन वन में नल के चले जाने से शोक और आपत्तियों का पर्वत गिर पड़ा। उस ने चिर काल तक अपने प्राणपति को उन विकट वनों के कोने २ और पर्वतों की एक २ गुफा में ढूंढा किन्तु कहीं उस का पता न चला। निदान घूमते २ सुबाहु राजा की राजधानी में पहुंची और राजा की दयालु माता के साथ कई दिनों तक रही, फिर अपने पिता के घर चली गई। वहां उसने नल की तलाश में सहस्रों दूत भेजे, अंत में एक दूत ने सारथी रूप में नल को अयोध्यापुरी में पहिचाना। दमयन्ती ने नल को अपनी आंखों सेद खने के लिए यह साधन निकाला कि अयोध्या के राजा के पास दूत भेज कर यह कहला भेजा कि नल के मर जाने के कारण दमयन्ती का दूसरा स्वयम्वर अमुक तिथि पर होगा जिस में आप को भी सम्मिलित होना चाहिये। ऋतुपर्ण इस सूचना से अति आनंदित हुआ और दूसरे ही दिन नल सार्थी को साथ लेकर नियत

तिथि पर विदर्भ में पहुंच गया। वहां स्वयम्वर की कोई तयारी न देखी, किंतु अपना आश्चर्य राजा भीम के सामने न प्रकट किया। दमयन्ती ने शीघ्र ही कई साधनों से नल को पहिचान लिया। तब दोनों पति पत्नी अति आनन्द से परस्पर मिले और पूर्ववत् सुख से रहने लगे। थोड़ी सी सेना लेकर राजा नल ने अपने निषध देश में प्रवेश किया, वहां पुष्कर के साथ जूआ खेल कर उस को प्रत्येक पासे में हार दी। इस प्रकार राज सहित सब कुछ वापिस ले लिया। वस्तुतः कर्मों की गति न्यारी है। सुख दुःख के चक्र में मनुष्य ऊपर नीचे होता रहता है, यह शिक्षा नल के इतिहास से लेनी चाहिये और जिस प्रकार नल और दमयन्ती का परस्पर अगाध प्रेम था और दोनों एक दूसरे के साथ छाया की भान्ति रहते थे वैसे यदि आजकल पति पत्नी गृहस्थ में रहें तो संसार स्वर्गधाम हो जाय।

अन्ध्र वंश, २२० ई० पूर्व से २२६ ई० पश्चात्

६—अन्ध्र राज्य की स्थापना—गोदावरी और कृष्ण नदियों के मध्य वर्ती इलाके में अन्ध्र जाति का वास था, इन के ३० बड़े नगर थे और सैकड़ों ग्राम थे। अन्ध्रों की सेना भी चन्द्रगुप्त के समय में १००००० पयादे, २००० सवार और १००० हाथी थे। परन्तु चन्द्रगुप्त या बिन्दुसार ने इन को पराजित कर के स्वशासनाधीन किया। अशोक महाराज के शक्तिशाली

राज्य के समाप्त होने पर कालिंग तथा अन्ध्र देश स्वतन्त्र हो गए। प्रथम स्वतन्त्र राजा सिमुक था, जिस ने २२० ई० पूर्व मौर्यों की अधीनता त्याग की। (११-२४) इस के वंश ने ४५६ वर्षों तक निरन्तर राज किया, ३० राजाओं में से कतिपय बहुतबलवान् थे-उन्हीं का शासन वृत्तान्त यहां संक्षेप से दिया जाता है॥

७—अन्ध्र राज्य की वृद्धि—सिमुक के पश्चात् कृष्णा ने नासिक तक का सारा देश स्वाधीन किया, उस के उत्तराधिकारी भी राज्य वृद्धि का पूर्ण यत्न करते रहे किन्तु तेरहवें राजा शातशत करणी ने मगध के कण्व राजा सुशर्मन् को मार कर मगध का इलाका स्वाधीन किया। यह देश चिर काल तक अन्ध्रों के आधीन रहा, यद्यपि उन की राजधानी दक्षिण में श्री काकुलम और फिर अमरावती ही रही।

८—१७वां राजा हाल साहित्य वृद्धि के लिए अति प्रसिद्ध है, उसने स्वयम् महाराष्ट्री भाषा में 'सप्त शतक' लिखी और प्राकृत में ही 'बृहत कथा' नामी कथाओं की पुस्तक बनवाई तथा कातन्त्र नामी व्याकरण की पुस्तक संस्कृत में लिखी।

९--तेईसवां राजा विलिवायुकर २य ने (i) २५ वर्षों के राज में बड़े कष्ट का समय गुज़ारा क्योंकि इसे शकों, पहलवों और मालवा, गुजरात, तथा काठियावाड़ के यवनों से युद्ध करने पड़े. (ii) परन्तु उस वीर ने इन सब के आक्रमणों को कामयाबी से हटाया। (iii) इन शकों का क्षत्रप उस समय नहपान था (देखो १२-६) उन में कोई धर्म कर्म न था; इन के अत्याचारों के कारण लोग वर्ण शंकर हो रहे थे। (iv) ब्राह्मण-धर्म अवनति पर था, पर इस विलिवायुकर ने इन को परास्त करके अपने धर्म की रक्षा की। (v) पश्चिमी भारत का शासक चष्टन शक को नियत किया गया परन्तु उस ने अन्ध्र राज्य की आधीनता त्याग दी और मालवा में उस की सन्तान विक्रमादित्य के समय तक निरन्तर राज्य करती रही (१३-४)।

१०—इस चष्टन के पोते रुद्र दमन ने अपनी पुत्री दक्षमित्रा २य का विवाह विलिवायुकुर के पुत्र महाराज पुलुमायी से किया, परन्तु वीर उत्साही रुद्र दमन ने अपने जामाता पर भी आक्रमण करके कई बार विजय प्राप्त की। अन्त में सुरापुर, कच्छ, सिन्ध, कोकंण और मालवा के प्रांत अन्ध्र वंश से निकल कर पश्चिमी क्षत्रियों के आधीन हो गए। (१२-७) पुलुमायी ने अपनी राजधानी कोल्हापुर से पैथान में परिवर्तन कर दी और ३२ वर्ष तक राज्य करता रहा।

११—सताईसवां राजा यज्ञश्री १८४ से २१३ ई० तक राज करता रहा। इस ने क्षत्रपों से अपने वंश का हारा हुआ कुछ प्रान्त जीत लिया और समुद्री तट के प्रान्त भी उस ने अपने शासनाधीन किए।

१२—अवनति—इस के पश्चात् अन्ध्र राज्य में बहुत गिरावट आ गई और जिन कारणों से राज्य शीघ्र नष्ट हो गया-वह पूर्ण इतिहास न होने के कारण नहीं कहे जा सकते, परन्तु इस में सन्देह नहीं कि इस वंश ने असाधारण दीर्घ काल तक राज्य किया—ऐसे दीर्घवंश अन्य देशों के इतिहासों में बहुत कम मिलेंगे॥

१३—बौद्धमत—बौद्धमत का अधिक प्रचार था क्योंकि महाभोज तथा महारट्ठी राजे, एवम् व्यापारी, सुनार, तर्खान, वैश्य आदि लोग मन्दिरों तथा चैत्यों के बनाने में और विहारादि निर्माण में परस्पर मुकाबला कर रहे थे। श्रावण के चारों मासों में जब कि भिक्षुक गण विहारों में रहते थे तो उन के लिये सब प्रकार के व्यय का प्रबन्ध इन लोगों की ओर से किया जाता था। यह बौद्ध भिक्षुक समुद्र यात्रा भी करते थे और उन के आराम के लिये समुद्र तट पर अनेक धर्म शालाएं बनी थीं जैसा कि दाभल, बानकोट, राजपुरी, गोआ बन्दर की खाड़ियों की धर्मशालाओं से पता लगता है॥

१४—ब्राह्मण मत—सर्वथा लुप्त न था क्योंकि ऐसे दो राजाओं के नाम आते हैं जिन्हों ने ब्राह्मणों को गौ दान दिये और उन के विवाह कराने का व्यय दिया। अर्थात् यद्यपि पह्लव तथा शक और यवन जातियों ने दक्षिण का उत्तर भाग जीत कर बौद्ध मत स्वीकार किया और प्रजा में भी उसी का प्रचार किया, तथापि ब्राह्मणों पर विशेष अत्याचार न था॥

१५—व्यापारिक दशा—(क) एक विदेशी ने पैरिप्लस नाम की पुस्तक लिखी है जिसःसे अन्ध्र वंश के आधीन भारत वर्ष की व्यापारिक दशा बहुत अच्छी प्रतीत होती है। निम्न लिखित आधुनिक नगर विदेशी व्यापार के केन्द्र थेः भरोच, पैथान, तगर (धरूर), सुपर, कल्यान, चौल, मानदाड, महाड़, जयगढ़, विजयदुर्ग, वनवासी, नासिक, विदिसा, करहाड़, मावल, कोल्हापुर। इन बन्दरगाहों से पश्चिमी एशिया, मिश्र, यूनान, रोम, चीन, जापान आदि देशों से व्योपार होता था। भारती दूत रोम में भेजे गए और रोम के दूत भारत में आए। भारती हाथी यूनान और रोम में गए, भारती सामान के बदले रोम से इतना धन प्रतिवर्ष आने लगा कि रोम वासी भयभीत हो गए—अब तक रोम के प्राचीन

सिक्के दक्षिण में मिलते हैं ॥

(ख) एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता पूर्वक लोग आते जाते थे। नासिक और करहाट के निवासियों ने विहुत में बौद्धों के लिये दान दिये, इसी प्रकार के दानों के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं जैसे :—

वनवासी कुपरा	के एक महाशय ने	कार्ली में	दान दिया
नासिक के	,,	पिदिसा में	,,
भरोच के / कल्याण के	,,	जुनार में	,,
सिन्ध के	,,	नासिक में	,,
करहाड़ के	,,	कुड़े में	,,

(ग) सूद की वार्षिक मात्रा ५ से ७॥ प्रति शतक थी। उस समय की राज रक्षा, सम्पत्ति, व्यापार वृद्धि का यह अति प्रबल प्रमाण है। २००० कार्षापण पर १०० कार्षापण वार्षिक सूद था, अतः ५ % सूद की मात्रा थी ॥

एक दूसरे स्थान पर १००० कार्षापण बौद्धों के उपयोगार्थ रखे गये, इन का ७५ कार्षापण सूद ही बौद्धों को मिलता था—अतः ७॥% सूद हुआ। धर्म कार्यों के लिये यह सूद की मात्रा थी यह सर्वदा अधिक होती है, अतः निस्संदेह व्यापार में दर कम होगा ॥

(घ) व्यापार की वृद्धि के लिये व्यवसाय समितिया (Guilds) स्थापित की गई थीं। जुलाहों, वैद्यों, तेलियों तथा पैश्यों की सभाओं का वर्णन आता है। इन का प्रबन्ध बड़ी कुशलता पूर्वक होता था। उन के पास लोग सदैव के लिये रुपया रखते थे जिस पर उत्तमर्णों को सूद दिया जाता था। निगम सभाओं, नागरिक सभाओं, ग्राम समितियों तथा श्रम सभाओं के द्वारा प्रजा बहुत कुछ राज्य प्रबन्ध स्वयं करती थीं। इस प्रकार अन्ध्र वंश के समय में राष्ट्रिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशाएं प्रशंसनीय प्रतीत होती हैं॥

अध्याय १८

बादामी का पश्चिमी चालुक्य वंश

५५०-७५३ ईस्वी

१-उत्तरी पह्लवः-

अन्ध्र वंश के पश्चात् दक्षिण में छोटे २ राजा राज्य करने लगे। जिन में से चालुक्यों, पह्लवों और राष्ट्रकूटों के राजा इतिहास में कुछ प्रसिद्ध हुए। बादामी में उत्तरीय पह्लवों का २०० से ५५० ईस्वी तक राज्य रहा और ईलोरा के निकट वेंगी नामी नगर में ६१५ ई० तक यह पह्लव लोग राज्य करते रहे। दोनो स्थानों से ही उनको चालुक्यों ने निकाल दिया इन का अधिक इतिहास ज्ञात नहीं। दक्षिणी पह्लवों का संक्षिप्त इतिहास आगे दिया जायगा। इस कारण अन्ध्र वंश के नाश से चालुक्यों के आरंभ तक दक्षिण का इतिहास सर्वथा लुप्त है॥

चालुक्य राजाः-

२-चालुक्य उत्तर से आये हुये यह राजपूत थे जिन्हों ने द्राविड़ों पर अपना राज्य जमाया (१) जय सिंह इस वंश का संस्थापक था, (२) फिर प्रचण्ड, युद्ध रसिक और शिव भक्त

रणराग राजा हुआ, (३) फिर प्रतापी पुली केशी ने थोड़ा सा राज विस्तार करके अश्वमेध यज्ञ रचा। इस के पुत्रों (४) कीर्तिवर्मन और (५) मंगलेश ने पश्चिम तथा पूर्व में कोंकण के मौर्यवंश और नलवाड़ी के नल वंशों का नाश कर के राज्य फैलाया॥

३-परन्तु कीर्ति वर्मन का पुत्र पुली केशी २य अत्यन्त शक्तिशाली, राज्यनीतिकुशल और उत्साही राजा इस वंश में हुआ है। (क) उस ने पह्लव देश, गुजरात, राजपूताना, मालवा, कोंकण, चोल, पाण्डय और केरल के राजाओं से निरन्तर संग्राम किये, (ख) फिर उत्तर के महाराजाधिराज हर्षवर्धन को भी जब उसने दक्षिण पर आक्रमण किया-परास्त करके महा गौरव प्राप्त किया तथा हर्षवर्धन के हर्ष का मर्दन किया। (ग) कांची वरम के पल्लव राजाओं से घोर संग्राम होते रहे, प्रायः पुलीकेशी विजयी हुआ, (घ) परन्तु ६४० ई० में पह्लवों की जय हुई-चालुक्य राजधानी वातापी (वादामी) लूटी गयी। पुलीकेशी मारा गया और कुछ वर्षों के लिये इस वंश का क्षय होता प्रतीत हुआ। (ङ) पुलीकेशी की वीरता तथा विजय की सूचनाएं दूर २ तक पहुंची थीं और इन्हीं के कारण वह जगत् विख्यात हुआ। ६२५ ई० में ईरान के बादशाह खुसरो २य ने अपना दूत पुलीकेशी के दर्बार में भेजा, जिस का

दर्बार में सन्मान-आज तक अजन्टा की गुफा की दीवारों पर एक सुंदर रंगीन चित्र में खुदा है। (च) उस राजा के उन्नत दर्बार को चीनी यात्री ह्यूनसांग ने भी देखा॥

९-चालुक्यों का विस्तार तथा अवनति-

पुलीकेशी के भाई विष्णुवर्धन को वेंगी का राज्य दिया गया, वहां उसके वंश ने ६०० वर्षों तक राज्य किया, इस वंश को पूर्वी चालुक्य कहते हैं। पुलीकेशी के रणविजयी पुत्र विक्रमादित्य प्रथम ने पह्लवों को परास्त करके उन के देश का सत्यानाश किया; इस के भाई जयसिंह ने गुजरात में जागीर प्राप्त करके गुजरात के चालुक्य वंश का प्रारंभ किया। फिर चिरकाल तक घोर संग्राम होते रहे। इस के पोते ने भी पह्लवों पर पूर्ण विजय प्राप्त की। निदान राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) के राजा दन्ति दुर्ग ने चालुक्य राजा कीर्तिवर्मन २य को मार कर वंश समाप्त कर दिया। किन्तु यद्यपि मूल वंश का अन्त हुआ तथापि इस वंश की शाखाएं वेंगी और गुजरात में चिर काल तक राज करती रहीं और गुजरात में उन्हों ने बड़ी वीरता के साथ मुसलमानों का मुकाबला किया। यह भी स्मरण रहे कि राठोड़ों के पास वादामी का राज्य लगभग २०० वर्षों तक रहा, फिर चालुक्यों के एक राजा तैलप ने राठोड़ों को परास्त कर के अपना पुरातन राज्य प्राप्त कर लिया॥

५—धार्मिक दशाः— चालुक्यों के समय में जैन तथा पौराणिक मतों का प्रचार होने लगा। एक जैनी कवि रविकीर्ति ने राजा पुलुकेशी के दर्बार में बहुत सन्मान प्राप्त किया। विक्रम, द्वितीय ने एक जैन मंदिर बनवाया और एक 'विजय' नामक प्रसिद्ध तार्किक पण्डित को दान दिया। जैन मत दाक्षिण महाराष्ट्र में प्रचलित हो रहा था परन्तु अवशिष्ट भागों में पौराणिक मत ही विस्तृत होने लगाः ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर की पूजा होने लगी, सैंकड़ों मंदिर बनाये गये, शिव की पूजा उस के घोर, 'कापालिकेश्वर' स्वरूप में आरंभ हुई, वेदों तथा शास्त्रों के ज्ञाता पंडितों को दान मिलने लगा, बौद्धों का अनुकरण करते हुए ब्राह्मण लोग गुहाओं में मन्दिर बनाने लगे। उन में से बादामी में मंगलेश राजा की ओर से बनवाया हुआ एक मन्दिर अब तक पाया जाता है। यद्यपि बौद्ध मत अवनति पर था, तथापि उस के बहुत से मन्दिर, चैत्यादि विद्यमान थे जैसा कि ह्यूनसांग की साक्षि से पता लगता है॥

राष्ट्रकूटवंश

७५३—९७३ ई०

६—कृष्ण—प्रथम राजा दान्तिदुर्ग अपनी विजयों के कारण घमण्डी होकर प्रजा को कष्ट देने लगा। तब उस के चचा कृष्ण ने राज्य लिया। मूल चालुक्यों का सारा देश स्वाधीन करके राष्ट्रकूटों की एक शाखा गुजरात में रहने के लिये राजा कृष्ण ने भेजी, उस ने वहां के चालुक्यों का राज्य नष्ट कर के स्वराज्य स्थापित किया। यह राजा भारत के इतिहास में अमर रहेगा क्योंकि इस ने ईलोरा में संसार विख्यात कैलाश मन्दिर बनवाया-यह मन्दिर अपनी उत्तमता के लिए अद्वितीय है। सत्य तो यह है कि जिस जाति तथा राजा ने इस अद्भुत भवन को बनवाया हो, वह कभी भूले नहीं जा सकते॥

७—कृष्ण के पुत्र ध्रुव और पोते गोविन्द ने अन्य देशों को जीत कर तुंगभद्रा, गुजरात और मालवा तक अपना राज्य विस्तृत किया। नासिक के स्थान पर मालखेद (दक्षिण हैदराबाद में) को राजधानी बनाया। उस के पुत्र अमोघ वर्ष ने ६२ वर्ष का दीर्घ राज्य काल पूर्वी चालुक्यों से लड़ते हुए व

दिगम्बर जैन मत की सहायता करते हुए व्यतीत किया। पूर्वी चालुक्यों की शक्ति घट रही थी, निदान उन के राजा तैलपंचम ने राष्ट्रकूटों १४वें राजा कर्कपंचम को मार कर अपने पुरातन वंश का लुप्त नाम पुनः प्रकाशित किया।

८-धार्मिक दशा-उक्त राजाओं ने जहां पौराणिक धर्म के मन्दिर स्थापित किये और संस्कृत के कवियों को राष्ट्र में मान दिया, वहां कई राजाओं ने जैन धर्म का भी प्रचार किया—इस प्रकार बौद्धमत अवनत होता गया, वस्तुतः उस समय बौद्धों के विहारों तथा चैत्यों के निर्माण का कहीं वर्णन नहीं आता॥

कल्यान के पश्चमी चालुक्य

(९७३—११८९ ई०)

१—वंशावली—

तैलप	९७३
सत्याश्रय	९९७
विक्रमादित्य V	१००९
जय सिंह	१०२३
सोमेश्वर I	१०४३
,, II	१०६८
विक्रमादित्य VI	१०७६

सोमेश्वर III	११२६
जगदेक मल्ल	११३८
तैलप	११५०
सोमेश्वर IV	११६२—८६

१०—तैलप से जय सिंह तक—

कहा गया है कि तैलपरूप प्रचण्ड पवन से कर्क राज रूप दीपक की ज्योति बुझ गई और चालुक्यों की राज्य लक्ष्मी पुनः आनन्दित करने लगी। महा पराक्रमी तैलप ने मालवा पर आक्रमण करके वहां के परमार राजा प्रसिद्ध मुंज को यमराज के अर्पण किया, पुनः चेदी और हूण राजाओं को परास्त किया। इस ने वेंगी के स्थान पर शीघ्र ही कल्याणपुरी को राज्यधानी बनाया, इसी कारण इस वंश का नाम कल्यान के पश्चमी चालुक्य प्रसिद्ध है। सत्याश्रय तथा विक्रम ने चोलों पर विजय प्राप्त की। जयसिंह ने चोल तथा चेर देशों को जीता, परन्तु उस के अभाग्य की ऐसी वृद्धि हुई कि मालवा के अति प्रसिद्ध भोज राजा ने अपने पूर्वज मुंज का बदला जयसिंह का सिर काट कर लिया॥

११—सोमेश्वर जैसे अति वीर प्रकृति के राजा संसार में कम मिलेंगे, उस ने अपना सम्पूर्ण राज्य काल अन्य देशों के

विजय करने में व्यतीत किया। कुंतल (कल्याण के आस पास का देश), लाट, कलिंग, गंग, करहाट (सितारा के समीप का देश), तुरुष्क, बराल, चोल, कर्णाट, सुराष्ट्र, मालवा, दशार्ण (भिलसा के आस पास का देश), कोशल, केरल आदि के देशों के राजाओं को पराजित कर के उन से शुल्क (खिराज) लिया, पुनः मगध आंध्र, अवंति, वंग, द्राविड़ और कुरू राजाओं को परास्त किया और उन से भी खिराज और सेनाएं लेता रहा। इस प्रकार चालुक्य राजाओं में से सोमेश्वर अति प्रसिद्ध हुआ है, किन्तु शोक है कि उस के पश्चात् शीघ्र ही यह बृहत् राज्य छिन्न भिन्न हो गया क्योंकि उस के पुत्र परस्पर लड़ते रहे॥

१२-विक्रमादित्य-अवनत होते राज्य का सोमेश्वर के भाई विक्रमादित्य ने (i) ५० वर्षों तक सुसाशन कर के पुनरुद्धार किया, (ii) वह प्रतापी, विद्यानुरागी तथा विद्वानों का आश्रय दाता था-प्रसिद्ध कश्मीरी पंडित बिल्हन याज्ञवल्क्य स्मृति पर "मिताक्षरा" नामक टीका बनाने वाला तथा पंडित विज्ञानेशार इस के दर्बार में ही रहते थे, (iii) इस ने राज्य स्थिरता न कि राज्य विस्तार का यत्न किया तथापि गोआ, कोंकण और चोल के राजाओं को पराजित करके कीर्ति प्राप्त की॥

१३—चालुक्यों की अवनति:—

सोमेश्वर III ने अन्ध्रों, द्रावीड़ों और मागधों से लड़ कर राज्य स्थिर रखा, किन्तु उस के तीन उत्तराधिकारी निर्बल थे। इस बृहत् राज्य का शत्रु दल बड़ा था. इस कारण कई आक्रमण हुये और एक २ करके आधीन राज्य स्वतन्त्र हो गये। निदान सोमेश्वर ४र्थ को यादव राजा भिल्लम ने परास्त करके यादवों का राज्य देवगिरी में स्थापित किया-इस प्रकार ११८९ में पश्चिमी चालुक्यों के बृहत् राज्य का अन्त हुआ॥

१४—कालाचूरी वंश तथा पौराणिक धर्म का विशेष उद्धार:-चालुक्य राज्य के अंत होने पर कालाचूरि नामी राजपूत वंश का उदय हुआ। प्रथम राजा विज्जल के समय में शैवों की आक्रांति हुई। राजा के मन्त्री बसव ने शिव वाहन नन्दीश्वर को स्थापन किया तथा शिव लिंग की विशेष पूजा का मत चलाया। चूंकि राजा जैनी था, बसव ने उसे विष देकर मरवा डाला। ११६७ ई० में राजपुत्र ने अनेक अनुयायियों के साथ बसव को प्राण दण्ड दिया। परन्तु यादवों, चालुक्यों और पल्लवों ने इस जैनी राजा के हाथ से राज्य छीन कर पौराणिक धर्म का प्रचार किया। नवीन शैवों ने बल पूर्वक अपने

मत का प्रचार किया। पौराणिक देवताओं की संख्या दिन दुनी रात चौगुणी बढ़ने लगी। पुराणों, स्मृतियों और धर्म शास्त्रों को परिवर्तन करना तथा उन पर टीकाएं करनी आरम्भ की गयीं। मध्य भारत में राजा भोज ने संस्कृत का खूब प्रचार किया।

विज्ञानेश्वर, अपरारक, हेमाद्रि, वापुदेव, सायण आदि बहुत से लेखक नवीन पौराणिक काल में हुये, इन में से कईयों का वर्णन आगे किया जायगा। कालाचूरी राजाओं ने कल्याण में ११२८ से ११८३ तक ही राज्य किया॥

अध्याय १९

यादव वंश

१—यादव राज्य का उद्भव—यादव वंश की प्रथम राजधानी अति प्रसिद्ध मथुरा पुरी थी, किन्तु कृष्ण महाराज के समय से द्वारका पुरी में उन्हों ने राज्य प्रारम्भ किया था। वहां सहस्र वर्षों तक उन का राज्य रहा, पश्चात् ८५५ ईसवी में एक वंशज दृढ़प्रहार ने दक्षिण में अपना राज्य स्थापित किया॥

२—चंदौर के यादव—इस वंश की प्रथम राजधानी श्रीनगर थी, फिर चन्द्रादित्य पुर (नासिक ज़िले में चन्दौर) राजस्थान हुआ। २३ राजाओं ने ४३९ वर्षों तक श्रीनगर तथा चन्दौर में राज्य किया, इन का जो वृत्तान्त हेमाद्रि कवि रचित 'व्रतखण्ड' अथवा एक ताम्र लेख से पता लगता है वह अत्यन्त अल्प है। वस्तुतः वंशावली के अतिरिक्त विशेष रोचक बातें नहीं हैं। अतः केवल राजाओं के नाम क्रमशः लिख दिये जाते हैं:—
१ दृढ़प्रहार, २ सेउणचन्द्र I, ३ धाडियप I, ४ भिल्लम I, ५ श्री राज, ६ वद्दुगी I, ७ धाडियप II, ८ भिल्लम II ९ वेसुगी I १० अर्जुन ११ भिल्लम III १२ वद्दुगी II १३ वेसुगी II १४ भिल्लम

सायनचन्द्र II, १६ परमा, १७ सिंह, १८ मलुगी, १९ अमर गंगेय, २० गोविन्द राज, २१ अमर मलुगी, २२ बल्लाल, २३ भीलम V जो ११९१ ईसाब्द में परलोक सिधारा ॥

३–देवगिरी के यादव (i) देवगिरी को यादवों की राजधानी बनाने वाला अन्तिम राजा भीलम था। (ii) इस धीर, वीर, पराक्रमी, नीतिज्ञ राजा ने मैसूर में राज्य करने वाले बलाल राजाओं को परास्त करके उन के देश को स्वहस्त गत किया (११९७)। (iii) देवगिरि में राज्य स्थापित करके भिन्न २ साधनों से उसे स्थिर किया। (iv) बलाल राजाओं की सत्ता सर्वथा नष्ट नहीं होगई थी, उन्हों ने अद्भुत वीरता के साथ यादवों के नये आक्रमणों को रोका--कतिपय अति घोर संग्राम हुए। निदान एक संग्राम में यादव हार गये, इस प्रकार यादव दक्षिणी महाराष्ट्र को न जीत सके, तब ३० वर्षों के लगभग इन्हें चुप चाप रहना पड़ा ॥

४–यादव वंशावली:—भीलम के ८ वंशज प्रसिद्धराजा हुए हैं उनके नाम यह थे।

भीलम	११९१	ईसाब्द तक	राज्य किया
जैत्र पाल	१२१०	"	"
सिंहन	१२४७	"	"
कृष्ण	१२६०	"	"

रामचन्द्र वा रामदेव	१३०८	,,	,,
शंकर	१३१२	,,	,,
हरपाल	१३११	,,	,,

५-जैत्रपाल और भास्कराचार्य-भिल्लम का वीर पुत्र जैत्रपाल राज्य सिंहासन पर बैठा, (i) इस ने पिता का कार्य शिथिल नहीं होने दिया—तैलङ्गों तथा यादवों को कलिङ्ग संग्रामों में हरा कर उन के तलङ्गाना देश को पादाक्रान्त किया। (ii) संसार विख्यात गणित शास्त्र वेत्ता तथा ज्योतिषी श्री भास्कराचार्य तथा उसका सुपुत्र लक्ष्मीधर जो कि वेद, तर्क शास्त्र, तथा मीमांसा में विशेष पाण्डित्य रखता था, इसी जैत्रपाल के दर्बार में सर्व पंडित शिरोमणि था। श्री भास्कर ने सिद्धान्त शिरोमणि, गोलाध्याय, बीज गणित, करण कुतूहल तथा लीलावती नामी पुस्तकें लिख कर भारतवर्ष का नाम बहुत उज्ज्वल किया है॥

का ह
'मह।

मथुरादि के राजाओं को तथा रट्ट गट्ट पाण्डय व कई अन्य राजाओं को भी परास्त किया। (iii) कोल्हापुर, उत्तरीय मैसुर तथा तलङ्गाना का कुछ भाग सर्वथा राज्य में मिला कर अपनी अपूर्व वीरता का परिचय दिया। (iv) राजा सिंहन के दरबार में पण्डित लक्ष्मीधर का सुपुत्र श्री चङ्गदेव अपने पिता के स्थान पर पंडितों में शिरोमणि था।

७ कृष्ण—(i) मालवा, गुजरात, कोंकन, तलङ्गाना और चोल देशों के राजाओं के साथ वीरता पूर्वक सिंहन का सुपुत्र कृष्ण लड़ता रहा और पिछले दो देशों को स्वाधीन किया। (ii) इस ने बहुत यज्ञ कर के वैदिक यज्ञों की महिमा बढ़ायी और बहुत से ब्राह्मणों को ग्रामादि भी दान दिये।

८ महादेव—(i) राज्य प्राप्त करते ही इसे युद्ध क्षेत्र का जीवन व्यतीत करना पड़ा: गुजरात, कोन्कन, कर्नाटा, (मैसुर) लाट, तलङ्गाना के राजाओं को वश में कर के कोंकन को स्वराज्य में मिला लिया। (ii) वहां का राजा सोमेश्वर समुद्र की ओर भाग गया और वहीं सम्बन्धियों समेत डूब मरा। (iii) वीर महादेव का एक उच्च संकल्प था कि "बालक और स्त्री के साथ युद्ध कभी नहीं करना।" अतः उसके कोप से बचने के लिये तलङ्गाना वालों ने एक स्त्री को और मालवा वालों ने

एक बालक को सिंहासन पर बिठा दिया। (IV) इस वीर राजा ने भी कतिपय यज्ञ करके यश प्राप्त किया। (V) प्रौढ़ प्रताप चक्रवर्तिन्" की उपाधि से प्रजा इसे याद करती थी।

६—रामदेव भी तलङ्गाना तथा मालवा के राजाओं से लड़ता रहा उस का राज्य मैसूर तक अव्यवहित विस्तृत था। (ii) इन यादव राजाओं के समय में संस्कृत साहित्य उन्नति पर थी। इस समय "अमरकोष" नामक ग्रन्थ लिखा गया और बोपदेव नामक प्रसिद्ध पंडित हुआ जिस ने 'हरिलीला', मुक्ताफल, मुग्ध बोध, तथा कतिपय वैद्यक ग्रन्थ भी लिखे। यह विद्वान् बरार में वरदा नदी के तट पर सारस्व[illegible] नामक ग्राम के रहने वाले केशव वैद्य का पुत्र था और हेमाद्रि की सिफारिश से राज के दरबार में अधिकारी बन सका था। (iii) रामदेव के समय में एक और प्रसिद्ध पंडित धर्मशास्त्रवेत्ता हेमाद्रि हुआ है। वह कवि इस राजा का प्रधान मंत्री तथा करणाधिप (न्यायाधीश) था। वत्सगोत्रीय, यजुर्वेदी [illegible] ब्राह्मण पंडित कामदेव का पुत्र था। इस की [illegible] "चतुर्वर्ग चिन्तामणि", अति प्रसिद्ध पौराणिक पुस्तक है। (iv) इसी समय एक महाराष्ट्रीय महात्मा ज्ञानेश्वरी हुए जिन्हों ने भगवद्गीता का मराठी भाषा में अनुवाद किया। (v) इसी राजा के समय में अलाउद्दीन और फिर उस के सेनापति मलिककाफूर ने [illegible]

पर आक्रमण किये। (vi) निर्बल हुए राज को महम्मद तुगलक ने आ दबाया, निदान १३४७ में इस का नाम भी मिट गया॥

उड़ीसा में केसरी वंश

१०. केशरी वंश—आर्य्य लोग पहिले पहल सम्भवतः दार्शनिक काल में उड़ीसा में आकर बसे। अशोक के समय से वहां बौद्ध धर्म का खूब प्रचार हुआ जैसा कि उस देश की बौद्ध गुफाओं और इमारतों से प्रतीत होता है। बौद्ध काल का इतिहास हमें बहुत ही कम विदित है। इतना ज्ञात होता है कि केशरी वंश से पूर्व वहां यवनों का राज्य था। ४७४ ई० में केसरी वंश के प्रवर्तक ययाति ने यवनों को निकाल दिया और पौराणिक हिन्दू धर्म का प्रचार किया। इस वंश ने लगभग ७०० वर्षों तक राज्य किया इस काल में ४४ राजा हुए। ११३२ में इस वंश की समाप्ति गंग वंश ने की॥

केशरी राजाओं की राजधानी भुवनेश्वर में थी जिसे उन्हों ने बहुत से मन्दिरों और इमारतों से सुशोभित किया था। जिन के शेष भाग भारत वर्ष में हिन्दुओं की गृह निर्माण विद्या के सब से उत्तम नमूने हैं। सारा स्थान ऐसी इमारतों से भरा हुआ है और केशरी वंश की वृद्धि के समय यह नगर मन्दिरों

और सुन्दर इमारतों के लिये बड़ा सुन्दर रहा होगा। नृप केशरी जिस ने कि सन ६४१ से ६५३ तक राज्य किया—कटक के नगर का स्थापित करने वाला कहा जाता है॥

गंग वंश

किन्तु उस के राज्य काल से ही मुसलमानों से युद्ध आरम्भ हो गए। विद्याधर के पश्चात् चार राजाओं ने १५५९ तक राज्य किया जब कि प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति कलपहर ने जाजपुर के युद्ध में राजा को मार डाला, जगन्नाथ के नगर को लूटा और हिन्दू राज्य का नाश कर दिया।

इस भान्ति उत्तरी भारत वर्ष और बंगाल के विजय के लगभग ४ शताब्दी पीछे तक उड़ीसा ने अपनी स्वतन्त्रता स्थिर रखी थी और लग भग १५६० ईस्वी में उसे मुसलमानों ने जीता॥

१३—पश्चमी गंग वंश

इस वंश के राजाओं का राज १०० ई० से १००४ ई० तक रहा। इन में से बहुत से राजा जैन थे और बहुत से ऐसे विद्यानुरागी थे कि उन्हों ने स्वयम पुस्तकें लिखी हैं। कनारी भाषा में बहुत उन्नति इन राजाओं के आधीन हुई। देश का नाम इस वंश के नाम पर गंगवाड़ी पड़ गया। उन की प्रथम राजधानी नन्द गिरी (बंगलोर के निकट नन्दी दुर्ग) थी। कुछ समय पश्चात् कावेरी नदी पर तालकाद नामी नगर में राजधानी स्थापित की गई। इन राजाओं को कंगनी भी कहते हैं। इन के संग्राम चिर काल तक दक्षिण में पह्लवों के साथ और उत्तर

में राष्ट्रकूटों और चालुक्यों के साथ रहे। १००४ में चोलवंशी राजाओं ने इन गंगों को पूर्णतया पराजित कर के स्वराज्य स्थापित किया॥

दक्षिणी पहलव वा पल्लव

(१००-१००० ई०)

१४—कांची के पल्लव—दूसरी शताब्दी में पल्लवों का राज्य कृष्णा से कावेरी तक फैला हुआ था। उन की राजधानी कांची (मद्रास के दक्षिण में स्थित कांजीवरम) में थी किन्तु वेंगी तथा वातापी में भी पल्लव राजपुत्र पश्चिमी तट तथा तलेगु देश पर राज करते थे-यह दिखाया गया है॥

१५—शिव स्कंद वर्मन—१५० ई० में एक प्रताप शक्ति, पौराणिक धर्म का प्रचारक शिव का पुजारी और क्षत्रप रुद्रदामन का समकालीन राजा हुआ। उस ने अश्वमेध यज्ञ किया। उस के पश्चात् राज की वृद्धि होती गयी। निदान जब महाराज समुद्रगुप्त ने दक्षिणी भारत पर आक्रमण किया तो पल्लवों का राज अति विस्तृत पाया। चालुक्यों ने इन्हीं पल्लवों को वेंगी तथा वातापी से निकाल दिया। किन्तु दक्षिणी पल्लवों के लगभग ६०० वर्षों तक दक्षिण के राज्य का संचालन करते रहे।

पुलिकेशी के समय पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन के साथ जो घोर संग्राम हुए उनका वर्णन किया गया है ॥ (१८.३)

१६-नरसिंह वर्मन (६२५-६४५) महेन्द्र का यह पुत्र पल्लवों में से अतीव शक्तिशाली और प्रसिद्ध राजा हुआ है। इस ने पुलिकेशी २य को पराजित करके वादामी को कुछ वर्षों तक स्वहस्तगत रखा। ह्यूनसांग इसी के समय में कांची को देखने आया (१४. iii)

पल्लवों का अधोपतन-उक्त पराजयों का बदला चालुक्य राजाओं ने कई वार कांची के विजय से लिया। ७४० के पश्चात् पल्लवों की महा शक्ति घट गई, उस के उपरान्त २०० वर्षों तक छोटे से देश पर पल्लव लोग राज्य करते रहे जब कि अपर जित राजा को ६०० ई० में चोल राजा-आदित्य ने मार कर राज प्राप्त किया। १२०० ई० तक चोलों के आधीन सीमन्तों के तौर पर पल्लव राजपुत्र शासन करते रहे। ७४० में पल्लवों की एक नोलम्ब नामी शाखा ने बंगलौर के उत्तर में हेमवती स्थान पर राज स्थापित किया। वहां चालुक्यों तथा गंग वंशी राजाओं के साथ उन के युद्ध होते रहे। १००० ई० में उन का राज अचानक लुप्त हो जाता है ॥

१७-पल्लवों के समय धार्मिक अवस्था--पल्लवों के

समय में बौद्ध तथा जैन मतों का क्षय हुआ और पौराणिक धर्म की उन्नति होती गयी। मैसूर तथा पश्चिमी तट पर जैन मत का चिर काल तक प्रचार रहा किन्तु अन्य स्थानों में शिव तथा विष्णु की पूजा प्रचलित हो गयी। सहस्रों मंदिर पौराणिक देवी देवताओं की पूजा के बनाये गये और तामिल भाषा में सहस्रों पुस्तकें लिखी गयीं॥

॥ इति ॥

दार्शनिक काल १२००-५०० ई० पूर्व	बौद्ध काल ५०० ई०पूर्व ४०० ईसाब्द
निरुक्त शिक्षा कल्प छन्द और ज्योतिष पर पुस्तकें लिखी गई जो लुप्त हो गयीं हैं॥ रामायण तथा महाभारत के कुछ अंश।	१ गर्ग संहिता २ रोमक ३ पौलिश काव्य:— १ सप्त शती २ बृहत कथा

पौराणिक काल ४००-५०० ईसाब्द	पौराणिक काल ५००-६०००
ईश्वर कृष्ण सांख्य कारिका शबरस्वामी मिमांसा भाष्य आर्य्य भट्ट सूर्य सिद्धांत आर्य्य शतक पुराण वायु विष्णु स्कन्द	अमर सिंह अमर कोष गौड़पादाचार्य सांख्य कारिका का भाष्य वाग भट्ट अष्टांग हृदय भारद्वाज उद्योत वरह मिहिर बृहत् संहिता

पौराणिक काल ६००—७००	पौराणिक काल ७००—८००
हर्ष राज	वाकपात्ति
रत्नावली	गौड़
नागा नन्द	कुमारिल भट्ट
बाण	कारिकाएं
हर्ष चरित्र	
कादम्बरी	
चंडिकाष्टक	
पार्वति परिणय	
मयूर	
सूर्य शतक	
वामन तथा जयादित्य	
काशिका वृत्ति	
कविसेन	
पद्म पुराण	
मुंजाल	
लघुमानस	

राजपूत काल ८००-६००	राजपूत काल ६००-११००
विशाख दत्त	राजशेखर
मुद्रा राक्षस	बाल रामायण
माघ	बाल भारत
शिशुपालवध	दामोदर मिश्र
भट्ट नारायण	महानाटक
वेणी संहार	हनुमन्नाटक
हाल	कृष्ण मिश्र
सप्त शतक	प्रबोधचन्द्रोदय
शंकर	

पौराणिक काल ६००—७००	पौराणिक काल ७००—८००
हर्ष राज	वाकपात्ति
रत्नावली	गौड़
नागा नन्द	कुमारिल भट्ट
बाण	कारिकाएं
हर्ष चरित्र	
कादम्बरी	
चंडिकाष्टक	
पार्वति परिणाय	
मयूर	
सूर्य शतक	
वामन तथा जयादित्य	
काशिका वृत्ति	
कविसेन	
पद्म पुराण	
मुंजाल	
लघुमानस	

राजपूत काल ८००-९००	राजपूत काल ९००-११००
विशाख दत्त	राजशेखर
मुद्रा राक्षस	बाल रामायण
माघ	बाल भारत
शिशुपालवध	दामोदर मिश्र
भट्ट नारायण	नलोदय
वेणी संहार	हनुमान्नाटक
हाल	कृष्ण मिश्र
सप्त शतक	प्रबोधचन्द्रोदय
शंकर	भोज
उपनिषदों तथा भगवद्गीता की टीकाएं	भोज प्रबन्ध
शारीरिक भाष्य	धनञ्जय
कविराज	दशरूपक शिक्षा
राघव पाण्डवीय	विल्हन
	चौरपञ्च
	अमरू
	अमरू शतक
	महोत्पल
	पञ्चसिद्धांत

राजपूत काल ८००—६००	राजपूत काल ६००—११००
	तथा बृहज्जातक की टीकायें
	भट्ट नारायण
	वेणी संहार
	पद्म गुप्त
	नव साहसांकचरित

राजपूत काल ११००-१३००	राजपूत काल ११००—१३००
जयदेव	रामानुज
गीता गोविन्द	वेदान्त सूत्र पर श्रीभाष्य
विज्ञानेश्वर	वेदान्तदीप
मिताक्षरा	वेदांतसार
श्रीहर्ष	वेदान्त संग्रह
नैषध	चन्द बरदाई
उदयनाचार्य्य	पृथ्वीराज रासो
कुसमाञ्जलि	भास्कराचार्य
कल्हन	सिद्धान्त शिरोमणि
राजतरंगिणी	मम्मट काव्य प्रकाश

भवनो के निर्माण का समय

ई० पूर्व	
१४००	इन्द्रप्रस्थ का पुराना किला, मय भवन।
४८०	नेपाल की सीमा पर विप्रवा का टोप बुद्ध के फूलों पर बनाया गया और पाटलिपुत्र नगर की नींव रखी गई।
२५०	अशोक की कई लाटें और बुद्ध गया तथा सांचि के जंगले बने।
२५०-१५०	कतिपय सांचि के टोप बनाए गए।
२००-१५०	भिहुत (मध्य प्रदेश) के टोप के जंगले।
१५५	सांचि टोप के द्वार।
५०-३५० ई.	गन्धार और अमरावती के पत्थरी शिल्प।
१३०	नासिक की बौद्ध गुफाएं।
१५०	अजन्टा में चित्रकारी।
३००	भारतीय पत्थर की शिल्पकारी में अवनति आरम्भ होती है।
५७८	बादामी में ब्राह्मणों की गुफाएं बनीं।
७६०	ईलोरा का कैलाश मन्दिर।
६००-११००	बुंदेलखण्ड में ब्राह्मणों के मन्दिर।
६५०-१२५०	दक्षिण और कर्नाटक में चालुक्यों ने भवन बनवाए और द्राविड़ शिल्प के मंदिर भी बने।
१०००	तंजोर का महा मंदिर बना।

ई०पश्चात्

१०३२ आबू पर्वत पर विमल शाह ने संगमरमर का जैन मंदिर बनवाया।

११२० बेलूर का मंदिर बना।

११४१ हालेबिद का हयशलेश्वर मंदिर बना

१२२० " " केतमेश्वर "

१३३६ विजय नगर की स्थापना हुई

॥ काल विवर्ण ॥

ई०पूर्व

३६०० स्मृतिकार मनु हुए।

३५०० राजा इक्ष्वाकु ने अयोध्या में सूर्य्य वंश का राज्य स्थापित किया।

२५०० श्री राम ने राज्य किया।

२४००-१५०० अजमेढ़ के पुत्र नील ने मिश्र देश में आर्य बस्ती बसाई, कुरु ने कुरुक्षेत्र की भूमि साफ की फिर राजा पाण्डु राज्य करता था जिस से कौरवों और पाण्डवों का भेद हुआ।

१४०० कुरुक्षेत्र का महायुद्ध अर्थात् पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ।

१३०० जन्मेजय ने अश्वमेध यज्ञ किया।

१००० बादशाह सुलेमान के समय भारत वर्ष के साथ व्यापार हुआ।

ई० पू०	
६००	अष्टाध्यायी के कर्ता पाणिनी हुए।
८००	सैमिरैमिस भारत पर आक्रमण करके परास्त हुई।
७६०	जरासंध के बृहद्रथ वंश की समाप्ति हुई और प्रद्योत वंश का मगध में आरम्भ हुआ।
६५०	शिशुनाग वंश का आरम्भ हुआ।
५६६-४२७	जैनमत्त के प्रवर्त्तक महावीर हुए।
५६७-४८७	भगवान् बुद्ध हुए।
५२५	बिम्बीसार ने राज्य प्राप्त किया।
५१०	दारा ने भारत के पश्चिमी भाग स्वाधीन कर लिये।
४८७	प्रथम बौद्ध सभा हुई।
४१५	यूनानी टीसियस ने भारत वर्ष का वृत्तान्त लिखा जिस का संक्षेप अब तक मिलता है।
३८७	वैशालि में दूसरी बौद्ध सभा हुई।
३७०	शिशुनाग वंश के स्थान पर नन्द वंश का आरम्भ हुआ।
३५७	दिगम्बर जैनियों के पूज्य गुरु भद्रबाहु का देहान्त और जैन अंग ग्रन्थों की रचना हुई।
३२७-२५	सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया।
३२३	सिकन्दर की मृत्यु हुई।
३२१	चन्द्रगुप्त ने नन्द वंश का नाश करके मौर्य वंश स्थापित किया।

ई० पू०	
३१५	उत्तर भारत में अकाल होने से दक्षिण में जैन बस्तियां बसीं।
३०५	चन्द्रगुप्त और सैल्यूकस के मध्य युद्ध और आर्य राज्य का हिन्दुकुश तक विस्तार हुआ।
२९७	चन्द्रगुप्त की मृत्यु और बिन्दुसार को राज्य प्राप्ति हुई।
२७२	अशोक ने राज्य प्राप्त किया।
२६१	कालिंग का युद्ध हुआ।
२५०-५६	अशोक ने बौद्ध धर्म धारण किया, पटलीपुत्र में बौद्धों की तीसरी सभा हुई।
२३२	अशोक की मृत्यु।
२२०	दक्षिण में अन्ध्रों की वृद्धि।
२०६	एनटीआकस ने भारत पर आक्रमण किया, मौर्य वंश का नाश, पुष्प मित्र संग का मगध का राज प्राप्त करना।
१७०	चीन से यूची जाति निकाली गई।
१६०	यूची जाति ने मध्य एशिया से शकों को निकाल दिया।
१५५	मीनान्द्र का आक्रमण।
१५०	पतञ्जलि ऋषि का होना।

ई०पू०

१४०-१२५ शक जाति का सीस्तान, तक्षशिला और मथुरा पर स्वत्व जमाना।

७० कण्व वंश का मगध में राज्य प्राप्त करना।

६८ दस हज़ार यहूदी लोग परिवारों सहित, पैलसटाइन को छोड़ कर मालावार में बसे।

५७ विक्रम सम्वत का आरम्भ।

२७ कणव वंश का नाश। भारती दूत का रोम में जाना।

ईसा पश्चात्

८५ कैड्फाइसिज़ २य का राज्य आरम्भ। जैनियों के दिगम्बर मत का उद्भव।

१०० कैड्फाइसिज़ २य का उत्तरीय भारत वर्ष में विजय प्राप्त करना।

१०७ रोम के महाराज त्राजन की सभा में भारतीय दूत का जाना।

१२५-१५३ कनिष्क का राजा चतुर्थ बौद्ध सभा महायान सम्प्रदाय का उद्भव।

१३८ भारती दूत का एन्टानीनस पायस की सभा में जाना।

१४६ इनडीका नामी ग्रन्थ का लेखक एरीयन हुआ।

ई०पश्चात्

१५० रुद्र दामन नामी पश्चिमी क्षत्रप का राज।

२२६ कुशान, अन्ध्र तथा पार्थिया वालों के साम्राज्यों का नाश।

३०० भारत में पत्थर की शिल्पकारी की अवनति का आरम्भ।

३१९ गुप्त सम्बत का आरम्भा।

३२६-३७५ समुद्र गुप्त

३३६ कान्स्टेन्टीनोप्ल में कान्स्टेंटाइन की सभा तें भारती दुत का जाना

विक्रमादित्य चंद्र गुप्त २य का होना

३९५ गुप्तों ने पश्चिमीय क्षत्रपों को पराजित किया।

४०५-५११ भारत वर्ष में फ़ाह्यान की यात्रा।

४५५ हूणों का प्रथम युद्ध।

४७०-४८० हूणों का २य युद्ध।

४९०-५१० तोरमान का राज काल।

५१०-५४० मिहिरकुल का उत्तरीय भारत तथा काश्मीर में राज्य।

५२८ मिहिरकुल का यशोवर्मन से पराजित होना।

५५० नाशेरवां की आज्ञा से फ़ारसी भाषा में पंचतंत्र का उल्था किया गया।

५५० दक्षिण में चालुक्य वंश का आरम्भ हुआ।